झाँसी की रानी

(लक्ष्मीबाई)

लेखक—

वीर दुर्गावती, वीर दुर्गादास आदि ऐतिहासिक
पुस्तकों के रचयिता

"पं. कृष्ण रमाकान्त गोखले"
Journalist & Author

—

...ीय संस्करण } सन् १९३९ { मूल्य २)

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स
पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक
बनारस सिटी

मुद्रक—
मथुरा प्रसाद गुप्त
ग्लोब प्रेस कर्णघंटा
बनारस सिटी

शीघ्रही प्रकाशित होगी—

मौत से खेलने वाले

राजनीतिक क्षेत्र में हलचल पैदा करने वाली सर्वोत्कृष्ट पुस्तक—

इसमें आप को मिलेगा—

स्वदेश के लिये मर मिटनेवालों का अमर इतिहास—
स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये अपने सर्वस्व सुखों को आहुति देने
वालों के दिल दहलानेवाले चरित्र—
साम्राज्य लोलुपता के वशीभूत हो अत्याचार
करने वालों का नग्न नृत्य—
मानव हृदय को स्वतन्त्रता की ओर आकर्षित
करने वाले वीर आत्माओं की-

वीर कहानियां—

और

उसमें मिलेगा

भीषण अग्निवर्षा, मारकाट, हड़तालियों का अपूर्व साहस, गोलियों की
बौछारों के बीच हँसते २ प्राण विसर्जन
करने वालों का करुण दृश्य—
आर्डर अभी से रजिस्टर करावें वरना समाप्त होने
पर पछताना पड़ेगा—

१४—मिश्र की स्वाधीनता का इतिहास—
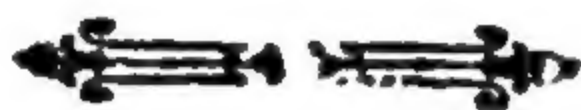
भारत की प्राचीन सभ्यता को अपनाने वाला सर्वप्रथम मिश्र देश ही रहा है। प्राचीन मिश्र और आधुनिक मिश्र में क्या २ परिवर्तन हुए ? उसे हड़प जाने के लिये कितने बड़े २ षडयन्त्र रचे गये ? कितनी क्रान्तियाँ हुईं ! कितने देशभक्तों को क्रान्ति की इस भयंकर आंधी में अपनी आहुतियां देनी पड़ीं ? क्रान्तिकारी नेता कौन थे ! मिश्र में जागृति का युग पैदा करने वाले कौन२ महात्मा थे ? क्रान्ति से उनको क्या सुविधायें मिलीं। अब मिश्र किस अवस्था में है, इसका सच्चा इतिहास जानने के लिये और अपने आपको स्वतन्त्रता प्राप्त करने के योग्य बनाने में यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) रुपया।

माला की प्रकाशित पुस्तकें

१ ऐतिहासिक

२॥) दुर्गादास राठौर	२) झाँसी की रानी
१॥) मेवाड़ का इतिहास	१।) अमरसिंह राठौर
१।) देश के दुलारे	१) महाराणा प्रताप
१) पृथ्वीराज चौहान	१) छत्रपति शिवाजी
१) वीर मराठा	१।) प्रतापी आल्हा और ऊदल
१) हैदर अली	

२ उपन्यास—

३) विप्लवी वीरांगना	१।॥) रहमदिल डाकू
१।॥) अपराधिनी	१।॥) हाहाकार
१॥) नदी में लाश	१॥) प्रेम के आँसू
१॥) जीवन का शाप	१॥) मायावी संसार
१।) प्यासी तरवार	१) होटल में खून
१) प्रेम का पुजारी	१) मजदूर का दिल

३ हास्यरस

१।) महाकवि साँड़	१) पानी पाँड़े
१) गुरु गंटाल	१) लेखक की बीबी
१) मेरे राम का फैसला	१) मिस्टर तिवारी का टेलीफोन
।॥) मेरी फजीहत	१) टालमटोल

४ नवयुवकोपयोगी

१।।) स्वास्थ्य और व्यायाम
चित्र सं० ८०

१) सफलता के सात साधन

।।।) शान्ति की ओर

१।) सरल संस्कृत प्रवेशिका
पृष्ठ सं० ४५०

१) हमारा जीवन सफल कैसे हो ?

५ आध्यात्मिक

३) उपनिषत्समुच्चय
पृष्ट सं० १२००

।=)ऋषीदयानन्दकासत्यस्वरूप

।।।) मेरे देवता

।।।) शुद्धि सनातन है

।।) पुर्णिया शास्त्रार्थ

।।=) वैदिक वर्ण व्यवस्था

झाँसी की रानी

अरुणोदय—उत्तर हिन्दुस्तान के * बुन्देलखण्ड नामक प्रान्त में 'झाँसी' शहर बसा हुआ है। बुन्देलखण्डमें रहने वाले 'बुन्देले' कहे जाते हैं। बम्बईसे 'झाँसी' प्रायः ७०० मील दूर है ! 'झाँसी' एक जिला है और वर्तमान 'झाँसी' शहर उसकी राजधानी है।

यहाँ अंग्रेज़ोंकी सेना रहती है। इस समय यहाँ मुख्यतः पीतलके बर्तन बनाने के बड़े-बड़े कारख़ाने चलते हैं। उत्तर हिन्दुस्तान में व्याव-

---

* बुन्देलखण्ड—अर्थात् बुन्देले समाजका निवासस्थान। बुन्देले राजपूतोंकीही एक उपजाति है। इनके 'बुन्देले' नाम से प्रसिद्ध होनेके सम्बन्ध में यह आख्यायिका प्रसिद्ध है कि,—"श्रीक्षेत्र" काशीमें जिस समय क्षत्रियों का राज्य था, उस समय उनके वंशमें 'पंचम' नामक एक राजा हो गया। उसे उसके ज़बर्दस्त भाइयोंने अपनी शक्तिकी बदौलत राज्यसे पदच्युतकर निकाल बाहर किया। वह बेचारा दीन-हीन अवस्था में घूमता-फिरता विन्ध्याचल पर्वतपर चला गया और वहाँ श्री विन्ध्य-

सायिक दृष्टि से भारतीय रेलवे कम्पनीका यह मुख्य स्टेशन है। जिसके कारण यहाँ बड़े धूम-धड़ल्ले से व्यापार होता है। इस प्रान्त की मुख्य पैदावार गेहूँ, चना और ज्वार है। इसके इर्द-गिर्द ग्वालियर, दतिया और ओरछा राज्य की छोटी-छोटी रियासतें हैं।

ईस्वी सन् १२०० में दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान ने इस प्रान्तपर सर्वप्रथम अपना सिक्का जमाया था। उनके बाद गुलामवंशीय सम्राट कुतुबुद्दीन और अलतमश इसपर हुकूमत करते रहे। पश्चात् कुछ दिनों तक यह प्रान्त "खंगार" नामक जंगली जातिके शासन में रहा और अन्तमें बुन्देलखण्ड के रहने वाले बुन्देलों ने इसपर अपनी विजय पताका फहरायी।

जिस समय मुगल सम्राट का आदि पुरुष सम्राट बाबर हिन्दुस्तान में आया उस समय बुन्देलखण्ड में रुद्रप्रताप नामक बुन्देल राजा राज्य कर रहा था। उसके पुत्र भारतीचन्द ने सन् १५३१ ईस्वी में ओरछा

वासिनीके मन्दिरमें पहुँचकर उसने पुनः राज्यप्राप्तिके उद्देशसे श्रीभगवती की पूजा-उपासना आरम्भ कर दी। कुछ दिन पश्चात् उसने भगवतीको प्रसन्न करनेके हेतु अपना शिर काटकर भगवतीको भेंट चढ़ाया। जिससे सन्तुष्ट होकर भगवतीने उसे जीवित किया और वर माँगनेकी आज्ञा दी। राजाने अपना इच्छित हेतु उसे कह सुनाया। भगवती 'वरप्रदान' कर लोप हो गयी। जिस समय राजाने अपना सिर काटा था उस समय उसके शरीरके कुछ रक्तविन्दु देवीपर पड़ गये थे, उन्हींको देख कर भगवती ने उसे विन्दु अथवा 'विन्दु' के नाम से सम्बोधन किया था। उसीका नाम बिगड़ते-बिगड़ते बुन्देला हो गया।

नामक एक नया शहर बसाया। जिसके देखा-देखी 'रुद्रप्रताप' के वंशकी दूसरी एक शाखाने 'चन्देरी' नाम के एक नये राज्य की स्थापना की। भारतीचन्द्के पश्चात् 'ओरछा' के राजा बीरसिंह बुन्देलाने अपने शासन काल में एक और नया शहर बसाया और वहाँ एक प्रचण्ड किले की बुनियाद डाली! वह किला आज झाँसी के क़िले के नाम से और शहर 'झाँसी' के नाम से इतिहास प्रसिद्ध होकर अपने निर्म्माता की गौरव-स्मृति बढ़ा रहा है।

राजा बीरसिंह बड़ा शूरवीर और पराक्रमी राजा था। उसने मुग़ल सम्राट अकबर के पुत्र सलीम की बातों में आकर ईस्वी सन् १६०२ में मुग़ल साम्राज्यके आधारस्तम्भ, प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मन्त्री अबुलफ़ाजल का युद्ध में वध किया था। सम्राट अकबर के हृदयको अपने परम मित्र मंत्री के इस आकस्मिक मृत्यु के कारण ज़बर्दस्त धक्का लगा और उसने प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर राजा बीरसिंह के विरुद्ध धावा बोल दिया। सम्राट अकबर कितना कूटनीतिज्ञ था, यह इतिहासज्ञों को भली प्रकार विदित है। उसने अपने पुत्र सलीम को ही तरह-तरह की ऊँची नीची सुना कर अपनी शाही-सेना का सेनापति बना दिया और यही शाहीसेना राजा बीरसिंह का नाश करने के हेतु बुन्देलखण्ड पर दौड़ गयी थी। परिणाम यह हुआ कि राजा बीरसिंह की दिखौआ हार हुई। वह कभी खुलकर नहीं लड़े और बराबर आनाकानी करते रहे।

इसके कुछ दिनों बाद ही अर्थात् सन् १६०५ ईस्वी में स्वर्गीय सम्राट अकबर का सिंहासन उसके पुत्र सलीमको प्राप्त हुआ। उसने राजा बीरसिंहको बुन्देलखण्ड सौंप दिया। सलीमके राजत्वकालमें बुन्देलखण्डमें

पुनः कोई झगड़ा नहीं उठा और न किसी प्रकार का उद्धरणीय परिवर्तन ही हुआ।

किन्तु सन् १६७२ ईस्वी में जब दिल्ली के सिंहासन पर शाहजहाँ आरूढ़ हुआ तब फिर राजा बीरसिंहने टण्टा बखेड़ा मचाना और लूटमार करना आरम्भ किया। प्रजा इस अत्याचारसे अत्यन्त त्रस्त हुई। फल यह हुआ कि, शाहजहाँ ने उसे परास्तकर बुन्देलखण्ड अपने राज्य में मिला लिया। उस समय ईस्वी सन् १७०७ तक बराबर झाँसी प्रान्त दिल्ली सम्राट के अधीन रहा। सन् १८०४ ईस्वी में बहादुरशाह सिंहासनस्थ हुआ। उसने महाराजा छत्रसालको झांसी का परगना जागीरमें दे दिया।

* महाराजा छत्रसाल पँवार राजपूत थे। उनके पिता का नाम था चम्पतराय। छत्रसाल बड़े कट्टर, धर्म्माभिमानी और शूर-वीर राजा थे। उनकी राजधानी 'पन्ना' थी। आपने अपने राजत्वकाल में बुन्देलखण्डका राज्य बड़ी उत्तमतासे चलाया था। आपके नीतिपूर्ण व्यवहार और यथोचित व्यवस्थासे आपकी प्रजा आपसे बड़ी सन्तुष्ट थी। किन्तु आपकी यह लोकप्रियता निकटस्थ मालवे के सूबेदार तथा इलाहाबाद के नवाब महम्मद खान बंगषसे सही न गयी। वह समय समय पर महाराज छत्रसाल से छेड़-छाड़ करने और उन्हें तङ्ग करने लगा। किन्तु शूर-वीर हिन्दू नरेश के सामने उसकी एक न चली।

अपनी विशाल शक्तिसे उन्मत्त हुए मालवेके सूबेदारने एक समय महाराज छत्रसाल से कुछ 'कर' देने के लिये लिखवा भेजा

---

* महाराज छत्रसाल का विस्तृत जीवन चरित्र हमारे यहाँ अत्यन्त मार्मिक खोज-बीन करने के पश्चात् प्रकाशित किया गया है। मूल्य १)

और साथ ही साथ यह भी कहलाया कि, यदि महाराज उसकी इस ज़बर्दस्ती की माँग को पूरी न करेंगे तो उसे विवश होकर उनके विरुद्ध सेना भेजनी पड़ेगी।

महाराज इस उद्दण्डतापूर्ण व्यवहारसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने तत्क्षण सूबेदार को कविताबद्ध रूपमें यह उत्तर लिख भेजा—

"देवागढ़ देश नहीं, दक्षिण नरेश नहीं,
चान्दावाद नहीं, जहाँ घने महल पाइहौं।
सौदागर सान नहीं, देवन को थान नहीं,
जहाँ तुम पाहुन लै बहुलक उठि जाइहो॥
मैं तो सुत चम्पतिको युद्ध बीच लैहो हाथ,
यही जिय जानि उलटी चौथदे पठाइहो।
लिखके परवाना महाराज छत्रसाल जूने,
औरन के धोखे यहाँ कबहूँ न आइहो॥

उक्त 'कविता' पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज छत्रसाल अपने समय के प्रतिभासम्पन्न कवि भी थे। शत्रु के पत्रका उत्तर कविताके रूपमें देखकर, जो क्रोधकी दशामें लिखा गया है,—इस बातका प्रमाण दे रही है कि, महाराज छत्रसाल का जीवन ही काव्यमय था। उन्हीं का यह कविता प्रेम था जिसके कारण उनके समय का अधिकांश बुन्देला समाज काव्य-प्रेमी हो गया। उनके राजत्वमें काव्यशास्त्रकी अच्छी उन्नति हुई थी। उसीका यह परिणाम है कि, आज भी बुन्देलाजातिको हम अधिकांशरूपसे कविता बनाते तथा गायन करते देखते हैं। अस्तु,

महाराजका यह कर्णकटु उत्तर सुनकर सूबेदार क्रोधके मारे आग-बबूला हो गये। उनका मुसलमानी अभिमान जागृत हो उठा। और उन्होंने तत्क्षण युद्ध की तैयारी करनी आरम्भ कर दी।

अपनी सेना को सम्पूर्णरूप से तैयार कर चुकने पर उन्होंने अपनी सहायताके लिये इलाहाबाद के नवाब मुहम्मदखां बंगष को लिख भेजा। साथ ही साथ दिल्लीपति सम्राटको भी इसी आशय का एक पत्र लिखा। लिखने की आवश्यकता नहीं कि, यह पत्र कैसा था ! कारण यह स्पष्ट है कि, एक मुसल्मान सूबेदार एक मुसल्मान सम्राट को वैसा ही पत्र लिखेगा जिसमें उसकी कट्टर इस्लामियत झलकती हो। उस समयके मुसल्मान हिन्दुओंको 'काफ़िर' अर्थात् विधर्मी समझते थे। इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण 'इतिहास' में स्थान-स्थान पर मिलता है। मुसल्मान बादशाह कभी भूलकर भी हिन्दू काफ़िरोंको अधिक शक्तिशाली अथवा अधिकार सम्पन्न देखना पसन्द नहीं करते थे। अतः जहाँ कहीं भी कोई छोटा-मोटा हिन्दू जागीरदार स्वतन्त्र विचार, धर्मप्रेमी और लोक-प्रिय दिखलायी देता वहीं उसके पड़ोसके नवाब, सूबेदार इत्यादि आसुरी ईर्षासे प्रेरित होकर उसे नष्ट-भ्रष्ट करनेके उद्देश्यसे झूठ-सचकी खिचड़ी पकाते और इस्लामी धर्मका हवाला देते हुए भारत सम्राटके कान फूंक देते थे। परिणाम यह होता था कि भारत सम्राट की विजयी सेना उस धर्मप्राण और समाजसेवी हिन्दू जागीरदार को मिट्टीमें मिलाकर ही साँस लेती थी। उस समयके मुसल्मान बादशाह न तो हिन्दुओंका वर्चस्वही माननेको तैयार थे न उन्हें स्वतन्त्र और कट्टरही देखना पसन्द करते थे। किसी एक प्रतिष्ठित हिन्दू राजा अथवा जागीरदारके

विरुद्ध मुसलमान भाईका एक शब्दही उस समयके भारतसम्राटके सामने उस हिन्दूको दोषी ठहरानेके लिये पर्याप्त था।

इसी तत्कालीन इस्लामी परम्पराके अनुसार भारतसम्राटपर मालवेके सूबेदारकी चिट्ठीका भी असर पड़ा। उसकी लिखी हुई चिट्ठीका अक्षर अक्षर सच माना गया और दिल्ली दरबारकी ओरसे महाराज छत्रसालको परास्त करनेके लिये सेना भेजने का बन्दोबस्त हुआ।

परन्तु महाराज छत्रसालभी कम दूरदर्शी नहीं थे। उन्होंने अपने उस 'कठोर उत्तर' का परिणाम पहिले ही से अपने मनमें निर्धारित कर रखा था और यह भी समझ रखा था कि, उनका वह 'कठोर उत्तर' इस्लाम धर्मके ठेकेदार भारत-सम्राट तकके कान खड़े किये बिना न रहेगा। अतः उन्होंने अपनी ओरसे हिन्दू-कुल-भूषण महाराष्ट्र सम्राट छत्रपति शाहू महाराजके पास सहायता की याचना की। उन्होंने अपने पत्रमें अत्यन्त मार्मिक एवम् हृदयङ्गम भाषामें तत्कालीन हिन्दू समाजकी दुर्दशाका चित्र-चित्रण किया और स्पष्टरूपसे महाराष्ट्र साम्राज्यके धर्मप्रेमकी सराहना करते हुए उन्हें अपनी सहायता के कर्त्तव्यसूत्रमें बन्ध जानेको बाधित किया। उन्होंने छत्रपति शाहूको जो पत्र लिखा था वह सौ दोहोंका था और उसके अन्तमें-मन्त्री* बाजीराव पेशवाको उद्देश्यकर जो दोहा लिखा था, वह है:—

---

* हिन्दू कुल भूषण वीरवर बाजीरावका विस्तृत जीवन चरित्र हमारे यहाँ से प्रकाशित हुआ है। स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीयों को अवश्य इससे लाभ उठाना चाहिये। मूल्य १)

जो गति ग्राह गजेन्द्रकी सो गति भई है आज।
'बाजी' जात बुन्देल की, राखो 'बाजी' लाज॥

इससे यह स्पष्ट है कि, महाराज छत्रसालको वीरवर बाजीरावके कर्त्तव्य प्रेम और शक्तिका कितना दृढ़ विश्वास था ! वीरवर बाजीरावने अपने समस्त जीवनमें कभीभी किसी 'याचक, को पीठ नहीं दिखलायी थी। वह महाराज छत्रसालके गुण-कर्म-स्वभावसे पूरी तरह भिज्ञ थे। उन्होंने तत्काल बुन्देलानरेशकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मनही मन उनकी सहायता करनेका प्रण करते हुए लिख दिया कि, हिन्दू और हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिये हम सदासे तैय्यार हैं। आपकी वीरता और साहस हम महाराष्ट्रोंसे छिपी नहीं है। हम जानते हैं कि, यदि आप चाहें तो अकेलेही लड़कर दिल्ली का सिंहासन हिला सकते हैं। किन्तु आपका हमसे सहायता माँगना; हमारे धर्मप्रेमकी परीक्षा है, जिसके लिये महाराष्ट्रका बच्चा बच्चा हथेलीपर सिर लिये तैयार है।

उन्होंने अपने पत्रके अन्तमें नीचे दी हुई कविता भी लिख दी:—

"वे होंगे छत्रापत्ता, तुम होगे छत्रसाल।
वे दिल्ली ढाल तू'—दिल्ली ढाहन वाल॥"

उसके पत्र के भेजने के पश्चात् कुछही दिनों में पेशवा की सेनाने बुन्देलखण्डकी ओर कूच किया। वह पूना, चाकन, अहमदनगर, बुरहानपुर इत्यादि शहरोंमें पड़ाव डालती हुई प्रायः तीन सप्ताहमें बुन्देलखण्ड पहुँच गयी।

इधर मालवाके सूबेदार, इलाहाबादके नवाब महम्मदखाँ बंगश और दिल्ली सम्राटकी सेना, संयुक्त होकर साठ हजार सैनिकों के रूपमें

बुन्देलखण्ड पर जा धमकी। दोनों सेनाओंका सामना होतेही 'अल्लाहो-अकबर' और हर-हर महादेवके बुलन्द नारे लगने लगे। कुछही देर पश्चात् मार-मार काट-काटकी आवाजसे सारा वायुमण्डल गूंज उठा। रुधिरप्राशिनी, रुण्डमुण्डधारिणी रणचण्डी रुद्ररूपसे अपनी रक्त-पिपासा शान्त करने लगी। कई दिनोंतक सारे बुन्देलखण्ड में 'दाढ़ो-चोटी' संघर्षका बाजार गरम रहा। दोनों ही सेनायें एक दूसरी को शिकस्त देनेके लिये जी-जानसे चेष्टा करती थीं। किन्तु रूखी सूखी चुटिया के सामने इत्रने तर रहनेवाली दाढ़ीकी एक न चली। रणाङ्गण में हथेलीपर सर रखकर लड़नेवाले मरहट्टे इस बातका प्रणकर महाराज-ष्ट्रसे चले थे कि, या तो बुन्देलखण्डकी रणभूमिमें मरकरही या यवन सेनाको मारकरही हटेंगे।' परिणाम् यह हुआ कि, इस भीष्म प्रतिज्ञा को निबाहनेवाली महाराष्ट्रीय सेनाके सामने, सदासे ऐशो-आराम में मस्त रहनेवाली मुसल्मानी सेनाको हार माननी पड़ी। उसके पैर उखड़ गये और वह रणभूमि छोड़कर भाग चली। महाराष्ट्रीय सेनाने उसका अन्त तक पीछा किया और उसे अत्यन्त कमजोर बनाकर छोड़ दिया। इलाहाबादके नवाब महम्मदखाँ बगष और माळवेके सूबेदार दोनों अपनी जान बचाकर भाग गये।

महाराज छत्रसालपर आई हुई विपदा महाराष्ट्रीय सेनाकी सहा-यतासे सदाके लिये दूर होगई। महाराज इस बातसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वीरवर बाजीरावको पन्नेमें बुलाकर उनका यथोचित आगत-स्वागत और सम्मान किया तथा विजयी सेनाको अच्छा पुरस्कार देकर गौरवान्वित किया। बुन्देलानरेश, वीरशिरोमणि पेशवासे अत्यन्त

प्रसन्न थे। इस विजयको देखकर, जिसका श्रेय बाजीरावही को था, उन्होंने अपना * तीसरा पुत्र मानकर और उन्हें अपने राज्यका एक तिहाई भाग, जिसकी आय एक करोड़ रुपये थी, + जागीरके रूपमें दे दिया।

बाजीरावने अपने भागके तीन हिस्सेकर उनपर तीन सूबेदार नियुक्त

---

* महाराज छत्रसालके जगतराजदेव और हरदेव नामक दो पुत्र थे। जिसके कारण उन्होंने अपने राज्यके तीन बराबर-बराबर भागकर, उनमें से एक भाग बाजीरावको दिया था।

× महाराज छत्रसालने वीरवर बाजीराव पेशवाको जागीरके रूपमें दिये हुए भागके विषयमें इतिहासज्ञों में कुछ मतभेद है। अभी हाल-नापे प्रकाशित होने वाले मराठी मासिकपत्र "लोकशिक्षण" के तीसरे वर्षके मार्च सन् १९३० के अङ्कमें श्री० सुन्दर मेरा बुटाला, बी०ए०एल०एल०बी० ने "मराठेशाहीचें राजकारण" शीर्षक देकर एक लेख लिखा है। जिसके उत्तरार्द्ध में वह 'मराठी रियासत, मध्यविभाग, खण्ड २, पृ० ३८६' का हवाला देकर लिखते हैं कि वीरवर बाजीराव पेशवाने महम्मदखाँ बंगषको शिकस्त देने के लिये महाराज छत्रसालकी जो सहायता की थी, उसके सम्बन्धमें बहुतेरे इतिहासकार उसे गजेन्द्र-मोक्षकी उपमा देकर उस सहायता को बाजीराव का धर्मकार्य बतलाते हैं और वस्तुतः ऐतिहासिक कार्य-कारणकी ओर दुर्लक्ष करते हैं। किन्तु सच बात तो यह थी कि, बाजीराव पेशवाका महाराज छत्रसाल को सहायता देना यह भी उसी हिन्दू साम्राज्य संस्थापन का एक अंशमात्र था, जिसकी संस्थापना के लिये वह दिलोजान से प्रयत्न कर रहे थे।

किये। पहिले हिस्सेका सूबेदार बनाया गोविन्दपन्त बुन्देलेको * । उसके जिम्मे सागर, गुलसराय और जालौन का ४० लाख की आयका इलाका

महाराष्ट्रियों को दिल्ली साम्राज्य का राजसूत्र हाथ में करने के लिये महाराष्ट्र से लेकर दिल्ली तक के सारे भूभागपर अपना राजकीय वर्चस्व रखना अत्यावश्यक था। महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य को तीन भागकर उनमें से एक भाग बाजीराव को दिया था, यह सच है। किन्तु यह भाग उन्होंने अपनी इच्छा से नहीं दिया था अपितु बाजीराव ने उसके लिये माँग पेशकी थी और यदि इसपर भी वह उसे न देते, तो बाजीराव में उतनी शक्ति थी कि वह उसे ज़बर्दस्ती ले लेते। वह जानते थे कि, बिना उत्तर हिन्दुस्तान के भू-प्रदेश पर दखल किये दिल्ली के राजसूत्रों का सञ्चालन करना दक्षिण के महाराष्ट्रियों को कष्टसाध्यही नहीं, असम्भवसा है। ऐसी दशामें महाराज छत्रसाल द्वारा प्राप्त हुआ यह सुनहरा अवसर भला वह कब छोड़नेवाले थे। उस नीतिचतुर वीरपुङ्गवको इस सुअवसर की उपयोगिता समझते देर न लगी और उसने उत्तर हिन्दुस्तान में भूमि लाभ करने की बहुत दिनों की इच्छा पूरी होने की सम्भावना देखकर ही बुन्देला नरेश को सहायता करने का निश्चय किया था। बाजीराव के विशाल अन्तःकरण में सारे भारतवर्ष हिन्दू में साम्राज्य स्थापन करने की महत्वाकांक्षा दृढ़ हो चुकी थी। उन्हें ज्ञात था कि, सवाई जयसिंह तथा अन्य प्रमुख-प्रमुख राजपूत नृपतिगण अन्तःकरण से उन्हीं के पक्ष में थे। अर्थात् इससे यह सिद्ध है कि, महाराज छत्रसाल की सहायता और जैतपुर का युद्ध दोनों बातें एक विशिष्ट समस्या के अङ्ग हैं।'

* गोविन्दपन्त 'बुन्देले' का वास्तविक उपनाम 'खेर' था। यह महाराष्ट्रीय समाजान्तर्गत 'कन्हाड़ी' नामक उपजातिसे था। पहिले पहल बाजीरावके पास इसकी भर्ती एक मामूली ख़िदमतगारके रूपमें

कर दिया। दूसरा बान्दा और कालपीका ४० लाखका इलाका, † शमशेर बहादुरको दिया गया। शेष तीसरा हिस्सा—झाँसी † प्रान्त, २० लाखकी आयका था, उसकी सूबेदारी गङ्गाधरपन्त नामक एक महाराष्ट्रीय सरदारको देकर वीरवर बाजीराव दक्षिण लौट गये।

हुई थी। किन्तु थोड़ेही अवकाशमें इसने अपने सच्चरित्र और शौर्यसे बाजीरावका हृदय जीत लिया। धीरे-धीरे बाजीरावने उसे ऊँचे पदपर चढ़ाना आरम्भ किया और अन्तमें बुन्देलखण्डकी यात्रामें उसे उक्त प्रान्तों को सूबेदारी दे दी। बुन्देलखण्डमें रहनेपर वह भी 'बुन्देला' समझा जाने लगा और उसके नामके साथ 'खेर' के बदले 'बुन्देले' का सिक्का जम गया। इस वीरसरदार ने पानीपत की लड़ाई में बड़-बड़े पराक्रम किये थे। पेशवाकी अन्तर्वेदीमें रहकर यही वीर उनके लिये रसद जमा करता तथा घात पाते ही डाका डालकर अहमदशाह अब्दाली की रसद लूट लेता था। यही करते-करते यह उस लड़ाई में नजीबखाँ रुहेलेके हाथों मारा गया। इसकेदो पुत्र थे, जिन्होंने कुछ दिनों तक कालपीमें राज्य किया और उनके वंशज अबतक भी गुरुसराय (संयुक्त प्रान्त जिला झाँसी) में वर्त्तमान हैं। उनके उदराभरणके लिये वर्त्तमान अंग्रेज़ सरकारने प्राय: ३ लाख का इलाका दे दिया है।

† इतिहास यह बतलाता है कि, बाजीरावके पास 'मस्तानी' नामक एक यवन वेश्या थी। इससे जो पुत्र पैदा हुआ उसीका नाम शमशेर बहादुर रखा गया। उसको बाजीरावने बाँदा और कालपीका सूबेदार नियुक्त किया था। ईस्वी सन् १८१६ तक यह प्रान्त उसी वेश्यापुत्रके वंशजोंके आधीन रहे। किन्तु ईस्वी सन् १८१७ में अंग्रेज़सरकारने उन्हें अपने राज्यमें मिला लिया और परिवर्त्तनमें उन अधिकार सम्पन्न वंशजों

† झाँसीकी सूबेदारीके विषयमें इतिहासज्ञ अभी इस बातका निश्चय

उनकी ओरसे झाँसी प्रान्तकी आय वसूल करने प्रतिवर्ष एक प्रतिनिधि पहुँचा करता था। तदनुसार गङ्गाधरपन्तके समय मल्हार कृष्ण नामक एक प्रतिनिधि झाँसी भेज दिया गया था। किन्तु संयोगकी बात यह हुई कि, ओरछाके बुन्देलोंने उस प्रतिनिधिका खूनकर साथही साथ उसके दो लड़के और जामाताको भी कपटपूर्वक मार डाला। परिणाम यह हुआ कि, पेशवाईमें क्रोधकी आग धधक उठी। उन्होंने ओरछा राज्यपर चढ़ाई कर दी और ओरछानरेश को परास्तकर कैद कर लिया। उनका राजप्रसाद गिराकर मिट्टीमें मिला दिया गया और उनकी राजधानीमें गदूहे जोतकर 'हल' चला दिये गये।

को ४ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन नियुक्त कर दी। कहा जाता है कि, शमशेर बहादुरके वंशज अबतक इन्दौरमें वर्तमान हैं, जिन्हें सरकारकी ओरसे १२ हजार रुपये वार्षिक पेन्शन मिला करती है।

नहीं कर सके हैं कि, आरम्भमें झाँसीकी सूबेदारी किसे मिली थी। पेशवाईका इतिहास पढ़नेसे जो कुछ ज्ञात होता है वह यह है कि, पहिले पहल झाँसीप्रान्तकी सूबेदारी गङ्गाधरपन्त नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण को मिली थी। इसके पश्चात् इसके सूबेदार बने गोबिन्दपन्त बुन्देले। इनके भी अनन्तर ईस्वी सन् १७४२ में नारोशङ्करदानी मोतीवाले इसके सूबेदार नियत हुए। इन्हें भी सन् १७५७ ईस्वी में पेशवाने वापिस बुला लिया और इनकी जगह महदाजी गोविन्दको सूबेदारी दे दी। इस शूरवीर सूबेदारने अपने स्वपराक्रमसे बुन्देलखण्डको अपने अधिकारमें कर लिया। किन्तु दुर्दैवकी बात यह थी कि, वह वहाँ दो वर्षसे अधिक न रह सका क्योंकि उनकी मृत्यु हो गयी। इनके काल-कवलित होजाने पर रघुनाथ हरी नेवालकर नामक एक शूरवीर सरदार इस प्रान्तकी सूबेदारी करनेके लिये भेज दिया गया।

इतना हो चुकनेपर गङ्गाधरपन्त पूनेमें वापिस बुला लिये गये और उनकी जगह वीर सरदार + नारोशंकर 'दानी' मोतीवालेकी नियुक्तिकर दी गई। उसके समयमें झाँसी प्रान्तका क्षेत्रफल पाँच हजार वर्गमील था और उसकी जनसंख्या थी प्रायः १० लाख। नरोपन्तने १८४२ ईस्वीसे लेकर १८५६ तक अर्थात् प्रायः १४ वर्षतक इस प्रान्तकी सूबेदारीकी। किन्तु अपने कालके अन्तिम दिनोंमें उसने अपने प्रान्तकी आयका एकभी पैसा पेशवाको न भेजा। जिसके कारण पेशवाने उसपर असंतुष्ट होकर उसे वापिस बुलवा लिया।

+ ऊपर धाराप्रावहीरूपमें दी हुई पाठ्य पंक्तियोंमें एक जगह नारोशंकरदानी मोतीवाला का जिक्र आया है उनके सम्बन्धमें गवर्नमेण्ट सिलेक्शनमें मि० फारेस्टने लिखा है:—

"In the reign of Shahu Raja of Satara, the first of th family (Raja Bahadur family) whose name was Naro shanker Dani (of the sect of Rigvedi Brahmin) was nominated by Nana saheb Peshwa to collect the revenues of Jhansi in Hindustan. He held the office for Fourteen yeares without Contributing single Rupee to the Government and eventually assumed a 'Nowbat' as millitary leader, for which reasons he was recalled to Poona. And on

इसी समय अर्थात् सन् १५५६ ईस्वीमें झाँसीप्रान्तके पूर्व्वाधिकारी गुसाइयोंने विद्रोहका झगड़ा खड़ाकर दिया। कहा जाता है कि, उन्होंने तत्कालीन पेशवाके सूबेदार नारोशंकरको भी अपने आधीन कर लिया था। जिसे देखकरही पेशवाने नारोशंकर को वापिस बुलाया था और उसकी जगह * रघुनाथ हरी नेवालकर नामक एक महाराष्ट्र सरदारको झाँसीका सूबेदार बनाकर गुसाइयों का दमन करने भेजा था।

उसने झाँसी पहुँचतेही बड़े जोरों-शोरोंके साथ राजद्रोहियों से टक्कर ली और उन्हें पूरी तरह परास्तकर पुनः उस प्रान्तमें पेशवाओंके शान्त

---

his entry, he not only caused his 'nowbat' to be beaten throughout the city but came directly to the Peshawa's palace, where he claimed apartments. Having sufficient address to satisfy the Peshwa of the conduct, he was hence forward treated as one of the great millitary chiefs of the Empire and Known by the name of "motiwala" from an enormous pearl which he wore."

* रघुनाथ हरी नेवालकरके पूर्वज बम्बईप्रान्तके रत्नागिरी जिलेमें राजापुरके पास "पवस" नामक गाँवमें रहते थे। पेशवाईके आरम्भकाल में यह घराना खानदेशमें जाकर रहने लगा। पश्चात् उसकी पेशवा और मल्हारराव होलकरको सेनामें सरदारोंके पदपर नियुक्ति हुई।

शासनकी स्थापना कर दी। पेशवा उसकी यह अपूर्व विजय देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने उस विजयी सूबेदार रघुनाथ हरी नेवालकरके नाम १० हजार रुपयेकी जागीर वंशपरंपरा के लिये इनाम में लिखदी। जो अबतक भी उनके वंशजों के पास कायम है।

रघुनाथ हरी नेवालकरने उन गुसाइयोंका दमनकर झांसीप्रांतमें और भी कितनेही सुधार किये। उन्होंने अपने प्रांतको बुन्देलोंके आक्रमणसे हमेशाके लिये बचाये रखनेकी इच्छासे एक ज़बर्दस्त सेना एकत्रित कर रखी। जिन गुसाइयों ने पहिले राजद्रोह खड़ा कर रखा था, उन्हें अपने बुद्धिबल और कौशलसे झाँसीप्रांत के बाहर खदेड़ दिया।

कहाजाता है कि, उनके आगमनके पूर्व झांसीप्रांत में गुसाइयोंके अनन्त, आभात, आखात और नागा नामक चार मठ थे। जिसमेंसे हर एकमें प्रायः एक-एक हजार मनुष्य रहते और उनमेंसे हरएकको चार-चार रुपये मासिक मिला करते थे। वह केवल इसीलिये कि आवश्यकता पड़नेपर वे लड़ाईके समय गुसाइयों का साथ दें। वीरवर नेवालकरने झाँसीसे उनका ज़ोर इस तरह कमजोर कर दिया कि, उन्हें पुनः गर्दन उठाकर देखनेकी भी हिम्मत न रही।

उन्होंने अपने रहते झाँसीप्रांत को अत्यंत उन्नतिशील बनाया। उसकी आय में वृद्धि की। बुन्देलखण्ड सरीखे प्रबल हिन्दूसाम्राज्य में, जिसके समान शक्तिशाली हिन्दूसाम्राज्य उस समय उत्तरी हिन्दुस्तान में दूसरा न था, महाराष्ट्रीय सत्ता की वृद्धि की। जिसके कारण पेशवाईमें उनकी बड़ी इज्जत हुई और उन्हें झाँसीप्रांतका वंश परंपरागत सूबेदार बना दिया गया।

उन्होंने जैसा कि, ऊपर लिखा है, बड़े साहस और पराक्रम के साथ झांसी प्रान्तका शासन किया और वृद्धावस्था में अपने भाई शिव-राव भाऊको सूबेदारी देकर आप पारलौकिक कल्याणके हेतु ईश्वर चिन्तना में अपनी शेष आयु बिताने के लिये काशी में चले गये। वहां ईस्वी सन् १७९६ में आपका देहान्त हो गया।

प्यारे पाठक ! जिस समय का यह हाल लिखा जा रहा है उस समय महाराष्ट्र साम्राज्यके सूत्रधार थे-द्वितीय बाजीराव पेशवा। आपके शासन कालमें सारे महाराष्ट्र साम्राज्यमें विचित्र धान्धली मची हुई थी। सर्वत्र अव्यवस्था और अशान्ति का बाजार गरम था। राज्यव्यवस्था में जिधर देखो उधर ही अन्धेर ही अन्धेर दिखलायी देता था। सब महा-राष्ट्रीय सरदार स्वतन्त्र होने का उद्योग कर रहे थे। इस दुर्व्यवस्था का हाल, भारत पर कभी से गृद्ध दृष्टि लगाकर बैठे हुए पाश्चात्य बगुला भगत बनियों से छिपा न रहा। उन्होंने अवसर पाते ही बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। किन्तु शिवरावभाऊ अंग्रेजोंके इस बनि-यौटी छद्मवेश में छिपी हुई भयङ्कर राज्यतृष्णाकी पैशाचिक वृत्तिको पहिले ही से भांप चुके थे। अतः उन्होंने अत्यन्त चातुर्य से काम लेकर सारे बुन्देलनरेशों का एकीकरण किया। परिणाम यह हुआ कि, बुन्देलखण्ड की सामुहिक शक्ति के सामने धूर्तशिरोमणि अंग्रेजोंकी एक न चली और उनका पूर्णरीति से पराभव हो गया।

अब तो शिवरावभाऊ की सारे बुन्देलखण्ड ही में क्या 'पेशवाई में भी "वाहवाही" होने लगी। बुन्देलानरेश उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे। अंग्रेजों ने ईस्वी ८१०४ के फेब्रुअरी महीने को ६ तारीख

को उनसे सुलह कर ली। इतिहासज्ञों का कथन है कि, यह सुलह करना ही अंग्रेजों का बुन्देलखण्ड में 'चंचु-प्रवेश' करना था और तभी से इन 'विड़ालाक्षों' की जड़ इस प्रदेश में मजबूती से जमी।

शिवरावभाऊ ने झांसीप्रान्त में १८ वर्षों तक सूबेदारीका उपभोग किया। आपको कृष्णाराव, रघुनाथ राव और गंगाधर राव नामक तीन पुत्र थे। जिनमें कृष्णाराव सबसे बड़े और प्रेमभाजन थे। किन्तु 'भाऊ' की सूबेदारी ही में सन् १८११ ईस्वी में उनका देहान्त होगया। जिसके कारण उन्होंने अपने नाती, स्वर्गीय कृष्णाराव के पुत्र रामचन्द्र-राव को ही ईस्वी सन् १८१४ में अपनी सूबेदारीका हकदार बनाया और आप अपने बड़े भाई की तरह अपना शेष जीवन ईश्वर चिन्तन में बिताने ब्रह्मावर्त चले गये। वहां उन्होंने पतित-पावनी-जाह्नवी में जल-समाधि ले ली।

रामचन्द्रराव को जिस समय सूबेदारी का पद मिला उस समय वह बालक थे, अतः उनकी माता सखूबाई और झांसीके पुराने राजमन्त्री, गोपालराव ही सारी सूबेदारीका काम काज देखते रहे। किन्तु बाल्या-वस्था शेष होने पर वीरपुत्र रामचन्द्र रावने सारा राज-काज अपने हाथमें लेलिया! सखूबाई यद्यपि उस वीरबालक की जननी थी तथापि उसका हृदय पाषाण को भी पिघलाने का दावा रखता था। उसने यद्यपि राम-चन्द्रराव को अपनी कोखसे जन्म दिया था तथापि वह शासनाधिकार की आसुरी महत्वाकाँक्षा के सम्मुख अपने पुत्रको तुच्छ और शत्रु के रूप में देखती थी। रामचन्द्रराव को सूबेदारी का प्रबन्ध अपने हाथमें लेते देख उसके पैशाचिक हृदय में आग सी लग गई और

वह भीषण प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर अपने ही पुत्र को इस दीन-दुनियां से उठा देने पर तुल गयी। उसने लक्ष्मीताल नामक तालाब में, जहां रामचन्द्रराव नित्य तैरने जाया करते थे, गुप्त रीतिसे भाले गड़वा दिये। किन्तु "मारने वाले से तारने वाले के हाथ जबर्दस्त होते हैं, इस उक्ति की तरह रामचन्द्रराव को बचाने वाला एक माई का लाल निकल ही आया और वह था,—लालू कोंदलकर नामक रामचन्द्ररावका एक स्वामि-भक्त सेवक। उसे किसी तरह सखूबाई के उक्त षड्यन्त्र का पता चल गया था और उसीने ऐन मौके पर रामचन्द्रराव को सारा हाल बताकर उनकी प्राणरक्षा की थी। रामचन्द्रराव उसकी इस स्वामिनिष्ठासे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे पर्याप्त पुरस्कार देकर गौरवान्वित किया। परन्तु पाषाण हृदया सखूबाई ने उस बेचारे पर क्रुद्ध होकर उसे धोखे से मरवा डाला।

वीरवर रामचन्द्रराव अपने इस प्राणरक्षक सेवककी मृत्युसे अत्यन्त दुखी हुए। उन्हें अपनी माता प्रत्यक्ष राक्षसी-सी मालूम हुई। वह उस पर बहुत नाराज हुए और धिक्कारने लगे। किन्तु अब इससे अधिक और हो ही क्या सकता था! विवश होकर उन्होंने उसे जन्म भर के लिये कैद करवा दिया।

कितना भयंकर है, यह आसुरी राज्यलोभ! हा! जिस राज्यलोभके वशीभूत होकर एक माता अपने जात पुत्र का वध करनेके हेतु तैयार हो गयी, जिस राज्य लोभ के कारण पेशवाई की कुलांगना आनन्दीबाई अपने भतीजे का खून करने के लिये उतारु हो गयी, वह राज्यलोभ, राज्यलोभ नहीं, किन्तु आसुरी लालसा है, जो महाराष्ट्र साम्राज्यके

हिन्दुकुलभूषण छत्रपति शिवाजीके पुत्र सम्भाजी महाराजके समयमेंही महाराष्ट्र में घुस पड़ी थी। पेशवाईमें फूली-फली और १८५७ के सैनिक विद्रोहके समय महाराष्ट्रियोंका सर्वस्व लेकर ही शान्त हुई। अभी भी उस आसुरी लालसाका विष, स्वार्थ-बुद्धि और ईर्षा-द्वेषके रूप में महाराष्ट्रीय समाज में वर्त्तमान् है। परमात्माही जाने वह कब और कैसे शांत होगा !! अस्तु,

ऊपर हम रामचन्द्रराव के समकालीन पेशवाई साम्राज्य का चित्र चित्रण एक जगह करही आये हैं। अतः यहाँ पर उसकी पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं बोध होती। हाँ, यहाँपर हम उस सम्बन्धमें केवल इतना ही लिख देना उचित समझते हैं, कि द्वितीय पेशवाके शासन काल में पेशवाई साम्राज्य की दशा उत्तरोत्तर गिरती ही गयी। उस समय के पेशवा विलास की प्रत्यक्ष प्रतिमा हो रहे थे। उनके शक्तिशाली राज्यसिंहासनमें स्वार्थ और मत्सरकी घुन लग गयी थी। जिसका पता पाकर पाश्चात्य देशकी 'सफेद-दीमक' भी उस तक जा पहुँची और धीरे-धीरे उस साम्राज्य में अपनी विस्तार माया बढ़ाने लगी। पेशवा अंग्रेजोंके हाथ के जीते जागते खिलौने बन गये। उनके हाथके शासनसूत्र एक-एक करके गोरे-गोरे कर-कमलोंमें जा विराजे।

सारांश यह कि ईस्वी सन् १८१८ में पेशवाई साम्राज्यको ओरसे, पेशवा के वकील मोर दिक्षित और बालाजीने एलिफन्टन साहब के बंगले में पधार कर जो सुलहनामा तैय्यार किया, उसकी १३ हवीं धारा के अनुसार बुन्देलखण्डका सारा शासनाधिकार अंग्रेज सरकारके हाथमें चला गया।

इस नये सुलहनामें के अनुसार उक्त धारा को कार्यमें परिणत करनेके लिये ईस्वी सन् १८१७ के नवम्बर मास को १७ हवीं तारीख को अंग्रेज सरकारने झांसी प्रान्त के सूबेदार रामचन्द्रावके साथ एक नया सुलहनामा लिखा। जिसमें उन्होंने रामचन्द्रावको वंशपरम्परा के लिये झाँसी का राज्य अपनी ओर से लिख दिया जो विशेष-रूप में स्मरण रखने की बात है।

रामचन्द्रावने अपने समयमें अंग्रेजोंकी पर्याप्तरूपसे सहायताकी थी। ईस्वी सन् १८२४ में मध्यहिन्दुस्तानके 'पिण्डारियों, ने विलक्षण रूपसे ऊधम मचा रखा था। किन्तु वीरवर रामचन्द्रावने तत्क्षण उनकी पूरी मरम्मत कर दी। इसके कुछ कालके उपरान्त नाना पण्डित नामक एक वीर सरदार अंग्रेजों का कट्टर दुश्मन बन बैठा था। उसने अंग्रेजोंके कितनेही प्रान्त यहाँ तक कि, काल्पी शहरतक जीत कर अपने आधीन कर लिया था। झांसीके तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट 'ऐन्सली साहब, उसकी बढ़ती हुई शक्तिको देखकर घबड़ा गये और उन्होंने उससे मुकाबिला करने के लिये रामचन्द्रावसे सहायता की याचना की। वीरवर रामचन्द्रावने उसी समय अपने रिसालेके ४०० घुड़सवार, १००० पैदल वीर सैनिक और दो तोपें उनकी मदद के लिये भेज दीं।

उस शूर सेनाने काल्पीमें पहुँचकर विद्रोहियों का पूर्ण रूपसे दमन कर दिया और अंग्रेजोंकी काल्पी पुनः एक बार उनके सुपुर्द कर दी। पोलिटिकल एजेण्ट 'एन्सली साहब' झाँसी की सेना पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। यह विजय अंग्रेजों के लिये इतनी कठिन थी कि तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेन्टिकने अपने लेखमें खुले हृदयसे इस बात

को स्वीकार किया है कि, यदि उस समय झाँसी की सेना अंग्रेज़ोंके साथ न होती तो उनका कालपी जीतना असम्भव था।

उक्त गवर्नर ने ईस्वी सन् १८३२ में झाँसीमें एक बड़ा दरबार किया। जिसमें उन्होंने रामचन्द्र राव के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें 'महाराजाधिराज' तथा 'फ़िदवी बादशाह जानेजाँ इँगलिस्तान की' पदवी देकर गौरवान्वित किया।

इसके अनन्तर कुछ ही वर्षों में अर्थात् ईस्वी सन् १८३५ में, रामचन्द्रावका देहान्त हुआ। उनको कोई निजी पुत्र न होने के कारण, उन्होंने कृष्णराव नामक एक लड़का गोद लिया था। परन्तु वह दत्तक विधान, शास्त्रानुकूल नहीं समझा गया और उसकी जगह झाँसीके तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट 'बेग्वी' साहब की अनुमति लेकर शिवरावभाऊ के दूसरे पुत्र रघुनाथ को देदी गयी।

किन्तु खेद की बात यह थी कि, रघुनाथराव अत्यन्त दुर्व्यसनी और अत्याचारी सिद्ध हुए। जिसके कारण झाँसीप्रान्त की जनताको अत्यन्त कष्ट उठाने पड़े और इधर राज्य की आय भी घट गयी। अंग्रेज़ों से यह बात देखी न गयी और उसने ईस्वी सन् १८३७ में झाँसी का राज्यसूत्र अपने हाथ में ले लिया। इसके एक ही वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् १८३८ ईस्वीमें रघुनाथराव का देहान्त हो गया। उनकी मृत्युपर झाँसीकी गद्दीके चार अधिकारी पाये गये—गङ्गाधर राव, रामचन्द्रराव का दत्तक पुत्र-कृष्णराव, रघुनाथराव का दासीपुत्र,-*अलीबहादुर और रघुनाथराव की अर्द्धाङ्गिनी।

---

*रघुनाथरावने 'गजरा' नामक एक यवन वेश्या रक्खी थी। जिससे

उक्त चार उम्मीदवारों को देखकर ब्रिटिश सरकारने गद्दी का वारिस निश्चित करानेके लिये एक कमीशन नियुक्त किया। उसमें ग्वालियरके रेजिडेन्ट लेफ्टिनेण्ट स्पेअर्स, सायमन फ्रेजर और कैप्टन डी० रास नामके तीन मेम्बर थे। इस कमीशन ने अत्यन्त मार्म्मिक रूपसे विचार कर शिवरावभाऊ के कनिष्ठपुत्र गङ्गाधररावको ही गद्दी का वारिस सिद्ध किया। अतः वही गद्दी पर बैठाये गये।

पाठक ! यही गङ्गाधर राव हमारी चरित्र-नायिका स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाई के पति थे।

* * * *

लक्ष्मीबाईकी पूर्व्व-पीठिका—महाराष्ट्र देश में सताराके निकट सलिल-तरङ्गा कृष्णा नदीके किनारे वाई नामक एक ग्राम है। इस ग्राम में कृष्णराव ताम्बे नामके एक महाराष्ट्र सज्जन रहते थे। आपके तारुण्यजीवनमें सारे महाराष्ट्र में पेशवाका दमदमा खूब जोर-शोरसे बज रहा था। पेशवाईका संचालक समाज अपने यहाँ के गुणवान् और साहसी मनुष्यों को चुन-चुन कर साम्राज्य का सहायक-स्तम्भ बना रहा

अलीबहादुर और शमशेर बहादुर नामके दो पुत्र हुए थे। राजराके मरने पर उसकी कब्र किले पर बनायी थी, जो अबतक वहां वर्त्तमान है। वहाँ प्रत्येक गुरुवार को मेला लगता है। जिसके खर्चके लिये १५०० रु० आमदनी का एक गाँव इनाममें दिया हुआ है। जो अब तक उसीके निमित्त चला आता है। राजराके दोनों पुत्रों को ६-६ हजारकी जागीरें दी गयी जो उनके वंशजों के नाम अभी भी बनी हुई हैं।

था। दैवात् उन्हीं चुनिन्दे लोगों में से हमारे उक्त कथित् महाराष्ट्रीय सज्जनकी भी गणना हुई और आप पेशवाके न्यायाधीशके आसनपर आसीन कर दिये गये।

आपको एक पुत्र था। जिसका नाम था बलवन्तराव। बलवन्तराव बड़े साहसी धीर-वीर और पराक्रमी पुरुष थे। आपका शरीर अत्यन्त गठीला और दिल जवानी के जोशसे भरा हुआ था। आप बड़े गरम मिज़ाज़के और परले सिरके लड़ाके जवान थे। आपकी धमनियोंमें धारा प्रवाही रूपसे दौड़ने वाले जीवित रक्तको देखकर ही पेशवा ने आपको अपनी पूनेकी सेनाका सेनापति बना दिया था। आपको दो पुत्र हुए। जिनके नाम थे, मोरोपन्त और सदाशिवराव। उन दोनों में मोरोपन्त बड़े थे।

मोरोपन्त के समयमें पेशवाई साम्राज्य का हाल बड़ा 'बेहाल' होरहा था। महाराष्ट्र के अन्तिम पेशवा-राव बाजी, उर्फ दूसरे बाजीराव सन् १८१८ ईस्वी में अपना सारा शासनसूत्र अंग्रेजोंके गोरे-गोरे हाथोंमें देकर ब्रह्मावर्तमें "हरिः ॐतत्सत्"का पाठ पढ़ रहे थे। उन्हें वहाँ बैठे बिठाये अंग्रेजों की ओरसे ८ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन मिलती थी। उनको इस तरह अपने हाथ का कठपुतला बनाकर ब्रह्मवर्तमें मूर्तिकी तरह बैठा देने पर हमारी दयालु सरकारने उनके भाई चिमाजी अप्पाको उनकी गद्दी देनी चाही। उस समय उसने चिम्मजी अप्पाको पूनेके इर्द-गिर्द का २० लाख रुपये की आयका मुल्क देना स्वीकार किया था। किन्तु उन्होंने महिमामयी की इस अपूर्व दयाको स्वीकार न किया।

चमाजी अप्पा बड़े स्वाभिमानी, स्वतन्त्र विचार के और स्वाधीन

पुरुष थे। उन्हें 'गोरों की काली करतूत' पूर्णरूपसे अवगत थी। वह अपने सहोदरकी तरह किसीके हाथका खिलौना बनना अथवा दूसरेके इशारेपर नाचने वाला 'बन्दर' होना पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने बड़ी वीरताके साथ अंग्रेजों की उस उदारता का निषेध किया और काशी चले गये।

हमारे इस परिच्छेदके चरित्र नायक मोरोपन्त ताम्बे इसी महापुरुषके कृपाभाजनोंमेंसे थे। अतः वह भी उनके साथ काशी चले गये और वहाँ जाकर उनका सारा कामकाज देखने लगे। श्रीमान्‌की ओरसे उन्हें चरितार्थ साधनके लिये ६०० रू० वार्षिक मिलते थे। इस समय उनके साथ उनकी अर्धांङ्गिणी भागीरथी बाईभी थीं। इस दम्पतिमें परस्पर बड़ा प्रेम था।

इसी पतिप्राणा सौभाग्यवती भागीरथी बाईकी कोखसे कार्तिक बदी १४ संवत् १८९१ विक्रमी अर्थात् तारीख १६ नवम्बर सन् १८३५ ईस्वीमें महारानी लक्ष्मीबाईका जन्म हुआ।

* लक्ष्मीबाईका नैहरका नाम मनूबाई था। मनूबाईको देखकर

---

* लक्ष्मीबाईका नैहरका नाम मनूबाई अर्थात् मणिकर्णिका बाई था। मणिकर्णिका का लघुरूप मनू होता है। अतः उसी नामसे वह अपने परिवारमें सम्बोधित की जाने लगीं। महाराष्ट्रियोंमें पितृगृहमें एक नाम रखा जाता है तथा विवाह होनेपर श्वसुरगृहमें दूसरा नाम, जोकि जीवनभर स्थायी रहता है। मनूबाईके श्वसुर गृहका नाम लक्ष्मीबाई था। अतः यही नाम इतिहासमें प्रसिद्ध हुआ है।

उसके पिता मोरोपन्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। मनूबाईकी वह शिशु-मूर्ति, उसका विशाल मस्तक, कमानदार भौंहें, सुदीर्घ नासिका, गठीला बदन गौरवर्ण, कमलनेत्र तथा काले केशकलाप देखकर ही, उनके मनमें उस नवजात कन्याके प्रति एक विशिष्ट प्रकारका स्नेह और आकर्षण पैदा हो गया। उन्होंने उस अवसर पर पुत्रजन्मसे भी अधिक उत्सव मनाया। काशीके विख्यात ज्योतिषियों द्वारा उसकी कुण्डली बनवायी गयी। उन्होंने उसका भविष्य कथन करते हुए स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि,—"यह कन्या वह वीर रमणी होगी जिसके सामने बड़े-बड़े बलवान योद्धा नतमस्तक हो जायगें। इसके सामने लक्ष्मी हाथ बान्धे खड़ी रहेगी और यह किसी पराक्रमी राजाकी गृहलक्ष्मी बनेगी। संसार के इतिहासमें इसका नाम सदाके लिये अमर रहेगा और यह प्रलयकाल तक देवी देवताओंकी तरह पूजी और मानी जायगी।"

मनूबाई के जन्म लेनेपर, कुछ दिनों पश्चात् चिमाजी अप्पाका देहान्त होगया। उस समय मनूबाई केवल ३।४ वर्षकी बालिका थीं। चिमाजी अप्पा के पश्चात् मोरोपन्तका काशीमें कोई सहायक न रहा। जिसके कारण उन्हें अपने परिवारका उदर निर्वाह करना कठिन होगया। उनकी इस दीन-हीन अवस्थाका समाचार सुनकर स्वर्गवासी चिमाजी अप्पाके सहोदर द्वितीय बाजीराव पेशवाने, जो उस समय अपना सब राजकाज अँग्रेज़ोंके हाथ सौंपकर ब्रह्मावर्त्तमें जीवन निर्वाह कर रहे थे, उन्हें अपने आश्रयमें बुलवा लिया। वहाँ पहुँचनेपर मोरोपन्तने थोड़ेही अवकाशमें बाजीरावकी पूर्ण कृपा प्राप्त कर ली और वह उनके आश्रयमें पड़े-पड़े आनन्दसे जीवन निर्वाह करने लगे।

किन्तु, ब्रह्मावर्तमें जानेपरभी दुर्दैवने मनूबाईके पिताका साथ नहीं छोड़ा था। वहाँ पहुँचनेपर शीघ्रही मनूबाईकी माता भागीरथीबाईका देहान्त हो गया। उस समय मनूबाईकी अवस्था केवल ३।४ वर्षकी थी। उस सतीके देहान्त हो जानेके कारण मोरोपन्त के हृदयपर मानो वज्रसा गिर गया। किन्तु सिवाय रोनेके दूसरा चाराही क्या था? यह मानी हुई बात है कि, क्षमताशील और धर्म्मवीर पुरुषोंमें विपत्तिके समय नैसर्गिकरूपसेही धैर्य्यका संचारहो जाया करता है। इसी कठोर सत्यके अनुसार धर्म्मवीर मोरेश्वरपन्त शान्त होकर धैर्य्यपूर्वक अपने शोक-सन्तप्त हृदयको समझा-बुझाकर भविष्यत कर्त्तव्यकी ओर अग्रसर हुए! जब कभी उन्हें अपनी मृत भार्याका स्मरण हो आता तब वह यही कहा करते—

"लिखितमपि ललाटे प्रोंचितुम् को समर्थः?"

उन्होंने अपने संतप्त अन्तःकरणको शान्त बनाकर अपने गृहकार्योंका सारा भार अपने सिर ले लिया। वह अपनी एकमात्र कन्या मनूबाईको अपना जीवन-सर्व्वस्व समझकर उसका बड़े प्रेमसे लालन-पालन करने लगे। मनूबाई अपनी स्वर्गीय माताके अभावमें पितृवात्सल्यके पुनीत-प्रेम—पीयूषका आनन्दानुभव करती हुई शुक्लपक्षीय चन्द्रिकाकी तरह उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगी। मोरोपन्त उसे कभी भूलकरभी अपनी दृष्टिसे दूर नहीं करते थे। वह जिस तरह अपने परमप्रिय पिताके आँखोंकी 'पुतली' हो रही थी उसीतरह बाजीराव तथा उनके समीपवर्तीय लोगभी उसे बड़े वात्सल्यकी दृष्टिसे देखते थे। यही कारण था कि, वह सदा अपने पिताश्रीके साथ पुरुषवर्गमेंही रहा करती थी। बाजीराव पेशवा

तथा उनके आश्रितगण उसके बाल्यकालीन सौन्दर्यको देखकर मुग्ध हो जाते और उसे "छबीली" कहकर पुकारते थे।

प्यारे पाठक! जिस समयका हाल ऊपर लिखा गया है, उस समय बाजीरावके दत्तकपुत्र नानासाहब तथा रावसाहब भी अपने शैशव जीवन-ही में थे। मनूबाई तथा उनकी अवस्था प्रायः समान होनेके कारण तथा एकही जगह वृद्धि पानेके कारण तीनोही शिशुओंमें आपसमें खूब बना करती थी। वह सब एकही साथ खेला-कूदा करते थे। बाजीरावने उन शिशुओंकी शिक्षाकाभी यथेष्ट प्रबन्ध कर दिया था। उन्हें प्राचीन शिक्षा प्रणालीके अनुसार लिखना-पढ़ना, तलवार-बनेठी, पट्टा-लेजिम इत्यादि अस्त्रशस्त्र चलाना, बन्दूकोंका सन्धान बान्धना, भाले और तीर फेंकना, घोड़े तथा हाथियों की सवारी करना इत्यादि कार्य बड़ी निपुणता के साथ सिखलाये जा रहे थे। मनूबाई ये शिक्षाएं बड़े प्रेमके साथ ग्रहण कर रही थीं। उसे बचपनसेही दौड़धूप करना, दण्ड-बैठक करना, अपने बराबरकी लड़कियोंमें रानी बनकर उनपर शासन करना, उन्हें अपराधी ठहराकर दण्ड देना इत्यादि खेल पसन्द थे। वह स्वभावतः ही बड़ी चपला और एकपाठी थी। नानासाहबके प्रति उसका विशेष स्नेह था। वह जो कुछभी करते,—वह भी ठीक उसीका अनुकरण करती और उसके लिये हठ करती थी। नानासाहब जब कभी घोड़ेपर सवार होकर वायु सेवन करने निकलते तब वह भी एक घोड़ेपर सवार होकर उनके पीछे निकलती थी। उनको हाथीपर चढ़ते देख आप भी हाथीपर चढ़नेके लिये हठ कर बैठती थी।

नानासाहब उसके उस बाल्यकालीन प्रतिद्वन्दिता-मिश्रित स्नेहको

नहीं पहिचानते थे, सो बात नहीं थी। वह भी उसे अपनी छोटी और सगी बहिनकी तरहही मानते थे। किन्तु उन्हें उसे चिढ़ानेमें बड़ा मज़ा आता था। क्यों न हो ?–हमारे जिन पाठकोंके यहाँ परमात्माकी दया है और उनके यहाँ दो-चार समवयस्क बच्चे हैं, उन्हें इस बातको समझने का अवसर अवश्य प्राप्त हुआ होगा। वह भली भाँति समझ सकते हैं कि, बाल्यकालीन प्रेम-कलहमें कैसा स्वर्गीय मज़ा मिलता है।

एक दिनकी बात है कि, नानासाहब हाथीपर सवार होकर घूमनेको निकले। उन्हें हाथीपर सवार होते देख मनुबाईने भी उनका अनुसरण करनेका हठ पकड़ा। बाजीरावने उसे हठ करते देख, नानासाहबको उसे हाथीपर बैठा लेनेका संकेत किया। किन्तु नानासाहबने मनूबाईको चिढ़ानेके लिये उस ओर आना-कानी कर दी। मनूबाईको यह बात बड़ी बुरी लगी और उसने रो-रोकर ज़मीन आस्मान एक कर दिये।

उसकी इस तरह रोते देख मोरोपन्तका हृदय पिघल गया। उन्हें अपनी गरीबीपर बड़ी तरस आयी और उन्होंने तिरस्कारयुक्त क्रोधके वशीभूत होकर मनूबाईको झिड़कते हुए कहा–"अभागिनी! यदि तुझे हाथीपरही बैठनेका शौक़ था तो क्यों नहीं किसी राजघरानेमें जन्म लिया ? तेरे भाग्य में विधाताने जो 'दुखोंका हाथी' बान्ध दी है, उसे छोड़कर "इस हाथी" के पीछे क्यों जान दे रही है ? चल, तेरे भाग्यमें हाथी बदा भी है !"

मनूबाई ने उसी क्षण चपलताके साथ बड़े तपाकसे तनकर कहा—'हाँ, मेरे भाग्यमें एक छोड़कर दस-दस हाथी बदे हैं। मैं हाथी पर अवश्य बैठूँगी।"

पाठकोंको आगे चलकर मालूम होगा कि, मनूबाईके उक्त उत्तरमें कितना 'कठोर-सत्य' भरा था। उस समय उसका बाल्यकाल था। उसके हृदयमें परमेश्वरका वास था। अतः उस समय उसके मुँहसे जो वाक्य निकले थे; वह अक्षरशः सत्य, बिल्कुल कठोर सत्य और उसके भविष्यत् जीवनकी भविष्यवाणी थी। अस्तु,

इस तरह बाजीराव पेशवाके दत्तकपुत्र नानासाहबके निरन्तर सहवासमें मनूबाईका शैशव जीवन और विद्याभ्यास समाप्त होकर उसने अपनी युवावस्थामें पदार्पण किया। अब वह 'कुमारी' कहलाने लगी। इस समय उसकी अवस्था ८ वर्षकी थी। शरीरकी सुदृढ़ और निरोग होनेके कारण वह १३-१४ वर्षीया कुमारिकाओं से भी अधिक 'ऊँची-पूरी' दिखलायी दे रही थी। कसरतिया शरीर और नियमित जीवनके कारण उसीसमय उसका शरीर बहुत कुछ विकास पा चुका था। उसे इस तरह वयस्कताको प्राप्त होते देख, तत्कालीन रूढ़ीके गुलाम महाराष्ट्रीय जाति-बान्धव उसके पिता मोरोपन्तको उसकी शादी न करनेके लिये कोसने लगे। मोरोपन्तको इस समस्याने बड़ी कठिनतामें डाल दिया। वह रातदिन मनूबाईके लिये वर-शोधने की चिन्तामें निमग्न रहने लगे। किन्तु दुःखकी बाततो यह थी कि, सारे ब्रह्मावर्तमें उन्हें एक भी ऐसा महाराष्ट्रीय न मिला जो मनूबाईके लिये उपयुक्त 'वर' सिद्ध हुआ हो। किसीके साथ तो मनूबाईकी 'कुण्डली' ही मेल न खाती थी, किसीका गोत्र नहीं मिलता था, कोई समगोत्री ठहरता था, किसीकी परिस्थिति अच्छी नहीं थीं, कोई रुग्न और दुर्बल साबित होता था, किसीकी उपजातिही दूसरी निकल आती थी, इस तरह एक

न एक अड़ङ्गा हरएकसे लगाही हुआ था। बेचारे मोरेश्वरपन्त महीनोंसे वर खोधनेके निमित्त अपनी एड़ी और सिरका पसीना एक कर रहे थे। किन्तु कहींभी दैवने उनका साथ न दिया।

इसीसमय अकस्मात् तात्या दिक्षित नामक झांसीके एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी बाजीरावके यहाँ ब्रह्मावर्त्त पधारे थे। मोरोपन्तने उन्हेंभी अपनी कन्याकी कुण्डली दिखलायी। उन्होंने उसे देखकर उसी मन्तव्यका समर्थन किया जो अन्यान्य ज्योतिषी कर चुके थे। अर्थात् उन्होंने भी यही कहा कि, 'यह लड़की अवश्यही किसी राजाको रानी होगी।'

उक्त ज्योतिषी कुछदिन ब्रह्मावर्त्तमेंही पेशवाके आश्रयमें रहे। थोड़े दिनके सहवासमें उनसे और मोरोपन्तसे गहरी मित्रता हो गयी। दोनोंमें फुर्सतके समय खूब गुल-गपाड़े छिड़ने लगे। एकदिन बात-बातमें झाँसीके महाराज गंगाधररावकीभी चर्चा चली। ज्योतिषीने उनके स्वभावकी समालोचना करते हुए उन्हें तामसी बतलाया और यहभी बतलाया कि, उनकी पहिली अर्द्धांङ्गिणी रमाबाई काल-कवलित हो चुकी हैं और वह दूसरा विवाह करनेके फ़िराक़में हैं।

इस समाचारको सुनकर मोरोपन्तकी आँखें मारे प्रसन्नताके चमक उठीं। बाजीराव पेशवा उस समय वहीं थे। मोरोपन्तने एक भेद-भरी दृष्टिसे उनकी ओर देखा। दोनोंके नेत्र एक दूसरे पर जम गये। बस, फिर क्या था? दोनोंके नेत्रोंकी नेत्र-पल्लवीने अन्य नेत्रवालोंको बुद्धू बनाकर अपना काम बना लिया।

पाठक! धैर्य्य रखें, समयपर आपकोभी उस भेदका ज्ञान हो जायगा!

* * * *

मध्यान्ह-भास्कर—ईस्वी सन् १८३८ में रघुनाथराव की मृत्यु के पश्चात् यद्यपि अंग्रेज़ी कमीशन ने शिवरावभाऊ के कनिष्ट पुत्र गङ्गाधर राव को झांसीकी गद्दीका अधिकारी घोषित किया था, तथापि सन् १८४२ तक उनका सारा राज्य-प्रबन्ध अंग्रेज़ सरकार ही कर रही थी। उस समय तक गङ्गाधर राव केवल नाम मात्र के ही राजा बने रहे। परलोकवासी रघुनाथ राव के शासनकाल में झाँसी प्रान्त पर भारी ऋण हो गया था। रघुनाथराव की अत्यधिक विलास प्रियताके कारण झाँसीकी आय १८ लाखसे ३ लाख हो गयी थी। अतः उस घाटे को पूरा करनेके बहाने अंग्रेजोंने गंगाधर रावको ४ वर्षके लिये सजीव मिट्टी का पुतला बनाकर झांसी की गद्दी पर बैठा दिया था और आप मनमाने रूपसे उनके प्रान्त का उपभोग कर रहे थे।

इसके अनन्तर न जाने क्या सोचकर बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल स्लीमन ने झांसी के ऋणमुक्त होने की सूचना ब्रिटिश सरकार को दे दी और झांसी का पूर्ण अधिकार गङ्गाधर राव को दे दिया गया।

इस अधिकारको देते समय भी अंग्रेज़ अपनी परम्परागत् चालबाज़ी चलने से बाज़ न आये और उन्होंने गङ्गाधर रावसे एक 'नया शर्तनामा' लिखवा ही लिया। इस नये शर्तनामे के अनुसार महाराज गङ्गाधर राव को अंग्रेज़ी सेनाके लिये झाँसी प्रान्तमें से २,२७, ४५८ रु० वार्षिक आय का मुल्क अंग्रेज़ी सरकार के सुपुर्द कर देना पड़ा। यदि न्याय की दृष्टिसे पूछा जाय तो उस समय इस नये शर्तनामेंका कोई प्रयोजन ही नहीं था। परन्तु स्पष्ट बात तो यह थी कि, उस समय की अंग्रेज़ सरकार भयंकर

रूप से आसुरी लालसा से प्रेरित हो रही थी और यही चाहती थी कि, चाहे जिस तरह हो, एक राजा के बदले दूसरे राजा के गद्दी नशीन होते ही कोई न कोई खुरापात निकाल कर, किसी न किसी बहाने से उस राजा का कुछ न कुछ मुल्क डकार जाय। ईस्वी सन् १८०४ और १८१७ में झाँसी राज्य से जो शर्तनामे हुए थे, उनमें यह 'तैनाती फ़ौज की झोली' झाँसी राज्य के गले इसलिये नहीं मढ़ी गयी थी कि, उस समय अंग्रेजों के पैर हिन्दुस्तान में उतनी मज़बूती से नहीं जमे थे, जितनी मज़बूती से ईस्वी सन् १८४८ में जमे थे। उस समय अंग्रेज़ सरकार को बुन्देल खण्ड में अपना शासन स्थापन करने के लिये झाँसी के शूरवीर और पराक्रमी सरदारों की मित्रता की विशेष अपेक्षा थी। बुन्देलखण्ड के से विशाल प्रदेश को डकारते समय अंग्रेज़ों ने इस मित्रता का कैसा अच्छा उपयोग कर लिया था, यह इतिहासज्ञों को भली भाँति विदित है ही। किन्तु ईस्वी सन् १८४२ में, जब कि सारा उत्तर हिन्दुस्तान ब्रिटिश शासन में चला गया था, अंग्रेज़ों को झाँसी जैसे छोटे से राज्यसे मित्रता का सम्बन्ध जारी रखना अपमानास्पद मालूम हुआ। उनकी मदान्ध दृष्टि में झाँसी की अब कोई गिनती ही न रही। यही कारण था कि, उन्होंने गङ्गाधर राव को झांसी के पूर्ण शासनाधिकार देते समय उनकी छोटी सी रियासतमें सेना के ख़र्च का बहाना कर सवा दो लाख रुपये से ऊपर की आय का ख़ास हिस्सा हड़प लिया। गंगाधर राव को बिना कुछ कहे सुने इस प्रकार की 'मुँह बन्धवाकर घूँसे की मार' सहनी पड़ी। उनको बिना कुछ अनाकानी के अंग्रेज़ों का शर्तनामा स्वीकार कर लेना पड़ा। बेचारे अस्वीकार कर करते ही क्या? भागते भूत की लंगोटी

भी हाथ से जाती रहती, इसी भयसे उन्होंने 'बाबा वाक्यम् प्रमाण' वाले सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए अंग्रेजों की बात मान ली और उनकी दो तैनाती पल्टनों तथा दो तोपखानोंके पोषणका भार अपनी इच्छा के विरुद्ध ही चुपचाप अपने सिर उठा लिया ।

उधर झांसी के पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त करने के ६-७ मास पूर्वही गंगाधर रावका द्वितोय विवाह हो चुका था। उनकी प्रथम भार्या रमाबाई उसी समय स्वर्गवासिनी हो चुकी थीं। उसे एक भी सन्तान न होने के कारण गंगाधर रावको दूसरा विवाह करना परमावश्यक हो गया था। किंतु गंगाधर राव कठोर-सत्यके विशेष भक्त थे। इसी कारण तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज उन्हें तामसी वृत्तिका पृष्ट-पोशक समझता और उन्हें अपनो कन्या देने का साहस नहीं करता था। ज्योतिषी तात्या दिक्षितने इसी जन निन्दा के अनुसार मोरोपन्त से यह बात कह दी थी। परन्तु कन्या के विवाह के लिये उतावले बने मोरोपन्त ने उस ओर कुछ भी ध्यान न दिया ! वह गंगाधर राव के विवाह करने की इच्छाका समाचार सुनते ही आनन्द से विह्वल हो गये। उनकी आंखें प्रसन्नता के मारे चमक उठीं। उनकी हृदयस्थली में एक प्रकारकी अद्भुत कल्पना क्रीड़ा करने लगी। उन्होंने पास ही बैठे हुए बाजीराव की ओर देखा। बाजीराव उनके भाव को ताड़ गये। उन्होंने समझ लिया कि, मोरोपन्त का हृदय गंगाधररावकी ओर अपनी पुत्री मनूबाई का पति बनाने के लिये आकृष्ट होगया है। वह विचार—निमग्न हो गये। अन्तमें उन्होंने मन ही मन प्रण कर लिया कि, वह मनूबाई और गङ्गाधर राव का गठ बन्धन अवश्य करा देंगे।

अपने इस प्रणको कार्य परिणत करनेके लिये उन्होंने महाराज गंगा धर राव के यहां,—अर्थात् झाँसीमें अपने यहां के कुछ कर्मचारी भेजे। उन्होंने वहाँ रह कर बड़े चातुर्य के साथ गङ्गाधर रावके गुणकर्म्म स्वभाव का निरीक्षण किया तथ बाजीरावके यहाँ आकर उनके अनुकूल ही सम्मति दी। बाजीराव ने उसी सम्मति के सहारे स्वतः मध्यस्थ बनकर गंगाधर रावको मोरोपन्तकी पुत्री मनूबाईका पाणिग्रहण करनेके लिये राजी किया।

यथा समय मनूबाई और गंगाधर राव का विवाह बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हो गया। इतिहासमें इस विवाह की तारीख़ और अंग्रेज़ी महीने का उल्लेख नहीं है। कुछ पुस्तकोंमें केवल इतना ही मिलता है कि, वह ईस्वी सन् १८४२ का वैशाख मास था। अस्तु,

विवाहके उपरान्त मनूबाई अपने ससुराल झांसी चली गयीं। वहाँ समाज रूढ़ीके अनुसार उनका नाम लक्ष्मीबाई रखा गया। झांसीकी महारानी होने पर उन्हें पुनः कभी ब्रह्मावर्त जाने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ। महाराज गंगाधर रावने उनके पिता मोरोपन्तको भी झाँसी में बुला लिया और उन्हें अपने दरबार में सरदारका पद देकर ३००० रु० मासिक वृत्ति देनी आरम्भ कर दी। इसके अनन्तर उन्होंने कुछ दिनों पश्चात् मोरोपन्त को हर तरहसे समझा बुझाकर दूसरा विवाह करनेको राजीकर लिया और गुलसराय रियासतके वासुदेव शिवराय खानवलकर नामक एक सद्भ्रान्त सज्जनकी कन्या चिमणाबाई के साथ उनकी शादी करा दी। पाठकोंको स्मरण ही होगा कि, मोरोपन्तकी प्रथम भार्या भागीरथबाईका देहान्त महारानी लक्ष्मीबाई के शैशव-जीवन में ही हो चुका था। अतः तबसे अब तक मोरोपन्त बिना अर्द्धाङ्गिनीके 'अर्धाङ्ग-

जीवन' ही व्यतीत कर रहे थे। महाराजा गङ्गाधर राव ने उनके इस नये विवाहके उपरान्त उन्हें रहनेके लिये झाँसी में एक नवीन महल बना दिया। जहां आकर मोरोपन्त अपने सुशील जामात के कृपाछत्र के नीचे अपना शेष जीवन सानन्द व्यतीत करने लगे।

इसके ६–७ मास पश्चात् ही, जैसा आरम्भ में लिखा जा चुका है, महाराज गंगाधर राव को झाँसी के सम्पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त हुए। उन्होंने उन अधिकारोंके सूत्र हाथमें लेते ही एक सुचतुर संचालककी तरह अपने राज्यसंकटको प्रजाके लिये सुखावह बनानेका यत्न किया। अपनी राज्यसम्पत्ति और निजीसम्पत्ति की यथोचित व्यवस्था की तथा उनकी देख भालके लिये प्रत्येक विभागपर सुदक्ष, कर्त्तव्यनिष्ठ, चतुर और विश्वसनीय सज्जनों की नियुक्ति कर दी। राजकीय मन्त्रणाके लिये राघो रामचन्द्र सन्त नामक एक बुद्धिमान पुरुष, मन्त्री पद पर नियुक्त किये गये! राज्य सचिवका कार्य नरसिंहराव को दिया गया। न्यायालय में न्यायाधीशके पदपर नाना भोपटकरकी नियुक्ति हुई। ठाकुर और बुन्देलों के आक्रमणों से देश को निर्भय रखने के लिये थोड़ीसी स्वतन्त्र किन्तु सुसज्जित सेना रख ली गयी।

उस समय महाराज गङ्गाधर रावके पास खास झांसी राज्यके क्षत्रिय तथा ठाकुर मिलकर ५०० सैनिक थे। इनके अतिरिक्त २००० गोल पुलिस, ५०० घोड़ोंका रिसाला अलग तथा व्यक्तिगत अङ्गरक्षक १०० और ४ तोपखाने थे। महाराज को हाथी से बड़ा प्रेम था। इसलिये उनके यहाँ २२ हाथी सदा झूमा करते थे। उनके शासन कालमें हाथियों का सारा साज समान, घोड़ोंके अलङ्कार, अम्बारियों, हौदे रथ इत्यादि

सोने और चान्दी के बनाये गये थे । महाराजका "सिद्ध-बक्श" नाम का एक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट-ज़बरदस्त, सुन्दर और ऊंचा हाथी था । जिसके सारे अलङ्कार विशुद्ध सुवर्ण के बने हुए और बहुमूल्य रत्नोंसे खचित थे इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि, महाराज गंगाधर रावने अपने शासन कालमें झाँसी राज्यको कितना वैभवशाली और धनी बनाया था ।

उनका स्वभाव अत्यन्त दयालु परन्तु बेहतर निस्पृह था । वह परले सिरेके 'समय-सेवक,' नियमके पक्के, सदाचार पसन्द पुरुष थे । समयके व्यर्थ विनियम और व्यवस्था की उन्हें हृदय से चिढ़ थी । स्पष्ट भाषण, कठोर सत्य व्यवहार और निस्पृहवृत्ति उन्हें विशेष रूपसे भाती थी । यह सब कुछ था किन्तु साथ ही साथ उनके स्वभाव में एक बड़ा वैचित्र्य था । वह कभी कभी यों ही विकारग्रस्त होकर अपने दोनों हाथों में * कङ्कण और चूड़ियां पहिन लिया करते और तिरस्कारपूर्ण शब्दों में कहा करते थे कि, "इस परदेशी विड़ालाक्ष जातिने हमारे अखिल भारतवर्षको इस तरह अपने दानवी पंजों में दबा रखा है कि, हम शर्त-बन्दी की कैंची में गला फंसाये हुए नामधारी नरेशों को अपना पराक्रम दिखलाने की गुञ्जाइश ही नहीं रह गयी है । अतः हम लोगों को जन सामान्य कुलवधुओं की तरह हाथ में चूड़ियाँ पहन कर बैठना ही उचित है । उनकी शरीर प्रकृति रोगी होने के कारण उनका स्वभाव "क्षणिक

---

* महाराजा गङ्गाधर राव के आश्रय में रहे हुए कुछ लोग अभीतक ग्वालियर रियासत में अपनी वृद्धावस्थाके दिन बिता रहे हैं । उनमें से 'रोडू मामा' (।मराठीमें 'रोडू' कहते हैं दुबले पतले मनुष्य को) का नाम विशेष उल्लेखनीय है । यह सज्जन महाराजा गङ्गाधररावके ख़ास

तुष्टम् क्षणिक रुष्टम्" रहता था। वह कभी आनन्द में तो कभी भयङ्कर रूप से उदास हो जाया करते थे। यही सब कारण थे जिनके कारण बाह्य समाज उन्हें 'लहरी-शीघ्रकोपी और तामसी' समझता था। उसने इस ज़रासी स्वभाव वैशिष्ट्य की बात लेकर उनके सम्बन्धमें 'क' का आशय 'कनखजूरा' लगाते हुए उनके स्वभावके सम्बन्धमें तरह-तरहकी अफ़वाहें उड़ा रखी थीं। वह अफवाहें दक्षिण हिदुस्तान के एक सरनाम रियासत नरश के,-(!) प्रवास वर्णन में प्रथित की गयी हैं। जिसके कारण आज उन अफवाहोंको इसप्रकारका अनर्गल और 'थोथा' महत्व प्राप्तहुआहै। लार्ड डलहौसीने अपने लेखमें महाराज गंगाधर रावका जो स्वभाव वर्णन

ख़िदमतगारों में थे। जिस समय महाराज के दूसर विवाह की बात हो रही थी, उसी समय उनके पास 'दो' लड़कियां आयी थीं। एक मनूबाई जिससे महाराजने अपना विवाह कर लिया और दूसरी 'जानकी'। उसका विवाह उन्होंने 'रोडू मामासे' करवा दिया। कालचक्र की गतिसे यही रोडूमामा आज दिन ग्वालियरमें 'मधुकरी' मांगकर अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। उनके मुहसे झांसीके महाराजके विषय में हमारे वयोवृद्ध कुटुम्बी जनोंने (हमारा घर द्वार सब ग्वालियरमें ही है) सुना है कि, महाराज अंग्रेजों की नीति से पूर्ण परिचित थे। उनके स्वाभिमानी हृदय में अंग्रेजोंकी नीतिके प्रति पूर्ण तिरस्कार था। किन्तु चूंकि वह परतन्त्र, शर्तनामेमें बन्धे हुए और शक्तिहीन थे, इसीकारण चुप रहे उनके हृदयमें इस दारुण भावना की आग जब विकराल रूपसे धधकी तब वह दुःखातिरेक के वशीभूत होकर औरतों की तरह साड़ी-चोली चूड़ियां तक पहिन लिया करते थे। —लेखक

किया है, वह बिल्कुल बेसिर-पैरका, मिथ्या-थोथा और उसके आत्म-समर्थनकारी तथा परनिन्दक स्वभवानुकूल, न्यायकी मर्यादा से परे है।

महाराज गंगाधरराव वस्तुत: अत्यन्त नम्रस्वभाव के थे। किन्तु व्यवस्था और शासनकार्य में उनके जैसा कठोर मनुष्य दूसरा न था। वह अपनी आज्ञाको विधाता की आज्ञा से भी अधिक महत्व देते थे। उनके मुँह से निकली हुई आज्ञा की अवलेहनाके लिये उनके पास क्षमा नहीं थी। उनका इस बात पर विशेष कटाक्ष रहता था कि, उन्होंने राज्य सम्बन्धी जो-जो कार्य जिसके-जिसके सुपुर्द कर दिये हों, उनकी यथोचित पूर्ति निश्चित समय पर होही जानी चाहिये। इसके अन्यथा होने से वह उसका स्वयम् विचार करते थे। अंग्रेजों के प्रति उनका आचरण सदा स्वाभिमानी और निर्द्वन्द वृत्तिका रहता था। बुन्देलखण्ड की समस्त रियासतें उन्हें बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखती और सारा बुन्देला समाज यहाँ तक कि, सारे के सारे बुन्देलानरेस तक उन्हें 'काका' का पद देकर पुकारते थे। ओरछा, दतिया, समथर, पन्ना, चरखारी, छत्रपुर इत्यादि रियासतों में तो वह विशेष रूपसे घर-घर के 'काका' बने हुए थे। अस्तु,

हाथमें आये हुए राज्यकी सम्पूर्ण सुव्यवस्था कर चुकने पर महाराज को एकबार तीर्थ यात्रा कर लेनेकी इच्छा हुई। उन्होंने उसी समय उस सम्बन्धका सम्पूर्ण प्रबन्ध करनेके लिये तत्कालीन गवर्नर जनरल को लिखा। गवर्नर जनरलकी आज्ञासे अँग्रेज सरकारने यात्राका पूरा प्रबन्ध कर दिया। महाराज गंगाधरराव महारानी लक्ष्मीबाईको लेकर माघ सुदी ७ संवत् १९०७ अर्थात् ईस्वी सन् १८५० में यात्राके निमित्त

काशी की ओर रवाना हुए। अंग्रेजोंकी ओरसे महाराजके सम्मानार्थ स्थान-स्थान पर अच्छा प्रबन्ध किया गया था। तत्कालीन गवर्नर जनरलने अपने अधीनस्थ अधिकारियोंको इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे सूचना दे रखी थी और साथही साथ यह भी लिख दिया था कि, यदि महाराज के आगत-स्वागतमें किसी तरहकी कमी होगी अथवा उनकी शानके विरुद्ध कोई भी कार्य हो जायगा तो उसका परिणाम् अंग्रेजोंको अत्यन्त बुरी तरह भोगना पड़ेगा।

अंग्रेजोंके इतना प्रबन्ध करने और सावधानी रखने परभी महाराजके काशी पहुँचनेपर एक गुल खिलही गया। जिस समय वह काशी पहुँचे उस समय वहाँके एक अधिकारी ने उन्हें न पहिचानकर उनका यथोचित मान नहीं किया। किन्तु जैसेही उसे मालूम हुआ कि यही महाराज गंगाधरराव हैं वैसेही उसका चेहरा मारे भयके सुफेद पड़ गया और उसने तत्काल महाराजके चरणोंपर गिरकर माफी माँगी।

इसी प्रकार एकवार और हुआ। महाराज गंगाधरराव जिससमय काशीके दशाश्वमेध घाटपर नहाने गये थे उस समय 'राजेन्द्र बाबू' नामक किसी एक बंगाली सज्जनने उन्हें खड़ी ताज़ीम नहीं दी। यह बंगाली बाबू तत्कालीनसम्पन्न मनुष्योंमेंसे थे और उनका अंग्रेजोंके यहाँ काफी वज़न था। महाराज गंगाधररावने उनकी उक्त उद्दण्डता देखकर उन्हें दण्डित किया। परिणाम यह हुआ कि, अंग्रेजोंके जूतेमार गुलाम बंगाली महाशयने अंग्रेज सरकारके पास शिकायत की। किन्तु वहाँसेभी उन्हें वह उल्टी चपत बैठी कि, बच्चूका 'चिगड़ी माछेर झोल' ही भूल गया अंग्रेजसरकारकारने साफ लिख दिया कि, यदि आपको महाराजको

ताज़ीम नहीं देनी थी तो किसलिये 'घास छीलने घरसे बाहर निकले थे, महाराज गंगाधरराव कोई मामूली राजा नहीं है। उनको खड़ी ताजीम देनेके बजाय आपको उनके सामने नंगे पैर हाथ-बान्धे खड़ा रहना चाहिये था।

इसी तरह एकबार अंग्रेज़ोंकी तैनाती सेनाकोभी महाराजके सन्मुख नतमस्तक होना पड़ा था। महाराज गंगाधररावने अंग्रेज़ोंसे जो शर्त्त-नामा किया था, उसमें यहभी एक शर्त थी कि, उस तैनाती सेनाको प्रतिवर्ष विजया-दशमीके दिन अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर महाराजको सलामी देने आना होगा। एक बरस विजया दशमी रविवारको पड़ी थी। अतः उस सेनाके कप्तानने महाराजको कहला भेजा कि, रविवार की छुट्टी होने कारण उसकी अधीनस्थ सेना महाराजको सलामी देने न पहुँच सकेगी। महाराज इस उद्दण्डतापूर्ण सम्वादको पाकर क्रोधके मारे तमतमा उठे और तत्क्षण अपनी अन्य सेनाको तैय्यारकर अपने हाथीपर बैठते हुए कप्तानके पास कहला भेजा कि, "हमारेही दिये टुकड़े खाकर नहीं कैसे आओगे? तुम्हें आना पड़ेगा और पैरोंके बदले सिरसे आना पड़ेगा! हमाराही निमक खाकर हमींसे तुर्रेबाजी चल नहीं सकती। याद रखो, इस दूतके साथ यदि तुम मय अपनी सेनाके सलामी बजाने न आये तो तुम लोगोंको दिया हुआ मुल्क अभी ज़ब्त करता हूँ।" कप्तान बिचारा इस सम्वादको पाकर अत्यन्त घबड़ा गया उसने तत्क्षण मय अपनी सेनाके आकर महाराजको सलामी दी और माँफ़ी माँगी। अस्तु,

काशी–प्रयाग–गया इत्यादि स्थानोंमें जाकर महाराजने शास्त्रानुसार

अपनी यात्रा संपूर्ण की और राजोचित ढंगसे दान-धर्म्म भी किये। पश्चात् आप अपनी जन्मभूमिके दर्शनार्थ झाँसी लौट गये।

झाँसी पहुँचने पर आपकी प्रजाने पूर्ण समारोहसे आपका आगत-स्वागत किया। आपकी प्रजा आपको बहुत चाहती थी और आपकी सुव्यवस्था पर जी-जानसे मुग्ध थी। आपने अपने राजत्वमें अपनी प्रजाके कल्याणार्थ कोई बात उठा नहीं रखी थी। आपको शासन व्यवस्था पूर्णरूपसे सुनियन्त्रित और शान्तिमय थी। विधाताकी कृपासे आपको जो गृहलक्ष्मी प्राप्त हुई थीं, वह भी साक्षात् लक्ष्मीही थीं।

झाँसीकी सारी प्रजा महारानी लक्ष्मीबाईको साक्षात् 'लक्ष्मी' का ही अवतार मानती और बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखती थी। झाँसीके सारे समाजकी यह दृढ़ धारणा थी, वह महारानी लक्ष्मीबाईकेही पुनीत पादपद्म थे, जिनके झाँसीमें प्रादुर्भूत होतेही झाँसीका अस्त हुआ भाग्य सूर्य पुनः एक बार चमका। महाराज गङ्गाधररावके पूर्व, महाराज रघुनाथरावके शासनकालमें तथा उनके झाँसीकी रानी होनेके पूर्वभी महाराज गङ्गाधररावके ज़मानेमेंही, जब कि झाँसी राज्यके सारे शासन सूत्र गोरोंके शुभ्र करकमलोंमें थे, झाँसीकी जो दारुण दशा थी, वह उनके आगमन मात्रसेही सुधर गयी। उन्हीं लोकप्रिय महारानीको तीर्थ यात्रा समाप्तकर पुन, झाँसीमें वापिस लौटते देख झांसीकी प्रजाने हृदय खोलकर आनन्द मनाया इसमें आश्चर्य माननेकी बातही क्या है ! वह तो उसका सर्व्वप्रधान कर्त्तव्यही था। अस्तु,

महाराज गंगाधररावके सहकुटुम्ब तीर्थयात्रासे वापिस होनेपर ईस्वीसन् १८५१ में, अगहन सुदी ११ संवत् १९०८ के दिन महाराज

को महारानी लक्ष्मीबाईकी कोखसे पुत्र उत्पन्न हुआ। उस दिन सारे राज्यमें अपूर्व आनन्द छा रहा था। सारा झांसी नगर चित्र-विचित्र प्रकारसे लता-गुल्म पुष्पादिसे सजाया गया था। घर-घर मिष्टान्नों और सहभोजोंकी धूम मची थी। नगरकी प्रत्येक कुटियासे लेकर गगन चुम्बी अट्टालिकाओं तकमें खूब साज-बाज और खेल तमाशे होरहे थे। स्थान-स्थानपर मंगल सूचक वाद्योंकी मधुर झनकार गूंज रही थी। महाराज गङ्गाधररावकी ओरसे अधिकारीवर्ग हाथियोंपर बैठकर सारे नगरमें घूमता हुआ मिठाइयां बांट रहा था। सब लोग दिल खोलकर महाराजको बधाई दे रहे थे। किन्तु हाय ! वह स्वर्गीय आनन्द-प्रजाका वह अनुपम उत्साह; महाराजका मुकुटमणि, महारानी लक्ष्मीबाईके कोमल कलेजेका टुकड़ा, उस अवसरसे तीनही महीने पश्चात् कठोर कालके क्रूर गालमें गिरकर विलीन हो गया। महारानी लक्ष्मीबाई पुत्र विहीना हो गयीं। महाराज गङ्गाधररावका प्राणाधार चला गया। झांसीकी सारी प्रजा आशाके उच्च शिखरपर पहुँचकर निराशाके अन्धकूपमें जा गिरी। उसे कोई उबारनेवाला न रहा।

महाराज गंगाधर राव पुत्रशोक के इस प्रबल धक्केको सह न सके। उनका प्राणाधार, उनका जीवन सर्व्वस्व, उनका मुक्तिदाता, उनका प्राणप्यारा पुत्र, उन्हें वृद्धावस्थाकी जीर्ण-शीर्ण और निःसहाय अवस्थामें इस पाप-ताप पूर्ण पृथ्वीपर पटक कर, अकेला,-बिल्कुल अकेला, उस परमपिता परमात्मा के पास चला गया था। यह चोट,-पत्थर को भी चुटीला करने वाली चोट,-महाराज के महाराष्ट्र हृदय को असहनीय हो गयी। वह उसे सम्हाल न सके। उनकी देह पर मुर्दनी छा गयी।

चेहरा सफेद हो गया। धमनियों का रक्त संचार-कार्य बन्द हो गया। आँखे गढ़े में जा पड़ीं। दाढ़ी और सिरके सारे बाल शुभ्र,–बिलकुल शुभ्र, रूई की तरह सफेद होने लगे। चमड़ी पर सिकुड़न आने लगी। ललाट-गाल और छाती की हड्डियाँ तक निकल आयीं। शरीर की समस्त तन्त्रियां अपने कामों से इस्तीफे देने लगी। वह बीमार हो गये। उन्हें संग्रहणी रोगने धर दबाया।

ईस्वी सन् १८५३ का शारदीय नवरात्र उनके जीवनका अन्तिम नवरात्र था। उस अवसर पर उन्होंने कुल स्वामिनी महालक्ष्मी की बड़े भक्ति भाव से पूजा की और उत्सव मनाया। उसके तैयारी में उन्हें बड़े परिश्रम करने पड़े। उनकी क्षीण प्रकृति उन प्रयत्नों को सम्हाल न सकी। वह और बीमार हो गये।

इसके कुछ ही दिनोंके अन्तर विजयादशमीका त्यौहार पड़ा। उस दिन सदाकी भाँति खूब ठाट-बाट से दरबार-सभारोह और सीमोल्लंघन मनाया गया। अब तो महाराजकी दशा और भी शोचनीय हो गयी। देश के अच्छे से अच्छे वैद्य-हकीमों के उपचार आरम्भ हुए। महाराज का शासन झांसीकी प्रजाको राम राज्यकी तरह शान्तिमय सिद्ध होनेके कारण प्रजाकी ओर से भी महाराजा के स्वास्थ्यलाभार्थ तरह-तरह के अनुष्ठान,-जप-तप होम इत्यादि आरम्भ हुए। किन्तु 'मेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और" इसी प्रकार प्रकट होने लगा। महाराज की दशा दिन प्रति-दिन-बदलती गयी। उनका भविष्य निकटस्थ राज कर्म्मचारियों को स्पष्ट रूपसे मालूम हो गया। उनलोगों ने विशेषतया राजमन्त्री नरसिंह राव और महराजाके श्वसुर मोरोपन्त ने बड़े कष्ट से

महाराजा के पास जाकर भविष्यत् राजव्यवस्था के सम्बन्ध में बात छेड़ी। जिसे सुनकर महाराजने गम्भीरता पूर्वक कहा कि, "मैं अभी अपने जीवन से हताश नहीं हुआ हूँ तथापि 'हरी की' इच्छाको कौन समझ सकता है ? इस न्याय से मेरी इच्छा है कि, मैं दत्तक-पुत्र लूँ। यदि आप लोग आज्ञा दें तो हमारे घराने के वासुदेव राव नेवालकरका पुत्र 'आनन्दराव' इस कार्य के योग्य बालक है !"

पाठकोंको ज्ञान होना चाहिये कि, आनन्दरावकी वयस उस समय ५ वर्षकी थी। आनन्दराव देखने में अत्यन्त सुन्दर और बुद्धिमान् था। महाराजा गङ्गाधररावकी तरह महारानी लक्ष्मीबाई भी उस लड़केको बहुत पसन्द करती थीं। अतः सर्व्वसम्मति से उसी बालक को गोद लेना निश्चित हुआ। दूसरेही दिन झांसीके सुप्रसिद्ध विद्वान पुरोहित राव के आधिपत्यमें शास्त्रोक्त विधिसे दत्तक विधान करवाया गया। उस समय वहां पर झांसीके बड़े-बड़े धनी-मानी सज्जन, राजमन्त्री नरसिंहराव महाराजाके श्वसुर मोरोपन्त ताम्बे, लाहोरीमल, बुन्देलखण्ड के असिस्टेण्ट पोलिटिकल एजेण्ट मेजर एलिस तथा तत्स्थानीय सेनानायक कप्तान मार्टिन प्रभृति लोग दरबार में उपस्थित थे। उन सब लोगोंके सामने महाराजा गंगाधररावने आनन्दराव को शास्त्रोक्त पद्धति से गोद लेकर उसका नाम दामोदर राव गंगाधर राव रखा। इस अवसरपर दरबार में एक बार क्षणिक आनन्द का समुद्र हिलोर मारने लगा। महाराज गङ्गाधररावने दत्त कविजानके समय उपस्थित हुए सज्जनोंको यथायोग्य उपाधि देकर सन्तुष्ट किया और सारे नगरमें मिठाई बंटवा दी।

इसके पश्चात् दरबार में राज्यकर्म्मचारियोंकी एक गुप्त मन्त्रणा

हुई। जिसमें राजमन्त्री वरसिंह राव, महाराजा के श्वसुर मोरोपन्त तथा झाँसीके असिस्टेण्ट पोलिटिकल एजेण्ट प्रमुखरूप से गिने जाते थे। महाराज गङ्गाधर रावने मन्त्रीको बुलाकर अंग्रेज सरकार के नाम निम्न-लिखित आशय का पत्र लिखवाया और उसपर अपने हस्ताक्षर कर उसे अपने हाथों एलिस साहबको सौंप दिया। उसमें जो लिखा था, वह यह है:—

"श्रीमान् !

आपको ही क्या, आपके सारे यूरोपखण्डको यह बात भली भांति विदित हो चुकी है कि जब बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का कोई साथी न था, उनके शासनकी गन्ध तक इस प्रदेशमें नहीं फैली थी, उस समय बुन्देलखण्डमें अंग्रेजोंका शासनारम्भ होनेके पूर्व-मेरे पूर्वजोंने-अंग्रेजों की कितनी और कैसी कड़ी सहायता की थी। उस समय अंग्रेज लोग बुन्देलखण्ड में हाथ डालना होमकुण्डमें हाथ डालनेसे भी अधिक समझते थे। किन्तु उनको वैसी दशा में उन्हें निर्भय बनाकर आश्चर्य देने वाले यदि कोई थे, तो-वह मेरे ही पूर्व्वज। उन लोगोंने अंग्रेजोंके प्रति जिस सद्भाव से काम लिया है, वह यूरोपके इतिहास में प्रलयकाल पर्य्यन्त अमर होकर टिका रहेगा।

श्रीमान्! उन्हीं उदार पूर्व्वजोंकी नीतिका अनुसरणकर मैंने भी अपने जीवन भर अंग्रेजों की यथेष्ठ सहायता और सेवा की है। यह मैं ही क्या?-मेरे जीवन कालमें यहाँ आये हुए अनेक पोलिटिकल एजेण्ट स्वीकार करेंगे। अतः ऐसी परिस्थिति में मेरी और मेरे उन पूर्वजों की कृत सेवाके पुरस्कार स्वरूप, (यद्यपि मैं किसी पुरस्कारकी अभिलाषा

नहीं रखता था, किन्तु दैव दुर्विपाकके कारण बाध्य होना पड़ा है) मैं श्रीमान् से एक अभिलाषा रखने के लिये बाध्य हुआ हूँ।

श्रीमान् को मालूम ही है कि, इस समय मैं अपने जीवन-मरणकी अन्तिम घड़ियां गिनता हुआ रुग्ण-शैय्यापर पड़ा हूँ। शीघ्र ही मेरी जीवन-ज्योयि लुप्त होने वाली है। नहीं मालूम वह कब नामशेष होगी। किन्तु इतना निश्चित है कि, वह शीघ्र होगी और मुझे इस रुग्ण-शैय्यासे अब उठने न देगी। मेरे स्वर्गीय पुत्र की मृत्यु के साथ-साथ मेरी जीवन-ज्योतिने भी उसी समय मुझे जवाब दे दिया। आज मेरी ऐसी दशा है कि; मैं थोड़े दिन का और मेहमान हूँ। ऐसी परिस्थितिमें जब मैंने देखा कि, मेरा कोई निजी पुत्र नहीं है, मेरे वंशको प्रकाशित करने वाला कोई कुल-दीपक नहीं है तब मैंने कल आनन्दराव नामक एक पाँच वर्षके बालकको दत्तक ले लिया है और उसका नाम दामोदर गङ्गाधर राव रखा है।

श्रीमान्! यह मैंने इसी अभिप्रायसे किया जिसमें मेरे वंशका अन्त न हो। यह बालक मेरे ही वंशका-मेरा नाती लगता है। अतः यदि दुर्भाग्यवश मेरा इस बीमारी में अन्त हो जाय तो मेरा श्रीमान् से करबद्ध होकर प्रार्थना है कि, मेरी कृत सेवाओंकी ओर ध्यान देते हुए, अंग्रेजोंके मेरे साथ किये हुए शर्तनामे की * दूसरी धारा के अनुसार

---

* शर्त्तनामेकी दूसरी धारामें झाँसी राज्यका अधिकार महाराज गङ्गाधररावके वंशजोंको वंशपरम्पराके लिये लिख दिया गया है। यह वंशज चाहे उसी वंशमें उत्पन्न हुए हों, सगोत्री हों या दत्तक लिये गये हों।

मेरे पश्चात् मेरे दत्तक पुत्र दामोदर गङ्गाधर पर सरकारी कृपादृष्टि बनी रहे और जब तक मेरी अर्द्धाङ्गिनी महारानी लक्ष्मीबाई जीवित हैं तबतक वह मेरे राज्यकी अधिकारिणी तथा इस दत्तक पुत्रकी मातेश्वरी समझी जायँ और उन्हें राज्यकी सम्पूर्ण व्यवस्थाका अधिकार देदिया जाय। उसे किसी प्रकारका कष्ट न हो,—यही मेरी अन्तिम अभिलाषा, विनम्र प्रार्थना और कृतसेवाओंके पुरस्कार की याचना है।"

मेजर एलिससाहबने इस पत्रको लेते हुए महाराजको विश्वास दिलाया कि 'वह उसे यथाशीघ्र ब्रिटिश सरकारके पास भेजेंगे और उनसे जहाँतक हो सकेगा महाराजकी इच्छापूर्तिकी चेष्टा करेंगे।'

उनसे बात करते-करते महाराजको अकस्मात् बेहोशी आगयी। मेजर एलिस साहब और कप्तान मार्टिन घबड़ा उठे। उन्होंने चट उठकर महाराजकी दवा-दारूका बन्दोबस्त किया और बँगलेपर चले गये। मेजर एलिसने बँगलेपर पहुँचकर बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मालकम हेलीको महाराजके यहाँका समग्र वृत्तान्त लिखा तथा साथही साथ महाराजका लिखा हुआ पत्र भी उसीके साथ भेज दिया।

एलिस साहबके बँगलेपर सिधारनेपर महाराजको कुछ आराम मालूम हुआ। वह निद्राके वशीभूत हो गये। पतिप्राणा महारानी लक्ष्मीबाई अपने पतिकी दारुण दशा देख फूट-फूट कर रोने लगीं। महाराजकी बीमारीके कारण उनका खाना-पीना और सोना तक हराम हो गया था। वह आठों पहर महाराजकी सेवा-सुश्रूषामें डटी हुई थीं। उनका सौन्दर्य-विकसित मुखकमल म्लान होकर अधोवदन हो गया था। नेत्रोंके मुक्ताश्रु गङ्गा-यमुनाके प्रवाहसे होड़ बाँध रहे थे। पलकें

रोते-रोते सूजकर लाल होगयी थीं। गला रुद्ध होगया था। वक्षःस्थल-पर गाज गिरा मालूम होता था। वह चिहुँक-चिहुँककर महाराजकी ओर भयभीत दृष्टिसे देखती थीं। उनका शोक, उनका दुःख, उनका वह मानसिक सन्ताप—वह सन्ताप था, जिसका चित्रण करने के लिये लेखनीमें न तो वह शक्ति ही है न हृदयमें वह भाव। भाषा में वह शब्द नहीं है, जो उस शोकका जीता-जागता चित्र खींच सके। पतिप्राणा आर्यमहिलाओंका "पतिविरह"—वह विरह है, जिसका प्रति-स्पर्धी विधाताकी सृष्टिमें है ही नहीं। अतः हमारा उसका चित्र-चित्रण करनेकी चेष्टा करना ही बेकार है। अस्तु,

तारीख २० नवम्बरको चार बजे महाराजकी नींद खुली। उस समय महाराजके महलके बाहर ड्योढ़ीपर महाराजका समाचार जाननेके लिये नगरवासियोंके झुण्डके-झुण्ड पहुँचे हुए थे। किन्तु हाय! उन्हें सुसमाचारके बदले कुसमाचार सुनना ही नसीब हुआ। महाराजकी अवस्था अब पहिलेसे भी अधिक शोचनीय हो गयी थी। उनकी वाक्शक्ति बन्द हो गयी थी। वह कुछ ही क्षणों के साथी थे। महारानी लक्ष्मीबाई उनके चरणोंकेपास बैठी छाती पीट-पीट कर रो रही थीं।

उनको इस तरह रोते देख सारे दरबारियोंमें भारी सनसनी मच गयी। उन लोगोंका एक दल महारानीको सान्त्वना देने लगा। शेष लोग महाराजको बहुमूल्य औषधियाँ खिलाने लगे। अवकाश पाकर महाराजने फिर एक बार आँखें खोलीं और चारों ओर शोधक दृष्टिसे देखते हुए क्षीण स्वरमें एजेण्टकी पृच्छा की।

तुरन्त मन्त्रीने मेजर एलिसके लिये सवार दौड़ा दिये। मेजर एलिस एक निपुण डाक्टर लेकर आ धमका। महाराजने प्रसन्न होकर उनसे बोलनेकी चेष्टाकी। किन्तु मेजर साहबने बेहोशी के भयसे उनको वैसा करनेसे रोक दिया। डाक्टर एलेनने महाराजके रोगका सम्पूर्णरूपसे निदानकर उनके लिये एक बहुमूल्य औषधि चुनी। किन्तु महाराजने उस अंग्रेज़ी औषधिको धर्म्मबाधक समझकर खानेसे इन्कार कर दिया। लोगोंने उन्हें बहुत समझाया। किन्तु प्राणोंके मोहसे धर्म त्याग करना उस धर्म्मवीर नरपुङ्गवको स्वीकार न था। उसकी इस धर्म्म-भीरुताके सम्बन्धमें पाश्चात्य लेखक "सर एडविन अर्नोल्ड" नामक एक औंधी खोपड़ी के ग्रन्थकारने एक जगह लिखा है—"यदि महाराज गंगाधरराव अंग्रेज़ी दवा खाते तो अवश्य आरोग्य-लाभ करते। उन्हें पुत्र-लाभ होता और झाँसीका हिन्दूराज्य बना रहता। किन्तु वह राजकीय विषयोंमें जैसे सुशील थे, वैसेही धर्म्मके प्रति बुरी तरह कट्टर थे।"

क्या खूब! मालूम होता है, उक्त लेखक महोदय अंग्रेज़ी दवा खाकर ही अमर हुए हैं। अन्यथा आपने यह कैसे निश्चय किया कि महाराज उस बीमारीसे, जिसके सामने भारतके धुरन्धर राजवैद्यों और हकीमोंने हाथ जोड़ दिये थे, अंग्रेजी दवा खाकर छूट जाते? आपकी स्वप्नसृष्टिमें शायद विधाताने अंग्रेज़ी दवाओंको जीवनशक्तिका ठेका लिख दिया हो! जिसे देखकर आपने अपना कुल्हाड़ा इस अनर्गल रूपसे कागज़ पर दे मारा! आपको शायद यह बात मालूम नहीं थी कि महाराजको जो पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह उनकी वृद्धावस्थामें, जब उनको कोई आशा नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में उन्हें

दुबारा पुत्र होने की कल्पना करना, नहीं नहीं, उसका होना निश्चयात्मकरूपसे कह देना त्रिकालज्ञों की सूझके भी आगे दौड़ जाना है। कमाल है, इस औंधी खोपड़ीवाले लेखककी निराली सूझ और भविष्य कथनकी। अस्तु,

मृत्युसे पूर्व महाराज गंगाधररावने एक और पत्र बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेण्ट मेज़र मालकमहेलीके पास भी भेजवा दिया था। उसमें भी उन्होंने वही सारी बातें लिखवादी थीं, जो मेज़र एलिसको दिये हुए पत्रमें लिखी थीं। उनके साथ इस नये पत्रमें जो विशेष बात लिखी गयी, वह यह थी कि, "ईस्वी सन् १८१७ में झाँसी राज्य के पूर्वाधिकारी रामचन्द्रराव और अंग्रेज़ोंसे जो शर्तनामा हुआ था, उसमें अंग्रेज़ोंने यह बात स्पष्टरूपसे स्वीकार की है कि झाँसी राज्य और ब्रिटिश सरकारकी मित्रता चिरस्थायी बनाये रखनेके उद्देश्यसे ब्रिटिश सरकार रामचन्द्ररावसे इस बातकी प्रतिज्ञा करती है कि वह उनके वारिसों तथा उनके वारिसों के उत्तराधिकारियोंको, बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश शासनके आरम्भमें जो प्रान्त शिवराव भाऊ के आधीन थे उसके एवं साम्प्रत झांसी राज्यके आधीन जो प्रान्त हैं, उनके वंशपरम्परागत अधिकारी निश्चित करती और स्वीकार करती है की वह उन प्रान्तोंके स्वतन्त्र राजा रहेंगे।"

इस प्रकार सारी व्यवस्था हो जानेपर महाराज गंगाधररावको इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सरकार झाँसी राज-घरानेकी परम्परागत सेवाओं और मित्रता पर ध्यान देते हुए अवश्य महाराजकी अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कर लेगी तथा झाँसीका राज्य चिरकाल तक

उनके घरानेमें पूर्ववत् बना रहेगा। किन्तु हाय! तत्कालीन गवर्नर जनरल महोदयके वज्र हृदयपर महाराजकी उक्त अन्तिम प्रार्थनाका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उनकी दानवी राज्यतृष्णाके सम्मुख रुग्ण शय्यापर पड़े हुए महाराज गंगाधररावकी अन्तिम प्रार्थना तथा उनकी प्राण-प्रिया महारानी लक्ष्मीबाई, कुलदीपक दामोदरराव, तथा जन्मभूमि झाँसीका बलिदान होगया। *

ईस्वी सन् १८५३ के नवम्बर मासकी २१ वीं तारीख महाराज गंगाधररावकी कालरात्रि थी। उस दिन महाराज चित्रगुप्तके दरबारके दूत उनकी मौतका परवाना लेकर उनके पास पहुँच चुके थे। उनकी नाड़ीका चलना बन्द होगया। श्वासप्रश्वास उस जर्जर देहसे भाग निकलने का उद्योग करने लगे। देह ठण्ढी पड़ गयी। आँखें पथरा गयीं।

---

* इस विषयमें डब्ल्यू० एम० टारेन्स ने इस प्रकार लिखा है:—

"The Raja wrote to the Governor General respectfully commending his youthful choice to his Consideration and care and asking for the recognition of his widow as regent during the minority. He appealed to the second article of the subsisting treaty, which guaranteed the territory to heirs of his family imperpetual succeession, whether heirs by decent, consan-

guinity or adoption and he trusted that "in con-

गात्र शिथिल हो गये। दाँत बैठ गये। पैर तन गये और दम टूट गया। झाँसीके मध्याह्न भास्कर झाँसीको घोर अन्धकारके सुपुर्दकर अस्ताचलकी ओर चल पड़े। महाराज गंगाधररावकी पवित्र आत्मा नश्वर देहको छोड़ ॐकारमें सम्मिलित होगयी।

* * * *

विषकुम्भ—महाराज गंगाधररावकी श्मशानयात्रामें झाँसी नगरको सारी प्रजाने सहयोग प्रदान किया था। उनकी मृत्युके कारण सारे शहरमें भीषण तहलका मच गया था। इस अवसर पर झाँसीके एजेण्ट मेजर एलिस, कप्तान मार्टिन तथा इर्रेगुलर कैवेलरीके सैनिक शोक-सूचक काली पोशाकें पहिने नङ्गे पैर शवके साथ गये थे। उन लोगोंने श्मशानसे लौटकर दुःख-सन्तप्त महारानी लक्ष्मीबाईको तरह-तरहसे धैर्य्य दिलाया और सान्त्वना दी। पश्चात सब एक-एक करके शान्तिपूर्वक बँगलोंकी ओर रवाना हुए।

महाराजके समय झाँसीका सारा राज्यकोष वहाँके किलेमें ही

---

sidreration of the fidelity he had always evinced towards Government favour might be shown to this child.' Hewas allowed to die in the delusion that native fidelity would be remembered. The Empire was grown so strong that the autocrat of Fort william thought it would afford to forget fidelity.

रहता था। अतः एलिस साहब बँगले न जाकर उसका प्रबन्ध करनेके हेतु सीधे किले की ओर रवाना हुए। वहाँ जाकर देखनेसे उन्हें कोषमें २, ४५, ७३८ रुपये जमा मिले। उसपर उन्होंने तत्कालीन कोषाध्यक्ष पण्डित ज्वालानाथके सामने मुहर लगाई और वहाँके सारे कमरोंमें ताले जड़ दिये। किलेके संरक्षणार्थ ग्वालियर नरेशकी 'कैण्टिनजण्ट' फ़ौजकी ६ वीं पल्टनके १००,–१५० सैनिक नियुक्त कर दिये गये। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय मेजर एलिसने झाँसीमें पूर्ण शान्ति बनाये रखनेके हेतु स्वर्गीय महाराजके कार्यकर्त्तागणोंसे मिलकर झाँसी का बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर लिया था। उन्होंने उस समय इस सुप्रबन्ध के चरितार्थ करनेमें अपूर्व्व उत्साह, आशातीत शीघ्रता और अथक परिश्रम किये थे। जिनके कारण झाँसीमें पूर्ण शान्ति बनी रही।

उन सब कामों से छुट्टी पाकर उन्होंने तारीख २१ नवम्बर सन् १८५२ को जिस दिन महाराजकी मृत्यु हुई थी, बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मालकमहेलीको महाराजकी मृत्युका समाचार लिख भेजा। जिसके पहुँचते ही उन्होंने तारीख २५ नवम्बरको एक दूसरा पत्र भारतसरकारके परराष्ट्र सचिवके पास लिख भेजा। जिसमें लिखा था:—

"श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब !

मुझे यह सूचित करते अत्यन्त दुःख होता है कि गत २१ नवम्बर के दिन झाँसी नरेश महाराज गङ्गाधररावका देहान्त हो गया। परमात्मा उनकी आत्माको सद्गति प्रदान करे।

श्रीमान्‌को मालूम हो कि स्वर्गीय महाराजने अपनी मृत्युके एक

दिन पूर्व अर्थात् तारीख २० नवम्बरके दिन, अपने वंशके एक पाँच वर्षीय बालकको अपना नाती बतलाकर दत्तक लिया है और उसका नाम दामोदर गंगाधर रखा गया है। किन्तु मेरी दृष्टि से मालूम होता है कि यह बालक स्वर्गीय महाराजके पूर्वज रघुनाथरावकी पाँचवीं पीढ़ीसे है। अतः अंग्रेजी रूढ़िके अनुसार यह महाराज का चचेरा भाई सिद्ध होता है।

इस पत्रके साथ मैं श्रीमान्‌के अवलोकनार्थ, मेरे असिस्टेण्ट मेजर एलिस द्वारा मेरे नाम प्रेषित किये हुए सारे पत्र भेज रहा हूँ। इन पत्रोंमें उसने महाराजकी भेंट और मृत्युके विषयमें सारी बातें खुलासेके साथ लिख दी हैं। साथही साथ स्वर्गीय महाराजने दत्तक पुत्र लेनेके विषयमें मुझे जो पत्र भेजा था, वह भी इसी पत्रके साथ नत्थी किया जा रहा है। श्रीमान् इन सब पत्रोंपर अवश्य विचार करेंगे।

झाँसी नरेशने बड़ी धूर्ततासे काम लिया है। जहाँतक मेरा विचार दौड़ता है, झाँसीकी सारी प्रजा महाराजसे यही आशा रखती थी कि वह ब्रिटिश सरकारसे यही प्रार्थना करेंगे कि उनकी मृत्युके पश्चात् उनकी सारी राज्य-सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी महारानी लक्ष्मीबाई ही बनायी जायँ और इससे सम्भव है कि उसे महाराजको अपनी मृत्युके एक दिन पूर्व दत्तकपुत्र लेते देख अत्यन्त आश्चर्य हुआ हो। यदि यह सत्य है तो मैं ज़ोर देकर कह सकता हूँ कि महाराजने इस बातको अच्छी तरह समझ लिया था कि झाँसीके पूर्व सूबेदार शिवराव भाऊके वंशमें, जिनके साथ अंग्रेज़ सरकारने सर्व प्रथम सन्धिकी थी, कोई वारिस नहीं है और न अपने वंशमें कोई कहलाने योग्य वारिस अथवा

निकटस्थ सम्बन्धी ही रह गया है। इसी आपत्तिका भय कर महाराजने इस आकस्मिक ढंगसे अपनी मृत्युके एक ही दिन पूर्व आनन्दराव नामके एक निर्बोध बालकको दत्तक ले लिया है।

श्रीमान्‌की सेवामें मार्म्मिक रीतिसे अवलोकन करने के हेतु मैं झाँसी के राज घरानेका एक वंश-वृक्ष भी इसी पत्रके साथ प्रेषित कर रहा हूँ। जिसको देखनेसे श्रीमान्‌को ज्ञात होगा कि यह दत्तक लिया हुआ बालक स्वर्गीय महाराजके पूर्वज प्रथम रघुनाथरावके वंशसे है।

गत २ तारीख को मैंने अपने सहायक मेजर एलिसके नाम झाँसी राज्यके प्रबन्धके सम्बन्धमें एक सूचना पत्र भेजा है। जिसकी एक प्रति गत ३ तारीख को भारतसरकारके भी अवलोकनार्थ प्रेषित कर दी गयी है। मैंने मेजर एलिसको उस पत्रमें स्पष्टरूपसे लिख दिया है कि जब तक झाँसीके राज्यप्रबन्धके सम्बन्धमें हमें भारत सरकारकी ओरसे कोई निश्चयात्मक आज्ञापत्र न प्राप्त होगा, तबतक स्वर्गीय महाराजके दत्तक-विधानकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जायगा। उस अवधि तक के लिये अंग्रेज़ सरकारकी ओरसे हमीं को प्रतिनिधि बनकर झाँसीकी व्यवस्था चलानी होगी। इस सूचनाके अनुसार एलिस साहब अपनी कार्रवाई कर रहे हैं।

श्रीमान्‌के अवलोकनार्थ मैं नीचे कुछ ऐसे प्रमाण दे रहा हूँ, जिससे श्रीमान्‌को अंग्रेज़ सरकार और झाँसी राज्यके पारस्परिक सम्बन्धोंका स्मरण हो जायगा और तब श्रीमान् उसे देखते हुए निश्चय कर सकेंगे कि स्वर्गीय झाँसीनरेशको अपने राज्यका, किसीको उत्तराधिकारी बनानेका अधिकार है या नहीं।

श्रीमान्! बुन्देलखण्डसे हम अंग्रेज़ोंका सम्बन्ध सर्वप्रथम ईस्वी सन् १८०४ में हुआ। उस समय झाँसीके सूबेदार शिवरावभाऊ पेशवा के नौकर और माण्डलिक थे। यही देखकर अंग्रेज़ोंने उनके साथ सन्धि की थी। इसके पश्चात् ईस्वी सन् १८१७ में पेशवा नरेशने झाँसीका सारा अधिकार अंग्रेज़ोंको लिख दिया। उस समय अंग्रेज़ोंकी यह मेहरबानी थी कि उन्होंने अपनी पुरानी सन्धिका ख्यालकर झाँसीराज्य का सारा अधिकार शिवरावभाऊके नाती रामचन्द्ररावको वंशपरम्पराके लिये लिख दिया तथा उन्हें ईस्वी सन् १८३२ में सूबेदारके बदले राजा का पद देकर गौरवान्वित किया।

यह रामचन्द्रराव ईस्वी सन् १८३५ में कालकवलित होगये। उनके कोई निजी सन्तति नहीं थी। इस हेतु जहाँतक मुझे स्मरण है, उस समय झाँसी राज्यको खालसा करनेका विचार अंग्रेज़ सरकार कर रही थी। किंतु फिर भी न्यायी अंग्रेज़ सरकारको शिवरावभाऊके दो पुत्र रघुनाथराव और गंगाधरराव जो तबतक जीवित थे, उस राज्यके अधिकारी दिखलायी दिये। दयालु अंग्रेज़ सरकारने उन्हें देखकर अपना विचार बदल दिया और क्रमशः उन दोनोंको झाँसीराज्यका अधिकारी नियुक्त किया। अब दुर्दैवसे रघुनाथरावके पश्चात् गंगाधरराव भी निर्वंश होकर परलोक सिधार चुके हैं। अतः न्यायकी दृष्टिसे इस वंशका सदाके लिये अस्त हो चुका है।

इसके अतिरिक्त और एक बातसे मैं श्रीमान्को सूचित कर देना चाहता हूँ कि ईस्वी सन् १८३५ में जिस समय रामचन्द्ररावका देहान्त हुआ था, उस समय झाँसी राज्यपर रामचन्द्ररावके दत्तक पुत्र तथा

उनकी स्त्री के दत्तक पुत्रने भी अपने-अपने अधिकार सिद्ध किये थे। किन्तु सरकारने उन दोनोंको अनधिकारी घोषित किया था, जो मेरी दृष्टि से बिल्कुल न्यायोचित और दुरुस्त था। उस अवसरपर सरकारसे और उनसे जो पत्रव्यवहार हुआ था, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि झाँसी का राज्य जिन शर्त्तोंपर अंग्रेज़ोंके आधीन हुआ है, उनमें यह बात स्पष्ट रूपसे लिखी गयी है कि झाँसीके किसी भी नरेश या महारानीको बिना ब्रिटिश सरकारकी आज्ञा लिये दत्तक पुत्र लेनेका अधिकार नहीं है।

मैं मानता हूँ कि महाराज गंगाधररावने अपने पश्चात् जिस स्त्री को राज्याधिकार देनेकी इच्छा प्रकटकी है, वह स्त्री सर्वथा उस भारको सहने योग्य और समर्थ रमणी है। किन्तु हमारे प्रधान उद्देश्य एवं वर्त्तमान कालीन परिस्थितिपर विचार करते हुए श्रीमान् की सेवामें मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि श्रीमान्‌को उचित तो यही है कि वह इस प्रदेशको अपने शासनमें मिला लेनेका यह सुवर्ण अवसर हाथसे न जाने दें। यदि श्रीमान् आज्ञा दें तो स्वर्गीय महाराजकी महारानीको प्रसन्न रखनेके हेतु महाराजकी निजी सम्पत्ति तथा झाँसीका राजमहल उन्हें दे दिया जाय। साथही साथ महारानीकी ओरसे भी मैं श्रीमान्‌के पास विनम्र होकर प्रार्थना करता हूँ कि उनके परिवारके उदर-भरण के निमित्त एक मासिक वेतन देनेका निश्चय किया जाय।

मैं नहीं बतला सकता कि यह मासिक वेतन कितना निश्चित किया जाय। किन्तु जहाँतक मैं महारानीकी परिस्थितिपर विचार कर सका हूँ, वहाँ तक मेरी समझमें तो यही आया है कि वह रकम ५००० मासिकसे कम न हो। श्रीमान्‌को मालूम ही है कि सारे बुन्देलखण्डमें

महाराष्ट्रियोंका यही एक अन्तिम घराना है तथा इस राज्यके जिन आश्रितजनोंको पेशवा और दामोदररावसे धर्मार्थ द्रव्य मिलनेकी आशा थी, वह जाती रही और इसी कारणवश यह अधिकांशरूपसे सम्भव है कि वह सारेके सारे राज्यके आश्रित पुरुष महारानीके पास ही आश्रय लेकर रहें। ऐसी परिस्थितिमें महारानीके खर्चके लिये मुझे उक्त रकम निर्धारित करना अनिवार्य सा मालूम होता है।

झाँसी राज्यपर बहुत दिनोंसे अंग्रेज़ोंका ही आधिपत्य है। अबतक उसकी व्यवस्था मेजर एलिसने बड़ी उत्तमतासे की है। ऐसी परिस्थितिमें यदि मेरी उक्त समालोचनाको मान देकर सरकार झाँसीके राज्यको खालसा करे तो उसकी व्यवस्था उसीके पड़ोसी सिन्धिया-सरकारके प्रान्त की तरह करनेमें हमें कोई भी कष्ट न उठाना पड़ेगा।

यदि श्रीमान्‌की यही इच्छा हो कि मैं ही इस राज्यका प्रबन्ध देखूँ तो उसमें भी मेरी 'ना' नहीं है। मैं उसे अपना परम सौभाग्य समझूँगा। किन्तु प्रश्न इतना ही रह जाता है कि मुझे तथा मेरे सहकारी मेजर एलिसको माल-महकमे का कुछ भी अनुभव नहीं है। दूसरे मुझे ग्वालियर तथा बुन्देलखण्डमें बारम्बार उठनेवाले राज्य सम्बन्धी टन्टों-बखेड़ोंको निपटानेके हेतु बार-बार दौरे करने पड़ते हैं। अतः मैं तो यही उत्तम समझता हूँ कि यदि यह प्रान्त, बुन्देलखण्डके जो जिले जबलपुरके कमिश्नर कप्तान अरस्किनके आधीन हैं, उन्हींमें सम्मिलित कर दिया जाय तो बहुत बेहतर हो।"

इस प्रकार कपटमुनि मेजर मालकमहेजीने अपनी रिपोर्ट गवर्नर जनरलके पास भेज दी तथा उसका उत्तर आनेके पूर्व ही उसने झाँसी

की राज्यव्यवस्थामें अपनी 'एँड़' अड़ा दी। उसने झाँसीमें ग्वालियर-नरेशकी कण्टिनजण्ट सेनामें से ६ वीं पल्टनका एक भाग तथा बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री की एक पल्टन झाँसीमें रखली। इसके अतिरिक्त झाँसी और करेरा नामक दो क़िलोंकी व्यवस्थाके निमित्त ब्रिगेडियर और पार्सन्स साहबसे भी चार पल्टनें मँगवालीं।

इधर यह धूर्त्तशिरोमणि मालकम इस तरह चुपके-चुपके अपने मालकी कमी दूर करनेकी चेष्टा कर रहा था। उधर बेचारी झाँसीकी प्रजा एवं पतिवियोगिनी महारानी लक्ष्मीबाई इसके कपटवेशको न पहिचान कर इसे साक्षात् न्याय-देवता समझे बैठी थीं। झाँसी राज्यके सभी दरबारियोंको दत्तक पुत्रके नाम राज्य चलानेका पूर्ण विश्वास हो चुका था। उन्हें स्वप्नमें भी यह विश्वास नहीं था कि जिन अंग्रेज़ों पर स्वर्गीय महाराज गङ्गाधरराव तथा उनके पूर्व्वजोंके सहस्र-सहस्र उपकारोंका भार लदा था, जिन अंग्रेज़ोंने शिवरावभाऊ तथा रामचन्द्र-रावके सम्मुख अपनी गर्दन झुकायी थी, जो अंग्रेज़ अब तक इस घराने की दयाके याचक थे, वही अंग्रेज़ महाराज गङ्गाधररावकी मृत्युके पश्चात् उनके कुटुम्बियोंका बालसे गला काटनेको तैयार होंगे। उनकी अंग्रेज़ोंको दयालुता पर पूर्ण निष्ठा थी और इसलिये वह शान्त थे। किन्तु—

*　　*　　*　　*

सूर्यास्त—संसार परिवर्त्तनशील है। वह कभी एकसा नहीं रहता। पृथ्वी जल-तेज-वायु और आकाश इन्हीं पञ्चतत्त्वोंसे संसारकी उत्पत्ति हुई है। इन पञ्चतत्त्वोंके सम्मिलित रूपको ही देशके बड़े-बड़े

दार्शनिक प्रकृतिके नामसे सम्बोधन करते हैं। यह प्रकृति, जिसमें उक्त पञ्चतत्त्वोंका सम्मिश्रण है, परिवर्तनशील है। इसमें सदा घट-बढ़ हुआ करती है। तथा उसी घट-बढ़के अनुसार संसारकी उत्पत्ति हुआ करती है। संसारके समस्त पदार्थ चाहे वह जड़ हों या चेतन, सभीकी उत्पत्ति इस प्रकृतिसे हुई है। प्रकृति ही सारे संसारकी जननी है।

मनुष्य, यह भी उक्त प्रकृतिकी एक रचना है। यह भी प्रकृतिमें स्थित पंचतत्त्वोंसे बना है। इसमें भी उन पञ्च-तत्त्वोंके सारे गुण कर्म स्वभाव पूर्ण रूपसे उतरते हैं। इसका सारा कार्य प्रकृति-नियमोंके अनु-सारही होता रहता है। मनुष्य देहमें ज्यों-ज्यों प्रकृत-तत्त्व न्यूनाधिक होते हैं त्यों-त्यों उसमें परिवर्तन होते जाते हैं। उन्हीं परिवर्तनों को हम सरसरी दृष्टिसे शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था इत्यादि नामोंसे सम्बोधन करते हैं। मनुष्यको जो बीमारियां हुआ करती हैं उनका वास्तविक कारण है, मनुष्यका प्रकृतनियमोंको छोड़कर परे चले जाना।

यही हाल समयका है। प्रकृतिमें क्षण-क्षण पर होनेवाले परिवर्तन के कारण प्रकृतनियमोंमें जो-जो परिवर्तन होते जाते हैं, उन्हीं परिवर्तनों को विद्वान् लोग कालचक्र अर्थात् समयका फेर कहते हैं। इसी समयके फेर के कारण भगवान् तिमिरारि प्रातःकाल उदय होते, मध्याह्न में कीर्ति फैलाते और सायङ्काल होते-होते अस्त हो जाते हैं। मनुष्यका भाग्य, उसकी अवस्था, उसकी स्थिति, उसका गुण कर्म्म-स्वभाव समयके प्रताप से, लट्टूकी तरह घूमा करता है। इसी कालचक्रके चक्करमें पड़कर जिसे हम आज सुखी देखते हैं वही कल दुखी हो जाता है। प्रकृतिकी कोई

भी सूचना ऐसी नहीं है जो काल-चक्र के चक्करमें नहीं आती। जिस प्रकार मनुष्य समाज उसके दानवी चक्करमें पड़कर कभी दुख और कभी सुखका अनुभव करता है उसी प्रकार प्रकृतिजाया संसारके विभिन्न राष्ट्र एवम् देश भी कभी उन्नति के शिखर पहुँच जाते तो कभी अवनति के अन्धकूपमें गिरकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। यह कालचक्रकी विचित्र लीला है। अस्तु,

उक्त बहुतेरी पंक्तियोंको लिखते समय हम अपने इष्ट विषयको छोड़कर एक निरालेही विषय की ओर बढ़ गये थे, सही। किन्तु हमारे इस परिच्छेदका धाराप्रवाहबन्धनके हेतु हमें उतना पथभ्रष्ट अवश्य होना पड़ा। जिसके लिये हम अपने सुज्ञ पाठकोंसे क्षमा मांगते हुए तत्कालीन अंग्रेजोंकी महत्वाकांक्षाका कुछ थोड़ासा परिचय देकर पुनः अपने मुख्य विषयकी ओर अग्रसर होते हैं।

हमारे इस समृद्ध भारतवर्षमें जिस समय इन गोरे बनियोंका पदार्पण हुआ था उस समय उनकी यह कभी इच्छा नहीं थी कि वह यहां आकर राज्य करें। उस समय यह धूर्त बनिये भारतवर्षसे केवल व्यापारी सम्बन्ध जोड़ना चाहते थे। इङ्गलैण्डकेसे पहाड़ी ऊसर और बर्फीले देशमें उन्हें खानेका ठिकाना नहीं था। अपने देशमें रहकर पेटकी आग बुझानेके लिये वह दाने-दानेके मुहताज थे। उनके देशकी जलवायु ठण्ढी होनेके कारण वहां कपास की पैदावार नहीं थी। जिसके कारण उन्हें उस कड़ी शीतमें ठिठुर-ठिठुरकर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। वह वहां 'अन्न-वस्त्र' के दुर्भिक्षके कारण कष्टमय और जङ्गली जीवन बिता रहे थे। इन सब आपत्तियोंसे बचनेके लिये उन्हें "गरम-देश" का

आविष्कार करने की आवश्यकता हुई और वह अपने देशसे चल पड़े।*
समुद्र-यात्रा करते-करते उनके गोरे पैर हिन्दुस्तानके किनारे लगे।

उस समय हमारा भारतवर्ष वैभव के उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था। यहां धन-धान्यकी किसी तरह कमी नहीं थी। रुपये का एक मन अच्छेसे अच्छा गल्ला मिलता था। आमकी गुठली में मलमल के थान रखे जाते थे। सुवर्ण के सिक्के चलते थे। शिल्प और कला उन्नतिके शिखर पर पहुँच चुकी थी। विद्याका प्राबल्य था और देशमें पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

यद्यपि उस समय भी देशमें कई राजा राज्य कर रहे थे तथापि समाज उस समय उतना दुखी एवम् दरिद्र नहीं था, जितना आजकल हम देखते हैं। हमारे देशमें सभी प्रकारके धान्य, कपास फल-मूल, औषधियां और मसाले होते थे। घी-दूधको नदियां बहती थीं। लोहे आदि धातुओंके कल-कारखाने चलते थे। लड़ाईका सब सामान गोला बारूद इत्यादि तैयार होता था। देशभरमें बेकारी नहीं थी। सारा समाज उद्योगी-जीवन व्यतीत कर रहा था।

इसी समय आजसे लगभग २०० वर्ष पूर्व, सन् १७५२ ईस्वीमें पाश्चात्य देशके गोरे बनिये अपने देशमें यहां की खाद्य सामग्री खरीद कर बेचनेके इरादेसे यहां व्यापार सम्बन्ध स्थापन करने आये। उस समय उन्हें भारतवर्षमें अपना माल-गुदाम खोलनेके निमित्त दिल्ली सम्राट्के पास बड़ी नम्रतासे प्रार्थना करनी पड़ी थी। पहिले पहल

---

* इसका विस्तृत हाल जाननेके लिये इंग्लैण्डका इतिहास नामक पुस्तक पढ़िये।

दिल्ली सम्राट्‌की अनुपम उदारताके कारण इन्हें केवल ३ कोठियाँ और ८० वर्ग मील तककी भूमि नसीब हुई थी। वही फिर बढ़ते-बढ़ते ईस्वी सन् १७५२ से १८५७ तककी १०५ वर्षोंकी अवधिमें ६, ५०, १००० वर्ग मील हो गयी तथा इस समय उनके मकड़जालमें सारा भारत वर्ष ही फंस गया है।

प्यारे पाठकगण ! इसमें सन्देह नहीं कि यह पाश्चात्य देशके गोरे बनिये हमारे उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्तके यवनों से कहीं अधिक कुटिल और काँइये सिद्ध हुये। तभी तो जो कार्य यवन सम्राटोंने ८०० वर्षोंमें भी नहीं कर दिखलाया था, उसे इन्होंने केवल पौने दो सौ वर्षकी अवधिमें ही पूरा कर लिया। यह पाश्चात्य देशकी निःसत्व झाड़ियोंमें रहकर कन्द-मूल और मांस खाकर जीविका निर्वाह करनेवाले शृगाल उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्तके पहाड़ी भालुओंसे कहीं अधिक भयङ्कर सिद्ध हुए। जङ्गलोंमें प्रायः यह बात देखी जाती है कि, जिन मनुष्यों को भालू मरा समझता है उन्हें नहीं छूता। किन्तु शृगाल मरे मुर्दैकी हड्डियां चिचोरनेसे भी बाज नहीं आता। यही दशा आज इन गोरे शृगालोंकी हैं। भालू शिकारको सामनेसे और हंसा-हंसाकर मारता है किन्तु शृगाल लुक-छिपकर तथा दम्भका आश्रय लेकर ही अपने शिकारका गला घोटता है। ठीक यही नीति हमारे भारतवर्षका अपहरण करते समय चरितार्थ हुई है। * अस्तु,

---

* इस नीतिके चरितार्थ होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें उस पत्रको पढ़नेसे मिलता है, जो तत्कालीन बङ्गालके गवर्नरने दिल्ली सम्राट्‌को लिखा था। अंग्रेज जाति मोठी छुरी चलाकर अपना मतलब निकालनेमें

ईस्वी सन् १७५२ में वारेनहेस्टिङ्सने यहांके राजाओं तथा प्रजापर अमानुषिक अत्याचार किये थे। जिनसे घबड़ाकर इंग्लैण्ड की पार्लिया-

---

कितनी होशियार है इसका ज्वलन्त उदाहरण इससे अधिक अच्छा मिल ही नहीं सकता। उक्त गवर्नर महोदयने उस पत्रमें लिखा है:—

* "The supplication of Jhon Russel, who is as the minuest grain of sand, and whose forehead is the tip of his foot-stool, who is the adsolute monarch and prop of the universe, whose throne may be compared to that of the Soloman's, and whose renown is equal to that of Cyrus......The Englishmen, having traded hitherto in Bengal Orissa and Behar Customfree (Fxcept in Surat) are your Mejesty,s most obidient slaves, always intent uyon pour Commonds.

we have redily observed your most sacret orders and have found favour, we have as become servants, a deligent regard to your part of the sea......We crave to have your Majesty,s permmission in the above mentioned place, as before and to follow our bussiness without molestation."

मेंटने स्पष्ट शब्दमें यह घोषित कर दिया था कि, ब्रिटिश सरकार भारत वर्षमें अपना राज्य विस्तार करना अथवा किसी के देशपर अधिकार प्राप्त करना नहीं चाहती। इसप्रकार के आसुरी कार्य ब्रिटिशों की राजनीति, इच्छा और प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। *

किन्तु यह घोषणा ६ वर्ष से अधिक न टिक सकी। ईस्वी सन् १७६० में लार्ड कार्नवालिस ने टीपू सुल्तान पर चढ़ाई कर उसका आधा राज्य छीन लिया। पुनः ईस्वी सन् १७६६ में लार्डवेलेस्ली महोदय उस शेष आधे राज्यको भी साफ़ डकार गये। इसके थोड़े दिनों पश्चात् अवधके नवाबसे लिया हुआ प्रान्त तथा कर्नाटक प्रान्त भी अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। इंग्लैण्डके कोर्ट-आफ-डायरेक्टर्स रूपी बगुलाभगत इस ऊपरी विजयसे प्रसन्न हो उठे। किन्तु शीघ्रही

इस सम्बन्ध में कोर्ट आफ़ डायरेक्टर्स ने लिखा है—

* The territorics which we have lately acquired...... ..are of so vast and extensive nature, that we cannot take a view of our situation without being seriously impressed with the wisdom and necessity of that solemn declaration of the legislature, that to persue schemes of conquest and extension of dominion in India, are measures repugnant to the wish, honour and policy of the British Nation."

उनका बढ़ा हुआ पेट फूट न जाय अथवा उसपर लोगोंकी नज़र गड़ न जाय इस भयसे उन्होंने पुनः घोषणा कर दी कि, भारतवर्षमें राज्य-विस्तार का कोई प्रयत्न न किया जाय। इसके कुछ दिनों पश्चात् अर्ल आफ मोइरीकी गवर्नरमें नेपाल युद्ध आरंभ हुआ और उस समय भी नेपाल का बहुतसा भाग ब्रिटिश सरकार के हाथ में आगया। इस तरह बगुलों के बकध्यान में ब्रह्मदेश, आसाम, कुर्ग, सिंध, पंजाब आदि मत्स्यभी फंसकर उसके भक्ष्यस्थान में पड़ गये। जिन्हें वे ऐसे चट कर गये कि डकार तक न ली।

इसके पश्चात् ईस्वी सन् १८४८ में लार्ड डलहौसी हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल होकर आये। उस समय भारतवर्ष पर अंग्रेज़ों की पूरी छाप पड़ चुकी थी। भारतवर्ष की समस्त शासक शक्तियोंमें उस समय इन्हीं का जोर विशेष था। अतः देशके अन्य छोटे मोटे राज्य इनसे दब कर ही अपने शासनसूत्रका संचालन करते थे। अंग्रेजोंके शासनका उस समय हिन्दुस्तान भरमें एकसा दौरदौरा था। यहां तक कि, वह उस समय एक तरह से अखिल भारतवर्षके सम्राट् बने हुए थे। किन्तु केवल भेद इतना ही था कि, वह अबतक प्राचीन मुगल सम्राटोंकी तरह एकच्छत्रकी स्थापना नहीं कर सके थे। लार्ड डलहौसीकी यह हार्दिक इच्छा थी कि, प्राचीन मुगल सम्राटोंकी तरह भारतवर्षमें अंग्रेजों का एकच्छत्र स्थापन हो। इसी दानवी इच्छा के कारण भारतवर्ष में जगह-जगह फैले हुए छोटे-मोटे स्वतन्त्र राज्य तथा अंग्रेजों के इशारोंपर चलने वाले नामधारी शासक उनके पैशाचिक नेत्रों को आँखोंकी किरकिरीसे खटकते थे। उन्होंने अपने अमङ्गल पैर भारतमें डालतेही उन अशक्त

राज्योंको कुम्भकर्णकी तरह ज़ोरोंसे डकारना आरम्भ किया। उनकी दृष्टि में न्याय और नीतिका कुछ भी मूल्य नहीं था। वह अंग्रेज़ोंके उन शर्त्तनामोंको जो उनके पहिले गवर्नर जनरलोंने भारतीय नरेशोंके साथ किये थे बिल्कुल निरर्थक और निष्प्रयोजन समझते थे। उन्होंने दानवी लालसासे प्रेरित होकर भारतीय नरेशोंको झगड़ालू बिल्लियाँ बना रखा था तथा आप बन्दरकी तरह न्यायाधीश बनकर उनके फ़ैसले कर रहे थे। उन्होंने अपने शासनकालमें भारतीय साम्राज्यमें वह भयङ्कर फूट डाल दी थी कि, उसका निबटारा बिना तीसरे की सहायता लिये हो ही नहीं सकता था। ऐसी परिस्थितिमें यह स्वयम् न्यायाधीशका लिबास पहिनकर उनके सामने हो जाते और जिधरसे अपने स्वार्थ-साधनकी आशा देखते उधरही का परिणाम सुना देते थे। इस तरह उन्होंने अपने शासनकालमें कितने ही नरेशोंको कमजोर बनाकर अपनी हुकूमतका गुलाम बना लिया था। तथा कितने ही स्वतन्त्र राष्ट्रोंको पूर्णतया अपनी कठोर मुट्ठीमें दबा लिया था। यह महात्मा पञ्जाब, ब्रह्मदेश, सिकिम-दार्जिलिङ्ग, अर्काट, तञ्जावर, सम्भलपुर, खैरपुर-सिंध, नागपुर इत्यादि राज्य तो बिल्कुलही सफ़ाईसे डकार गये तथा निजाम-हैदराबाद, बड़ौदा-ग्वालियर इत्यादि राज्योंको अपना जूतेमार गुलाम बना लिया। उनकी इस कुटिल राजनीति और स्वार्थ-तृष्णा हीका यह फल था कि, उनके शासनकालमें ही भारतके दीर्घ सन्तोषी समाजमें असन्तोषकी लहरें हिलोरें मारने लगीं और उनका प्रलयङ्कर प्रवाह ईस्वी सन् १८५७ में भारतवर्षीय गदरके रूपमें सारी भारतभूमिमें फैल गया। इस सम्बन्धमें हमारा ही क्या, सारे के सारे पूर्वीय और पाश्चात्य इतिहासज्ञों का यही कथन है।

किन्तु फिर भी एक बातका विचार करते हुए हमें यह आशङ्का हो जाती है, कि उक्त अमानुषिक काण्डोंके कर्ता-धर्ता भाग्य-विधाता एक मात्र लार्ड डलहौसी ही नहीं थे। कारण उनके शासनके साथ-साथ यदि हम तत्कालीन इंग्लैण्ड स्थित कम्पनीके डायरेक्टरोंकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो, तत्क्षण हमें ज्ञात होजाता है कि लार्ड डलहौसीकी उक्त 'हजम-आबाद नीतिका सञ्चालन केवल उनकीही विचित्र खोपड़ीकी सूझ नहीं थी, वरन् उसके वास्तविक सञ्चालन कर्ता थे मि० हाबहाऊस कम्पनीके इंग्लैण्डस्थित डायरेक्टरोंके प्रधान। उन्होंने ही लार्ड डलहौसीको भारत वर्ष में भेजनेके पूर्व उन्हें इस बातका पाठ पढ़ा रखा था कि जहांतक सम्भव हो, भारतवर्षके किसी भी नरेशको, जो अंग्रेजोंके सुलह-सूत्रमें बँधा हुआ है, दत्तक लेनेकी आज्ञा न दें।

उस समय इंग्लैण्डस्थित डायरेक्टर न्याय और नीतिको पहिचानते ही नहीं थे। वह सर्वदा इसी धुनमें मस्त रहा करते थे कि, क्या उपाय सोचा जाय, जिसमें भारतवर्षका अधिकसे अधिक धन उनकी जेबोंको गरम करे। वह शीघ्रसे शीघ्र भारतवर्षके नक्शेको नख-शिखान्त लाल रङ्ग से रङ्ग देना चाहते थे और चाहते थे समूचे भारतवर्षपर अपनी अद्वितीय हुकूमत। *

---

* इस सम्बन्धमें सरमालकम लेडलोने अपनी 'ब्रिटिशइण्डियन हिस्ट्रीमें' पहिले खण्डके १९८ वें पृष्ठमें इस प्रकार लिखा है:—

"The establishment of the English power in India is an ugly one. It begins in feebleness

लार्ड डलहौसी ईस्टइण्डिया कम्पनी के शासनके महत्व पूर्ण स्तम्भ थे, इसमें सन्देह नहीं। यह बड़े धीर-वीर और कर्तव्यशाली पुरुष थे। उनमें सुस्ती और अकर्मण्यताका नाम तक न था। वह जिसका निमक

and cowardice, it is pervaded by capacity, it closes with a course of fraud and falsehood of forgery and treason as stupendous as ever lay in the foundation of a great Empire."

पाठकगण! उक्त उद्‌गार तो आपने पढ़ही लिये। अब दूसरे उद्‌गार जो 'हर्बर्ट स्पेन्सर' नामक पाश्चात्य देशके प्रसिद्ध तत्ववेत्ताने, भारतवर्ष में ईस्टइण्डिया कम्पनीके राज्यको उद्देश्यकर, अपने 'सोशल स्टैटिक्स' में निकाले हैं, उनपर भी मुलाहिज़ा फरमाइये—

"The Anglo Indians of the last century whome Burke described as Birds of pray and passago in India showed themselves only a shade eess cruel than their prototypes of perw and Mexico. Imagine how black must have been their deeds, when even the directors of the company admited that the vast fortunes acquired in the ineand trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct that was ever known in any age or country conceive the atrocious state of society

खा रहे थे, उसके कार्य को अपनी जानके मूल्य पर सिद्ध करने को तैयार थे। भारतमें साम्राज्य स्थापन करनेके सम्बन्धमें ईस्टइण्डिया कम्पनीने ईस्वीसन् १८३४ में इन शब्दोंमें अपनी नीति घोषित की थी कि "यदि लड़का गोद लेनेका" फैसला देना आपके हाथ हो तो आप जहां तक हो सके किसीको भी दत्तक पुत्र लेनेकी आज्ञा न दें। वह आप बहुत ही कम अपवादके रूप में अपनी खास मेहरबानी जतलाकर दे सकते हैं, सर्वसाधारण रूप में नहीं।" *

---

described by Vansitrat, who tell us that the English Compelled the natives to duy or sell at just what rates they pleased on pain of flogging or confinement. A cold blooded treachery was the estaelished policy of the authorities. Princes were eetrayed into the war, with each other; and one of them having been helped to overcome his antagonist, was then himself dethroned for some alleged misdemeanour. Always some muddiee stream was at hand as a pretext for official wolves."

* When ever it is optional with you to give or to withhold you consent to adoption, the indulgence should be the exception and not the general rule, and shodul never be granted except as a special mark of approbation.

कम्पनीकी इस नीतिके अनुसार लार्ड डलहौसीने भारतवर्षमें आतेही दत्तक पुत्र अस्वीकार कर कुलावा, माँडवी, अम्बाला इत्यादि छोटे-छोटे राज्य अपने फौलादी पञ्जेमें दबा लिये थे। उनकी भी सदा यही इच्छा थी कि वह 'येन केन प्रकारेण' कम्पनी को अपनी सेवाओं से प्रसन्न रखें और उसकी समस्त इच्छाओंकी पूर्ति करते रहें। * उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि, जिस देशपर अंग्रेज़ जाति शासन करने आयी है, उस देशका नक्शा यदि सम्पूर्णरूपसे लाल हो जाय तो उसमें इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनों ही का कल्याण है।

इसी अन्ध धारणापर विश्वासकर वह उन देशीराज्योंको जो लावारिस हुए थे या हो रहे थे तथा जिन्हें दत्तकपुत्र लेनेके लिये अंग्रेज़ सरकारसे मञ्जूरीकी आवश्यकता थी, उन्हें दनादन खाजसाकर अंग्रेज़ी राज्यमें मिलाते चले गये। इस सम्बन्धमें उनके निजी विचार (उनकेही शब्दों में) यह थेः—

"मेरी दृष्टिसे कोई भी मनुष्य, यदि वह राजनीतिज्ञ है, मेरी इस राजनीतिपर आक्षेप नहीं कर सकता, यदि मैं उन छोटे-छोटे राज्योंको, जो लावारिस होते हैं और हमारेही अधीनस्थ प्रदेशोंमें स्थित हैं, अपने अधिकारमें ले लेता हूँ और उचित अवसर प्राप्त होनेपर अपना

---

* सर जान 'के ने' उनकी धारणाके सम्बन्धमें यों लिखा हैः—

"He never doubted that it was good alike for England and India, that the map of the Countryonwhich he had been sentto govern shoued present one surface of red."—

साम्राज्य विस्तार बढ़ाता हूँ,–उसकी उन्नति करता हूँ। इन छोटे-छोटे राज्योंके रहनेसे हमें हानिके अतिरिक्त लाभ हो ही नहीं सकता। मेरी दृष्टिसे वह राज्य हमारे साम्राज्यकी मज़बूतीका कारण नहीं हो सकते। अतः उन्हें यथाशीघ्र ख़ारिज़कर अपने साम्राज्यमें मिला लेना ही उचित और लाभजनक है। ऐसा करनेसे उनसे होनेवाली हानिकी सम्भावना ही न रहेगी और साम्राज्यके द्रव्यकोषमें भी पर्याप्त रूपसे वृद्धि होगी। साथही साथ मेरा यह विश्वास है कि, उन ख़ारिज़ किये गये राज्योंको भी इससे बहुत बड़ा लाभ होगा कि, उन्हें हमारी न्यायोचित और शान्तराज्य प्रणालीका सुख भोगने को मिलेगा, जिससे उन्हें अन्य भी कई तरहके लाभ हो सकते हैं। मैं अपने अंग्रेजी शासकवर्गको भी अपनी ओरसे यही राय देता हूँ कि यदि उसे अपना राज्यशकट पूर्णशान्तिके साथ और सुचारुरूपसे संचालन करना है तो उसे चाहिये कि, वह अपनी आय तथा राज्यविस्तार बढ़ानेकी दृष्टिसे, अपने आप और समय-समय पर हाथ आनेवाले ऐसे सुवर्ण अवसरोंको भूलसे भी हाथसे न जाने दिया करे।"

गत परिच्छेदमें बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट सरमालकमहोदयने झाँसीराज्यके सम्बन्धमें जो पत्र भारत सरकारके नाम प्रेषित किया था, उसे पाठक पढ़ ही चुके हैं। उस समय गवर्नर जनरल अवध प्रान्तके दौरेमें गये हुए थे। अतः उनकी ओरसे कोई भी तात्कालिक उत्तर माल-कमको न मिला। महारानी लक्ष्मीबाई ४-५ महिनों तक उस उत्तरकी आशामें चुपचाप बैठी रहीं। किन्तु समय अधिक हो जानेके कारण वह ऊकता गयीं और उन्होंने पुनः एक दूसरा पत्र मेजर एलिसके द्वारा

भारत सरकारको भेजवा दिया। उसमें जो कुछ लिखा था, उसका सारांश यह है:—

"श्रीमान्! झाँसी राज्यके कागज़ पत्र देखनेसे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रान्तमें अंग्रेजोंका शासन होनेके पूर्व ब्रिटिश सरकारको मेरे श्वसुर शिवराव भाऊने कितनी बड़ी सहायता की है। इसमें सन्देह नहीं कि, उसी सहायताका स्मरणकर अंग्रेज सरकारने भी अब तक हम लोगोंपर यथोचित रूपसे कृपाकी है। जिसके कारण हम लोगोंका आजतक कल्याण ही कल्याण हुआ है।

आपको यह स्मरणही होगा कि, सन् १८४२ ईस्वीमें मेरे पति गंगाधर रावके साथ कर्नल स्लीमन साहबने जो सन्धिकी थी, उस समय उन्होंने उन शर्तोंको रद्द नहीं किया था, जो अंग्रेज सरकार द्वारा ईस्वी सन् १८१७ में रामचन्द्र रावके साथकी गयी थी। परञ्च १८४२ की नयी सन्धिके समय भी अंग्रेज सरकारने मेरे पतिको यही वचन दिया था कि, उन प्राचीन शर्तोंका उसी तरह पालन होगा जिस तरह वह तब तक पाली गयी थीं। उस समय ब्रिटिश सरकारने पुनः यह आश्वासन दिया था कि उससे होनेवाले सम्पूर्ण लाभ उठानेका झाँसी राज्यको पूरा अधिकार रहेगा।

मैं जानती हूँ कि, दयालु अंग्रेज़ सरकारने शिवराव भाऊके पश्चात् ईस्वी सन् १८१७ में उनके वंशज रामचन्द्ररावको झाँसीके सारे अधिकार वंश परम्पराके लिये देकर उनसे जो सन्धिकी है, वह मेरे स्वर्गीय श्वसुर शिवराव भाऊके अंग्रेजोंके प्रति जीवन भर रहे हुए अगाढ़ प्रेम और सद्व्यवहारको देखकर ही की गयी है। अंग्रेज़ोंने उनके

उस दिव्य प्रेमके पुरस्कार स्वरूप रामचन्द्र रावको झाँसीका स्वत्वाधिकार देकर उनकी अन्तिम इच्छा पूरीकी है। इसे हम भलीभाँति जानते और मानते हैं।

अंग्रेज़ सरकारने झाँसी राज्यको अपना दृढ़ प्रेमी और कट्टर मित्र बनानेके अभिप्रायसे ही, वह सन्धिपत्र लिखा है और उसमें इस बातको स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है कि, स्वर्गीय श्री शिवराव भाऊके शासित प्रान्तका सारा अधिकार वंशपरम्पराके लिये रामचन्द्रराव, उनके पुत्र तथा उनके वारिसोंको है। अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, यदि दुर्भाग्यवश झाँसी नरेशको पुत्र प्राप्ति न होनेके कारण वह अपना वंश कायम रखनेके लिये किसी निकटस्थ सम्बन्धीको गोद लें तो अंग्रेज सरकार उसे स्वीकार कर उनके घरानेका लोप न होने दे।

हमारे हिन्दू धर्मशास्त्रमें जिस तरह औरस पुत्रको अपने मृत पिता को पिण्डदान देने तथा श्राद्धादि करनेका अधिकार है उसी तरह दत्तक पुत्रको भी वह सारे अधिकार प्राप्त माने गये हैं। अतः भारत वर्षमें दत्तक प्रथा कोई नवीन और धर्म्मसे परे प्रथा नहीं है। हमारे यहाँ जिन सभ्य दम्पतियोंको औरस पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती, वह बराबरसे ही दत्तक लिया करते हैं तथा वही दत्तक अपने उन दम्पतियोंको पिण्ड-दान देने तथा उनकी समस्त सम्पत्तिके योग्य अधिकारी माने जाते हैं। हमारे आर्यधर्म्मने हिन्दूसमाजको ऐसा करनेकी पूर्ण आज्ञा दे दी है।

श्रीमान्! इसी आज्ञाको मानते हुए मेरे मृत पति गङ्गाधर रावने, जब देखा कि, हम दोनोंके दैव दुर्विपाकसे हमें कोई औरस सन्तान नहीं है तथा उनकी जीवन-ज्योति शीघ्र ही समाप्त होना चाहती है, तो

उन्होंने अपना वंश स्थायी बनाये रखनेकी अभिलाषासे दत्तक पुत्र लेनेका निश्चय किया। तदनुसार तारीख १९ नवम्बर के दिन, जब वह अपने जीवनसे सम्पूर्णरूप से निराश हो चुके तब उन्होंने अपने इस अन्तिम उद्देश्यको कार्य रूप में परिणत करनेके लिये सायंकालके समय मुझे तथा अपने मन्त्री नरसिंह अप्पा, लाला लाहौरीमल और लाला तट्टीचन्द प्रभृति सम्मान्य सेठ साहूकारों, राज्यकर्मचारियों तथा इष्टजनोंको अपने पास बुलाकर उनके सामने अपनी इच्छा प्रकट की। हम लोगों में बहुत देर तक उपयुक्त तथा सगोत्री बालकों का मनःसंशोधन हो रहा था। घण्टों के बहस-मुबाहिसे तथा दृष्टिकोणमें रहनेवाले बालकों के गुण-कर्म-स्वभावका पर्यालोचन होनेके पश्चात् सर्वसम्मतिसे हमारे वंशका आनन्द राव नामक एक ५ वर्ष का शिशु इस कार्य के उपयुक्त सिद्ध हुआ। मेरे पति गङ्गाधररावने भी उसी बालक के प्रति अपनी सम्मति प्रकट की। निदान दूसरे दिन वह सर्वसम्मतिसे स्वीकार हुआ। उस शिशु को महाराज गङ्गाधररावने शास्त्रोक्त पद्धति से गोद ले लिया। झाँसी राज्य के प्रसिद्ध पुरोहित विनायकरावने उसका संकल्प कराया तथा आनन्द राव के पिता वासुदेव रावने स्वयम् महाराज गंगाधर राव को पुत्र का दान दिया है। उस समय बुन्देलखण्डके असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट मेजर एलिस और कप्तान मार्टिन भी दरबार में उपस्थित थे। महाराज गंगाधररावने स्वयम् अपने हाथों से इस दत्तक पुत्रको स्वीकार करनेके लिये ब्रिटिश सरकारके पास लिखा हुआ एक प्रार्थना पत्र मेजर एलिस को सौंप दिया था तथा उनसे इस बातका आश्वासन ले लिया था कि, वह अवश्य इस दत्तक पुत्रको ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार

कराकर उनके वंशकी जड़ झाँसी राज्य में कायम रखेंगे। इसके ठीक दूसरे दिन अर्थात् तारीख २१ नवम्बरको मेरे प्राणप्रिय-पति परलोकवासी हो गये और उनका सारा क्रियाकर्म्म उनके दत्तक पुत्र दामोदर गङ्गाधर (इस विधानके बाद आनन्दरावका ही नाम दामोदर गङ्गाधर रखा गया) ने ही ठीक औरस पुत्र की तरह किया।

अब श्रीमान्से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि, जिस दत्तक पुत्रको अपना मानकर अंग्रेज सरकारके सच्चे मित्र स्वर्गीय श्रीगङ्गाधर रावने उसे आप और आपकी सरकारकी छत्रछायामें विश्वासपूर्ण अन्तःकरणसे डाल दिया है, उसकी रक्षा करना एवम् उसपर कृपा दृष्टि बनाये रखना आपका और आपकी सरकार का प्रथम कर्तव्य एवम् परम धर्म है। साथही साथ, यदि श्रीमान् मुझे क्षमा करें तो मैं श्रीमान्का ध्यान मेरे पड़ोसी दतियाके राजा परीक्षित, जालौन नरेश बालाराव अथवा ओर्छाधिपति तेजसिंहको ओर आकृष्ट कर प्रार्थना करती हूँ कि, जिस तरह दयालु अंग्रेज़ सरकारने इन लोगोंके लिये हुये दत्तक पुत्रोंको स्वीकार कर लिया है, उसी तरह मेरे स्वर्गीय पतिदेवका लिया हुआ दत्तक पुत्र भी स्वीकार कर लिया जाय। श्रीमान् स्वतः राजनीतिज्ञ हैं, अतः जानते ही होंगे कि, अंग्रेज़ सरकारकी दयाप्राप्तिका अधिकार जितना झाँसी नरेशको है उतना इन राज्योंको नहीं और जब इनपर ब्रिटिश सरकारने इतनी दया दिखलायी है तब मुझे पूर्ण विश्वास है कि, मैं उस दयासे वञ्चित न रहूँगी। उक्त देशोंके राजाओं के साथ जो अंग्रेज़ोंसे सन्धि हुई है उसमें और झाँसीनरेशसे हुई सन्धि में भारी भेद है। झाँसी राज्यसे हुई सन्धिके सन्धिपत्रमें अंग्रेज़ सरकारने

"DAWANA" 'सर्वदा' शब्दका उपयोग किया है। जो उन राज्यों के सन्धिपत्रमें नहीं है । ऐसी परिस्थितिमें श्रीमान् स्वयम् समझ सकते हैं कि दत्तक लेनेका अधिकार उन राजाओं से कहीं अधिक मेरे पतिको है।"

महारानी लक्ष्मीबाईने उक्त आशयका एक पत्र पुनः गवर्नर जनरल के पास भेजा। उनकी इस न्यायोचित माँगको पूरी करनेके लिये तत्कालीन झाँसीके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर एलिसने भी गवर्नर जनरलके पास पर्याप्त शिफ़ारिश कर दी। उन्होंने इस सम्बन्धमें गवर्नर जनरल के नाम लिखे हुए तारीख २४ दिसम्बर सन् १८५३ के पत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें लिख दिया था कि "झाँसी राज्य ख़ारिज़ कर देना अथवा उसके दत्तक पुत्र लेनेके अधिकारको अस्वीकार करना, कोर्ट आफ डायरेक्टर्सके झाँसी राज्यके सम्बन्धमें तारीख २७ मार्च १८३६ को लिखे हुए पत्रकी १६ वीं और १७ हवीं धाराके सर्वथा विरुद्ध है। मेरी दृष्टिसे ब्रिटिश सरकार यदि इस दत्तक पुत्रको अस्वीकार कर झाँसी राज्य ख़ारिज करेगी तो वह अपनी उदारता एवम् नीतिका अपने ही हाथों खून करेगी।"

किन्तु एलिस साहबका यह पत्र बुन्देल खण्डके पोलि० एजेण्ट मेजर मालकमकी कृपासे बहुत दिनोंतक उनके कागजातोंमें ही छिपा रहा।

इसी समय झाँसीकी गद्दीके सम्बन्धमें एक और नया गुल खिला था। स्वर्गीय श्रीमहाराज गङ्गाधररावके मूल निवास स्थान खानदेशमें अभीतक उनके दूरके भाई-बन्द रहते थे। उन्हींमेंसे सदाशिव नारायण नामक एक सुदूरस्थ कुटुम्बीने महाराजके देहान्त होनेके पश्चात् झाँसी

को गद्दीके लोभसे बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मालकमहेलो के पास एक प्रार्थना पत्र भेजा। जिसमें उसने अपनेको महाराजका निकटस्थ कुटुम्बी और झाँसीकी गद्दीका वास्तविक वारिस सिद्ध किया था। मालकमहेलोको इशारेपर नाचनेवाला यह नया सन्दूर बहुत पसन्द आया और उसने तारीख ३१ दिसम्बर सन् १८५३ को उस सम्बन्धमें गवर्नर जनरलके पास एक पत्र लिखा और उसमें स्पष्ट शब्दोंमें लिख दिया कि, यदि ब्रिटिश सरकारको परलोकवासी झाँसी नरेशकी गद्दी बनाये ही रखना है और उसके किसी कुटुम्बीको महाराजका वारिसी हक देनाही है तो यह सज्जन उनका विशेषरूपसे निकटस्थ सम्बन्धी और झाँसीकी राजगद्दीका उचित अधिकारी साबित होता है।

किन्तु लार्डडलहौसीके सामने उनके इस पत्रका भी कोई मूल्य न रहा। लार्ड डलहौसी अपने अवधके दौरेसे छुट्टी पाकर ईस्वी सन् १८५४ के फरवरी मासमें कलकत्ते लौट गये। उन्होंने वहाँ पहुँचतेही भारत-सरकारके परराष्ट्र सम्बन्धी सचिव मिस्टर जे० पी० ग्राण्ट साहबके हस्ते झाँसीराज्य सम्बन्धी समस्याको किनारे लगानेके लिये उसकी एक बड़ीसी 'मिसिल' तैय्यार करवायी। उसमें उन्होंने झाँसी राज्यकी प्राचीनता दिखलाते हुए उसके साथ अंग्रेज़ सरकारका जो सम्बन्ध चला आता था, उसका संक्षिप्त विवरण दिया था तथा अन्तमें इस बातपर जोर दिया था कि, अब इस राज्यको अंग्रेज़ी राज्यमें सम्मिलित कर लेना अपेक्षित ही कार्य नहीं, अनिवार्य कार्य है। इस मिसिलके सम्बन्धमें लाटसाहब और उनके कौंसिलरोंमें बड़ी बहस हुई थी और उसके बाद उन्होंने जो निश्चय किया था, वह यह है:—

Hindus are ... nationalism

"ईस्वी सन् १८५३ के नवम्बर मासमें झाँसीके अन्तिम नरेश महाराज गङ्गाधररावका देहान्त हुआ। उनके मरणकालमें उन्हें कोई औरस पुत्र नहीं था, इस हेतु उन्होंने अपने कालकवलित होनेके एक दिन पूर्व आनन्दराव नामक किसी बालकको दत्तक लिया है। उसीको अनुलक्षकर स्वर्गीय झाँसीनरेशकी पत्नी महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ सरकारसे यह प्रार्थना करती है कि, उनके मृत पतिका वारिस अंग्रेज़ सरकार इसी दत्तक पुत्रको स्वीकार करे।

उनकी इस प्रार्थना पर ध्यान देते हुए, मैंने झाँसीराज्यका वह संक्षिप्त वृत्तान्त पढ़ा जो सेक्रेटरीने मेरे सामने पेश किया है। उसके पढ़नेसे झाँसीराज्यसे अंग्रेज़ी राज्यका जो सम्बन्ध है वह स्पष्ट हो गया है। अतः उसपर विचार करते हुए तथा झाँसी राज्यसे अबतक अंग्रेज़ सरकारका जो पत्र व्यवहार हुआ है उसे ध्यानमें रखते हुए मुझे यह सम्मति देनेका पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है कि, झाँसीके मृत अधिपति महाराज गङ्गाधररावके शासनमें जो प्रान्त थे उनकी इस समय कैसी और क्या व्यवस्थाकी जाय।

मेरी दृष्टिसे झाँसीकी गद्दीसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोंपर विचार करते हुए यही उचित मालूम होता है कि, चूंकि, झाँसीनरेश महाराज गंगाधररावका देहान्त होगया है और उन्हें कोई औरस पुत्र नहीं है, अतः ब्रिटिशराज्यको इस बातका पूरा अधिकार है कि वह इस राज्य को अपने राज्यमें मिला ले। कारण झाँसीका इतिहास इस बातका स्पष्ट प्रमाण दे रहा है कि झाँसीका राज्य अंग्रेज़ सरकारको ईस्वी सन् १८१७ में द्वितीय बाजीराव द्वारा प्राप्त हुआ था। उस प्राप्त

राज्यको शिवरावभाऊ अथवा उनके वंशजोंके पास अबतक बना रहने देना यह अंग्रेज़ोंकी इच्छा एवम् उदारताकी बात थी। किन्तु अब समस्या कुछ दूसरी होगयी है। महाराज गंगाधरराव शिवरावभाऊके ही पुत्र थे। अतः अंग्रेज़ सरकारने स्वर्गीय मित्रकी मित्रताका सम्मानकर उन्हें झाँसी के अधिकार दे दिये थे और यदि उन्हें भी कोई औरस पुत्र होता तो सम्भव था कि, उसे भी अंग्रेज़ सरकार झाँसीका शासनसूत्र दे देती। किन्तु चूँकि, इस समय उसका अभाव है, अतः मेरी रायमें यही उचित जान पड़ता है कि, अबसे झाँसीका सारा सत्व ब्रिटिश सरकारके हाथमें देना ही उचित और न्याय्य होगा।

अभी हालहीमें नागपुर तथा टेहरी राज्योंके सम्बन्धमें जो विवाद उपस्थित हुआ है, उसका निर्णय करते समय झाँसीराज्यकीभी भविष्यत् व्यवस्थाका निर्णय किया गया है। वह निर्णय लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर-चार्ल्स मेटकाफ साहब ने बुन्देलखण्डकी छोटी-छोटी रियासतोंके सम्बन्धमें बनाये हुए नियमके अनुसार, जिसे ईस्वी सन् १८१७ में अंग्रेज़ सरकार ने भी स्वीकार किया है तथा जिसे भारतवर्षके सभी आश्रित राज्योंके लिये ईस्वी सन १८४६ में अंग्रेज़ सरकारके विलायत स्थित कोर्टआफ डायरेक्टर्स तक करार कर चुके हैं, स्थिर किया गया है। अतः उसे देखते हुए यही स्पष्ट होता है कि अंग्रेज़ सरकारको झाँसीराज्य खारिजकर अपने मुल्कमें मिला लेनेका पूर्ण अधिकार है।

इसके अतिरिक्त झाँसीके कागजपत्र देखने तथा झाँसी राज्यके आदि पुरुष शिवरावभाऊसे ईस्वी सन् १८०४ में हुई सन्धिपर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि, झाँसी राज्य हमेशासे आश्रित ही है न कि

स्वतन्त्र। उसे टेहरी राज्यके इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं हैं। अंग्रेज़ सरकारने शिवराव भाऊके साथ जो सन्धिकी थी उसमें भी यह स्पष्ट लिखा है कि, "झाँसीके सूबेदार पेशवाका आश्रित" है। भाऊ साहब ने स्वयम् ईस्वो १८०३ में लार्ड लेक साहबको 'वाज़िब-उल-अर्ज़' लिखते हुए इस बातको स्वीकार किया है कि वह पेशवाकी आज्ञानुसार ही झाँसी प्रान्तकी राज्य-व्यवस्था देखते रहे।

शिवराव भाऊने राज-काज छोड़ते समय अंग्रेज़ सरकारसे यह प्रार्थनाकी थी कि उनके साथ को हुई सन्धिके अनुसार अंग्रेज़ सरकार उनके पोते को झाँसीकी गद्दी दे दे। किन्तु उस समय सरकारने उन्हें यही उत्तर दिया था कि चूंकि झाँसी राज्य पेशवाका आश्रित है, हमें उस सम्बन्धमें बिना उनकी आज्ञा लिये झाँसी राज्यको वंशपरम्पराके लिये चलानेका कोई अधिकार नहीं है।

इसी न्यायोचित नीतिके कारण ही अंग्रेज़ सरकारने ईस्वी सन् १८१५ में रामचन्द्ररावको अपने मनसे झाँसीकी गद्दी देकर पेशवाका दिल दुखाना तथा उनके अधिकारोंमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा था। इसके पश्चात् भी ईस्वी सन् १८१८ में यद्यपि पेशवाके सारे शासनसूत्र ब्रिटिश सरकारके हाथमें आ गये थे,—अर्थात् उनके साथ-साथ उनके छोटे—मोटे आश्रित राज्योंके अधिकारी भी अंग्रेज़ ही बन गये थे, तो भी उन्होंने उस समय झाँसी राज्यपर रामचन्द्ररावका वंशपरम्पराके लिये अधिकार स्वीकार नहीं किया था। किन्तु अब झाँसी राज्यका पूर्ण अधिकारी अंग्रेज़ सरकार हुई और उससे तथा शिवरावभाऊसे घनिष्ट स्नेह रहा, उसीको देखकर, उसने उनके

पोते रामचन्द्ररावको कुछ शर्तोंपर झाँसीकी गद्दी वंशपरम्पराके लिये लिख दी।

इस तरह यद्यपि झाँसीके सूबेदारको सन् १८३२ तक वंशपरम्परा के लिये गद्दी मिलती चली गयी, तथापि उसका मान सदा छोटा ही रहा और वह कभी राजा पद प्राप्त न कर सका।

ईस्वी सन् १८३५ में उक्त रामचन्द्ररावका देहान्त होगया। उन्होंने भी औरस पुत्र विहीन होनेके कारण अपनी मृत्युके एक दिन पूर्व दत्तक पुत्र गोद लिया था। किन्तु सरकारने उसे अस्वीकार कर दिया और उनके पश्चात् झाँसीकी राजगद्दी उनके चाचा रघुनाथरावको दे दी। रघुनाथराव ईस्वी सन् १८३८ तक झाँसीका शासन करते रहे। पश्चात् उनके भाई गङ्गाधररावको वह शासनाधिकार प्राप्त हुआ जो इस समय परलोकवासी हुए हैं।

अब न तो गङ्गाधररावका ही कोई औरस पुत्र है न रामचन्द्र रावका, जिन्हें ब्रिटिश सरकारने वंशपरम्पराके लिये झाँसीका राज्य लिख दिया था। अंग्रेजोंसे जबसे झाँसी राज्यका सम्बन्ध हुआ तबसे झाँसीमें जिन-जिन सूबेदारोंने राज्य किया, उनमेंसे किसीका भी औरस पुत्र जीवित नहीं है। ऐसी दशामें यह स्पष्ट है कि झाँसी राज्यको वंश-परम्पराके लिये चलानेवाला कोई न्यायोचित वंशज नहीं रह गया है और उसे अंग्रेज़ी राज्यमें मिला लेना ही उचित है।

महारानी लक्ष्मीबाई ने दत्तक पुत्र स्वीकार करने की प्रार्थना करते हुए टेहरी, दतिया और जालौनके राज्योंके हवाले दिये हैं। किन्तु उन्हें जानना चाहिये कि, टेहरी और दतिया स्वतन्त्र राज्य हैं। उनकी और

झाँसीकेसे आश्रित राज्यकी बराबरी नहीं हो सकती। स्वतन्त्र और आश्रितोंके लिये भिन्न-भिन्न नियमोंका निरूपण होता है। हाँ, जालौन की बात इससे विभिन्न है। वह एक आश्रित राज्य है अवश्य। किन्तु, उसे ब्रिटिश सरकार ने स्नेहबद्ध होकर किसी राजनैतिक विचारसे दत्तक पुत्र लेनेकी आज्ञा दी है। यह सरकारकी इच्छाकी बात है। किन्तु इससे महारानीको यह न समझ लेना चाहिये कि उस रियासत को एकबार दत्तक लेनेकी आज्ञा देनेसे ही उसे बारम्बार दत्तक लेनेकी आज्ञा दी जायगी। अथवा सरकारने इस दत्तकको स्वीकार कर लेनेसे ही सारी रियासतोंके दत्तक पुत्र लेनेके अधिकारोंको स्वीकार कर लिया है। इसके अतिरिक्त मेरी दृष्टिसे किसीको यह मान लेनेका भी कोई प्रमाण नहीं है कि जालौन रियासतको उक्त अधिकार मिल ही गया है। जालौन राज्यको जबसे दत्तक लेनेकी आज्ञा मिली है तबसे वह राज्य अंग्रेजोंके ही आधीन समझा जाता है।

साथही साथ महारानी साहबने अपने मृत पतिके दत्तक पुत्रको स्वीकार करनेका एक कारण यह बतलाया है कि, ब्रिटिश सरकारने ईस्वी सन् १८१७ में किये हुए सन्धिपत्रमें यह स्वीकार किया है कि, रामचन्द्रराव, उनके वारिस और उनके पश्चात् झाँसीकी गद्दीपर बैठने वाले झाँसी रियासतके वंशपरम्पराके लिये जागीरदार हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सरकार उन हक़ जतलानेवाले वारिसोंको भी स्वीकार करती है जो औरस पुत्रके एवज़में दत्तक आये हों।

महारानीको यह बात विदित ही है कि रामचन्द्रावके पश्चात् झाँसीकी गद्दीपर दो मनुष्य बैठाये गये। पहिले रघुनाथरावको गद्दी दी

गयी। किन्तु वह कुष्ठरोगसे पीड़ित थे और सर्वथा शासनके अयोग्य साबित हुए। उनके पूर्व झाँसीकी वार्षिक आय १८ लाख रुपये थी। जो उनके समय केवल ३ लाख रह गयी। तत्पश्चात् आपके पोते गङ्गाधरराव गद्दीपर बैठाये गये। किन्तु वह भी राज्य करनेके योग्य न थे। इसीलिये कई दिनोंतक झाँसीका सारा शासन-कार्य ब्रिटिश सरकारको देखना पड़ा था।

रानी साहबने जिस जालौन रियासतका हवाला अपने पत्र में दिया है, उसकी दशा इस समय बड़ी शोचनीय है। ब्रिटिश सरकारने उसे दत्तक लेनेकी आज्ञा देकर भारी भूलकी है, इसमें सन्देह नहीं। ईस्वी सन् १८२२ में जब कि, अंग्रेज़ सरकारने उसे दत्तक लेनेकी आज्ञा दी थी उस समय झाँसीकी वार्षिक आय थी १२ लाख रुपया। किन्तु यह अधिकार देने के ८ वर्ष पश्चातही उसकी आय आधेसे कम हो गयी है और इधर फ़जूल खर्चके कारण उसपर ३० लाख रुपयेका ऋण भार है। ऐसी परिस्थितिमें सरकार पुनः ऐसी भद्दी भूलको दोहरानेमें सर्वथा असमर्थ है और वह यही उचित समझती है कि झाँसीका राज्य खारिज कर दिया जाय तथा उसे अंग्रेजी मुल्कमें शामिल कर दिया जाय।

किन्तु, चूंकि आप स्वर्गीय झाँसीनरेश महाराज गङ्गाधररावकी पत्नी हैं, आपको बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्टकी सूचनानुसार अच्छासा वेतन दिया जाय तथा झाँसी प्रान्तकी सारी व्यवस्था लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके सुपुर्द कर दी जाय। "तारीख २७ फरवरी सन् १८५४ ई०।"

प्यारे पाठक! देखा आपने! लार्ड डलहौसीने अपनी स्वार्थ-लिप्सा

के सामने ईश्वरीय न्यायनीतिको तिलाञ्जलि देकर झाँसीराज्य तथा ब्रिटिश शासनकी मित्रताका सूत्र इस निर्दयता से तोड़ डाला। उन्होंने आसुरी महत्वाकांक्षाके नशेमें उद्‌मस्त होकर झाँसीके पूर्व शासक वर्गों के कृत उपकारोंका इस नीच प्रकारसे बदला चुकाया तथा अपनी ही अंग्रेज़ सरकारके समय-समयपर दिये हुए वचनोंकी इस निन्द्य प्रकारसे दुर्गति की। उन्होंने झाँसी राज्यका खारिज़ करनेके लिये जो-जो कारण उपस्थित किये थे वह नख-शिखान्त रूपसे सत्य और न्यायको छोड़कर थे। इसका स्पष्ट प्रमाण उन्हींके जात भाई मेजर इवान्सबेलकी लेखनी से निकले हुए वह वाक्य हैं, जो उसने "Empire in India" नामक पुस्तकामें क्रमशः २०२ से २१४ पृष्ठ तक तथा २२४ वें पृष्ठमें लिखे हैं।"

* ईस्वी सन् १८१७ मे पेशवाके साथ अंग्रेज़ोंने जो सन्धिपत्र लिखा था, उसमें स्पष्ट शब्दोंमें यह लिखा "The British Government with a view to confirm the fidelity and attachment of the Government of Jhansi, consents to acknowledge and hereby constitutes, Raw Ram Chandra, his heirs and succesors, hereditary rulers of the territory enjoyed by the late Raw Sheo-Bhao at the Period of commencement of British Government." रहने पर भी लार्ड डलहौसीका यह कथन कब और किसे विश्वसनीय मालूम होगा कि उन्होंने रामचन्द्रराव और उनके औरस पुत्रोंको झाँसी का

राज्य परोपकारकी दृष्टिसे ही भेंट दिया था? उक्त सन्धिपत्रमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमे स्वीकारकी गयी है कि अंग्रेज़ोंके शासन कालके पूर्वहोसे शिवरावभाऊ झाँसी प्रान्तपर शासन कर रहे थे। झाँसी का शासनाधिकार 'वंशज और वारिस' दोनोंको वंशपरम्पराके ज़िये है। *

---

* अंग्रेज़ सरकारने जो सन्धियाँकी थीं, उनके वास्तविक अर्थके सम्बन्ध में पार्लियामेण्टके मेम्बर म० डब्ल्यू० एम० टारेन्सने यों लिखा है:—

"Treaties have throughout all time been for the most part brief in language, general in the terms employed, and confessedly intendent, not as exhaustive anticipations of all imaginable contingencies but as laying down broadly and in simple forms of speech the outlines of peace and unity; upon the implied condition that might thereafter arise should be such as the common understanding of both communities would admit, or the judgement of impartial international right, the guarntee of perpetual inheitance was undoubtedly intended, and undoubtedly understood, to imply the devolution of title, dignity and power to what ever

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, लार्ड डलहौसीने अपनी 'मनमानी घर जानी' वाली नीतिके अनुसार कलकत्तेकी कौन्सिलमें बैठे ही बैठे झाँसी राज्य और झाँसीकी रानीका फैसला कर दिया था। किन्तु पतिवियोगसे जर्जर हुई महारानी अभी भी अनभिज्ञताके अन्धकार

---

heirs could, from time to time, estblish their respective claims,—not according to time LEX-LOCI of the foreign and alien party to the compact, but according to the LEX-LOCI of the State whose autonomy the treaty had been confessedly framed to assure.

इंग्लैण्डके तृतीय जार्जकी ओरसे ईस्टइण्डिया कम्पनीको भारतीयों के नागरिक एवम् धार्म्मिक रीतिरस्मोंको निबाहने के लिये यह सनद मिली थी:—

'And in order that regard should be bad to the civil and religious usages of the said natives, be it enacted that the rights and authorities of fathers of families and masters of families, according as the same might have been exercised by Hindu or Mahomedan Law, shall be preserved to them respectively within their said families etc."

में पड़ी हुई, चिन्ताज्वाला में जल रही थीं। उन्हें अपने दत्तक पुत्रका भविष्य अज्ञात था और उसीके सोचमें वह रात-दिन गल रही थीं। उन्होंने ईस्वी सन् १८५३ के दिसम्बर मासकी ३ री तारीखको जो पत्र अंग्रेज़ सरकारके पास भेजा था, उसका उतर दो-दो महिने बीत चुकनेपर भी नहीं मिला था। यह देखकर उन्होंने पुनः मेजर मालकमके मार्फत एक पत्र तारीख १६ फरवरी सन् १८५४ के दिन गवर्नर जनरल के पास प्रेषित किया था। जिसमें उन्होंने वही सारी बातें लिखवायी थीं, जिनसे झांसीकी गद्दीको दत्तक लेनेका अधिकार सिद्ध होता था। मेजर मालकमने उस पत्रको तारीख २८ फरवरी सन् १८५४ के दिन गवर्नर जनरलके पास भेज दिया और साथ ही साथ अबकी बार न जाने किस कारणवश महारानीके प्रति सदय बनकर उन्होंने अपनी ओर से भी महारानीके अनुकूल एक पत्र लिख दिया। किन्तु, जो कुछ होना-हवाना था, वह तो कलकत्तेकी कौन्सिलमें पहले ही हो चुका था, अतः उस पत्रका उपयोग वैसाही हुआ जैसा खेती जल जाने पर जल बरसने का होता है। मेजर मालकमने तारीख २८ दिसम्बरके दिन वह दोनों पत्र गवर्नर जनरलके पास प्रेषित किये थे। किन्तु इधर तारीख २७ दिसम्बरकोही लार्ड डलहौसीने झाँसी राज्यको खारिज़कर उसका सारा मुल्क अंग्रेज़ी राज्यमें मिला लेनेकी आज्ञा निकाल दी थी।

महारानी लक्ष्मीबाईको स्वप्नमें भी यह कल्पना नहीं थी कि, उनका दुर्दैव उनसे भी अधिक प्रबल है और वह उनसे भी भयङ्कर रूपसे अपनी तय्यारी कर रहा है। वह उक्त पत्रको भेजनेके पश्चात् इसी आशामें डूबी हुई थीं कि इसबार अवश्य उन्हें सन्तोषजनक उत्तर

मिलेगा। उनकी आशा फलवती होगी और उन्हें दत्तक पुत्रके नाम झाँसीका राज्य चलाने की आज्ञा दयालु अंग्रेज़ सरकार दे देगी। किन्तु थोड़े ही दिनों पश्चात् बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्टने ब्रिटिश सरकारकी ओरसे प्रेषित किये गये आज्ञा-पत्रको—जिसमें झाँसी राज्य खारिज़ करनेका परवाना था, मेजर एलिसके पास भेज दिया। उसमें लिखा था—

"झाँसीकी सर्वसाधारण प्रजाको इस आज्ञापत्र द्वारा अंग्रेज़ सरकार सूचना देती है कि झाँसीके अन्तिम नरेश महाराज गङ्गाधर रावका ईस्वी सन् १८५३ के नवम्बर मासकी २१ वीं तारीखको देहान्त हो गया। यह महाराज अंग्रेज़ सरकारकही प्रतिनिधिके रूपमें झाँसीकी राज्यव्यवस्था देख रहे थे। वह कभी स्वतन्त्र राजा नहीं थे। उनके पूर्वजोंको पेशवा दरबारसे झाँसी प्रान्तकी सूबेदारी मिली थी और वह पेशवाके आश्रित मात्र थे। किन्तु ईस्वी सन् १८१७ में पेशवा नरशने अंग्रेज़ोंके साथ जो सन्धिपत्र लिखा है, उसमें उन्होंने झाँसी प्रान्तके सारे अधिकार ब्रिटिश सरकारको लिख दिये हैं। अतः तबसे ब्रिटिश सरकारही झाँसीकी वास्तविक अधिकारिणी है और उस समयसे जो भी महाराज झाँसीकी गद्दीपर बैठे, वह ब्रिटिश सरकारके आश्रितके रूपमें ही उसीके प्रतिनिधिके तौर पर रहे। अंग्रेज़ सरकारने अपने शासनकाल में किसी भी अधीनस्थ राज्यको दत्तक लेनेकी आज्ञा नहीं दी है न किसी से वैसी शर्त ही की है। जिससे यह साबित हो कि, यदि किसी अधीनस्थ राजाको औरस पुत्र न हो और उसके एवज़में दत्तक पुत्र लिया जाय तो उसे भी औरस पुत्रकी तरह राज्यके सारे अधिकार दिये जायँगे। अतः

चूँकि महाराज गङ्गाधरराव को कोई औरस पुत्र नहीं है और उनका देहान्त होगया है, गवर्नर जनरल उनके 'दत्तक' पुत्रका अस्वीकार करते हैं तथा ब्रिटिश सरकारकी तारीख ७ मार्च सन् १८५२ की आज्ञानुसार घोषित करते हैं कि साम्प्रत झाँसी प्रान्त बुन्देलखण्डके असिस्टेण्ट पोलिकल एजेण्ट मेजर एलिसके आधीन कर दिया गया है। अबसे इस प्रान्तपर ब्रिटिश सरकारही का पूर्ण शासन रहेगा और झाँसी प्रान्तकी सारी प्रजा ब्रिटिश शासनके मातहतही समझी जायगी। झाँसी की प्रजा को यह नोट कर लेना चाहिये कि वह अबसे ब्रिटिश सरकारके अधीन है और उसे अपने सारे 'कर' ब्रिटिश सरकारके उक्त प्रतिनिधि मेजर एलिसको देने होंगे।"

मेजर एलिस महोदयने गवर्नर जनरलका उक्त मर्म्मभेदी घोषणापत्र जिस समय महारानी लक्ष्मीबाईको पढ़ सुनाया उस समय उनकी जो दशा हुई, उसका वास्तविक चित्र-चित्रण करना लेखन शक्तिके बाहरका कार्य है। उस घोषणापत्रका प्रत्येक शब्द महारानीकी धमनियोंका रक्त शोषण कर रहा था। उसका प्रत्येक अक्षर उनके कोमल वक्षःस्थलमें वज्र प्रहारकीसी पीड़ा दे रहा था। उसकी एक-एक पंक्ति महारानीकी चेतनाशक्ति हरण कर रही थी। वह क्षणभरके लिये क्षुब्ध हो गयीं। दूसरेही क्षण उनके चेहरेपर उदासी छा गयी और तीसरे क्षण 'हाय' मारकर गिर पड़ीं और बेहोश हो गयीं।

मेजर एलिस भी उनकी यह दशा देख अत्यन्त दुःखी हुए। निकटस्थ दरबारीगण उन्हें होशमें लानेकी चेष्टा करने लगे। प्रायः घण्टे भरके परिश्रमसे उन्हें कुछ-कुछ होश हुआ। मेजर एलिसने आगे बढ़

कर उन्हें सान्त्वना दी और कहा,–"पोलिटिकल एजेण्टकी आज्ञानुसार आपके निर्वाह-सम्मानका पूर्ण ध्यान रखा जायगा।"

* महारानी ने उनकी ओरसे मुँह फेर लिया। उन्होंने एक दीर्घ-श्वास ली और कहा—'मैं झाँसी न दूँगी।"

वह पुनः बेहोश होगयीं। मेजर एलिस अपनासा मुँह लेकर लौट गये।

पाठकों को ज्ञात हो है कि, बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मालकमने गवर्नर-जनरलके नाम लिखे हुए पहिले पत्रमें महारानी लक्ष्मीबाईके निर्वाहके लिये ५,००० मासिककी मन्जूरी माँगी थी। गवर्नरने यह रकम स्वीकार कर ली। किन्तु महारानी लक्ष्मीबाईने उसे स्वीकार नहीं किया।

* "The notice of annexation was sent by this illustrious lord to the court of Regent. Ranee Lakshmi Bai received the Agent of lord Dalhousie most courtiously. separated by a pardah. When the British representative informed her of this heart-rending news that Jhansi thenoefourth ceased to belong her, that it was incorporated with the domains of the mighty English, Laksbmi Bai in a loud yet melodious voice replied to the Agent of the English in these few significant words "Main

सर्वनाश—गत परिच्छेदमें वर्णित भारतके हितशत्रु, सच्ची ब्रिटिश सरकारके लाडले पुत्र लार्ड डलहौसी झाँसी प्रान्तको इस तरह हज़म कर गये कि त्रेतायुगके रामावतार कालीन 'आतापी-वातापी' नामक भूखके गुलाम आततायियोंने भी इस तरह कोई प्रान्त हज़म न किया होगा। उनकी दानवी भूख शमन होनेके पश्चात् उनके पिट्ठू बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मालकम हेलीने महारानी लक्ष्मीबाईके सम्बन्धमें भारत सरकारके पास नीचे लिखी सूचनाएँ स्वीकारार्थ भेज दीं—

१. जबतक महारानी लक्ष्मीबाई जीवित रहें तबतक उनके निर्वाहके लिये, झाँसी राज्यके राज्य कोषसे, अथवा जहाँसे वह स्वीकार करें वहाँ से उन्हें ५,००० मासिक वेतन दिया जाय।

२. झाँसी के राजमहलपर महारानी लक्ष्मीबाईका ही पूर्ण स्वामित्व हो और उन्हें रहनेकी आज्ञा दी जाय।

३. जबतक महारानी लक्ष्मीबाई जीवित रहें तब तक उनपर या उनके नौकरोंपर ब्रिटिश सरकारके न्यायालयका कोई भी अधिकार न रहे।

४. स्वर्गीय महाराज गङ्गाधररावकी निजी सम्पत्ति (राज्यके लेन-देनका हिसाब साफ करके जो शेष रहे) तथा राज्यके समस्त आभूषण और जवाहिरात महारानी लक्ष्मीबाई को दे दिये जायँ।

Jhansey-Dungi-Nahi" (I will not give up my Jhansi) Vain Boast ! Jhansi was annexed. The infant Anand Rao's rights were denied.

५. महारानीके समस्त रिश्तेदारोंकी एक सूची तैयारकी जाय और उनके निर्वाहके लिये मासिक वेतनोंका प्रबन्ध कर दिया जाय।

इस प्रकार उक्त पाँच प्रस्ताव मेजर मालकमने लार्ड डलहौसके पास स्वीकारार्थ प्रेषित किये थे। लार्ड डलहौसीने उन्हें प्रायः बहुत कुछ अंशोंमें स्वीकार कर लिया। किन्तु जहाँ उस सर्व्वभक्षेश्वरकी दृष्टि उक्त निर्द्देशित चौथे प्रस्ताव पर पड़ी तहाँ उसके कुटिल ललाट पर सिकुड़न पड़ गयी। वह द्रव्य देना तो किसीको जानता ही न था। उसके हाथसे द्रव्यका निकल जाना दुनियाके उलट जानेके समान था। वह सदा इसी धुनमें रहा करता कि क्या उपाय किया जाय जिससे भारतका अधिकसे अधिक धन गोरे-गोरे करकमलोंमें जा विराजे और वहाँसे विलायत स्थित ईस्टइण्डिया कम्पनीको तिजोरियोंकी शोभा बढ़ाये। इसी वृत्तिके वशीभूत होनेके कारण उसने उक्त चौथे प्रस्तावमें अपनी अड़ लगा ही दी।

इस सम्बन्धमें ईस्वी सन् १८५४ के मार्च मासकी २५ वीं तारीख को मेजर मालकमके नाम उसने जो पत्र लिखा है, उसमें यह शब्द है कि, यद्यपि कानूनन महाराज गङ्गाधररावका दत्तक पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं हो सकता तथापि उनकी निजी सम्पत्ति एवम् राज्यके रत्नाभूषणोंका वही अधिकारी है। अतः यह सम्पत्ति महारानी लक्ष्मीबाई को देना न्यायसे परे और शासन-सिद्धान्तके विरुद्ध है।"

इस पत्रको पाकर झाँसीके पोलिटिकल एजेण्टने झाँसीके राज्यकोष से ६ लाख रुपये निकालकर उन्हें दामोदररावके नाम अंग्रेजो खजानेमें जमा कर दिया तथा इस बातका निश्चय कर दिया कि दामोदररावके

'बालिग' होनेपर वह रकम मय सूद के उन्हें दे दी जायगी। इतना सब कर चुकनेपर महारानी लक्ष्मीबाईको किला छोड़कर राजमहलमें रहने का हुक्म सुनाया गया। क्यों न हो? समय जो दिखावे, थोड़ा है। महारानी लक्ष्मीबाईको चुपचाप किला खाली कर देना पड़ा।

इस तरह बिना किसी लड़ाई-भिड़ाईके केवल छल-छद्मोंके सहारे अंग्रेजोंने झाँसीकेसे सुदृढ़ प्रान्तको सरलता पूर्वक मुट्ठीमें दबा लिया। पश्चात् सम्पूर्ण शासनसूत्र हाथमें आते ही उन्होंने उसमें इच्छानुसार परिवर्त्तन करना आरम्भ किया। * झाँसी राज्यकी सेना छ: छः महीने का अतिरिक्त वेतन देकर छुड़ा दी गयी और उसकी जगह अंग्रेज़ी सेना भर्ती की गयी। किलेकी रक्षाके लिये बङ्गाल इन्फ़ेण्ट्रीकी १२

---

* झाँसी राज्यकी सेना झाँसी छोड़कर जाते समय अत्यन्त दुखी हुई। उसे महारानीके प्रति हार्दिक सहानुभूति थी। वह अत्यन्त उदास हुई। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० 'के ने' झाँसीकी प्रजाका महारानीके प्रति अद्वितीय प्रेम दिखलाते हुए लिखा है:—

"Invain the widow of the LateRajah, whom the Political Agent discribed as a lady bearing a high character & much respected by everyone at Jhansye protested that her husband's house had ever been faithful to the British Government —invain she dwelt upon services rendered in former days to that Government and the acknowledgements which they had elicited from our

बारहवीं पल्टन नियुक्त हुई और आवश्यकता पर सी० पी० छावनीसे अथवा कप्तान ब्रिगेडियरकी सेनासे सहायता लेनेका निश्चय किया

---

rulers—invain she pointed to the terms of the treaty which did not to her simple understanding bar-succession in accordance with the laws and usages of her country—invain she quoted the precedents to show that the grace and favour sought for Jhsnsye had been yielded to other states. The fiat was irrevocable! it had been ruled that the interests both of the Jhansey demanded annexation. 'As it lies in the midst of other British Districts' said Lord Dalhoussie, the possession of it as our own, will tend to the improvements of the general internal administration of our possession in Bundelkhand. That its incorporation with the people of Jhansi a refference to the result of Experience will suffice to show,- "The result of experience have since shown to what extent the people of Jhansi appreciatd the benifits of that in corporation !"

—History of the Sepoy War.

गया। किलेमें पीढ़ियोंसे जो युद्धोपयोगी सामान जमा था, वह सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। पेशवाके समयकी प्रचण्ड तोपें निरुपयोगी कर दी गयीं। सारांश, यह कि झाँसीकासा ज़बर्दस्त प्रान्त हाथमें आते ही अंग्रेज़ोंने सबसे पहिले उसकी संगृहीत युद्धसामग्री नष्टकर उसकी कमर तोड़ी, राज्यकी सेनाको भत्ता बताकर उसे जीर्ण-शीर्ण बनाया ताकि वह पुनः कभी आज़ादीका दीवाना होकर सिर न उठाये।

इस तरह यद्यपि लार्ड डलहौसीने महारानी लक्ष्मीबाईका सत्यानाश करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी तथापि वह* सरल हृदया रमणी यही समझ रही थी कि इसमें ब्रिटिश सरकारका कोई भी दोष नहीं है वरन्

---

*झाँसीका छोटासा राज्य ब्रिटिश सरकारका कितना अनन्य भक्त था यह पूर्व्व परिच्छेदोंसे पाठक जान ही चुके हैं। किन्तु उस अनुपम भक्तिका ब्रिटिश सरकारने कैसा दुरुपयोग किया, इसपर कटाक्ष करते हुए मि० बेल नामक इतिहासज्ञने लिखा है:—

'The little Raj of Jhansi had conspicuous in its loyal attachment and useful services to the British Government. Its absorbtion by the suzer air under the shallow pretence of a "lapse" was a proceeding not only most hateful and offensive in the eyes of all native princes and their minis ter, but quite untellegible to them, except on the supposition of **BAD FAITH**'

उनके प्रति जो व्यवहार हुआ है वह ब्रिटिश सरकारके भारतीय प्रतिनिधियोंकी अज्ञानतावश ही हुआ है। उसको सदासे यह धारणा थी कि अंग्रेज़ लोग विशेषतः विलायतके रहनेवाले बड़े न्यायप्रिय, निस्पृह और बातके सच्चे होते हैं। इसी धारणाके वशीभूत होकर उन्होंने अपने प्रकरणका पुनः विचार करनेके उद्देश्यसे अपने पासके एक यूरोपियन तथा उमेशचन्द्र बैनर्जी नामक एक बङ्गाली वकीलको ६०,००० रुपये देकर लण्डनके कोर्ट आफ डायरेक्टर्सके पास भेजा। किन्तु वहाँ जाकर उन्होंने क्या किया, इसका कोई पता नहीं मिलता। सम्भवतः इन दोनों भलेमानसोंने वह रकम हड़पकर बहती गङ्गामें हाथ धो लिये। महारानीका यह उद्योग निरर्थक प्रमाणित हुआ। ईस्वी सन् १८२४ के अगस्त मासकी २री तारीखको झाँसीकी राज्यलक्ष्मी गोरोंके पद-कमलोंकी दासी हो ही गयी।

झाँसी राज्यको अंग्रेज़ी मुल्कमें जोड़ देनेपर लार्ड डलहौसीने बड़े तुर्रेसे कहा था कि झाँसीकी प्रजाके कल्याणार्थ ही झाँसीका राज्य अंग्रेजी शासनमें मिला लिया गया है। किन्तु उनकी इस प्रगल्भ कल्पनाको काटते हुए* लार्ड साल्जविन महोदयने अपने THE plea for princess of India नामक ग्रन्थमें बड़े ही मार्म्मिक शब्दोंमें देशी राज्यों

---

* Upon the extermination of Native state Englishman takes the place of the Soveriegn, under the name of Commissioner-three or four of his associates displace as many dozen of the Native

के स्वातन्त्र्य हरण होनेपर उनकी जो दारुण दशा होती है, उसका चित्र खींचा है, जिससे साबित होता है कि लार्ड डलहौसीको उक्त 'प्रजाहित' की दुहाई कहाँ तक ग्राह्य हो सकती है। अस्तु,

ऊपर लिखे हुए प्रकारसे जब झाँसीके सारे शासनसूत्र अंग्रेज़ोंके हाथ चले गये और महारानी लक्ष्मीबाईको उन्हें पुनः प्राप्त करनेकी कोई आशा न रही तब तो वह बड़ी दुःखी हुईं। किन्तु सिवाय दुःख करनेके दूसरा उपाय ही क्या था? कुछ ही दिनोंमें वह शान्त होगयीं और धीरे-धीरे अपने दुःखको विस्मृतिके बादलोंसे ढाँक देनेकी चेष्टा करने लगीं।

उन्होंने अपना सारा ध्यान जप-तप-नेम, पूजा-पाठ और ईश्वर-भक्तिमें लगाया। वह नित्य प्रभातकाल ४ बजे उठकर स्नानादिसे निवृत्त हो जातीं और आठ बजे तक पूजा-पाठमें बिता देती थीं। पश्चात् अपने महलके आँगनमें घोड़ेपर आरूढ़ होकर कुछ व्यायाम कर लेती थीं। ग्यारह बजे उनका पुनः स्नान होता था। इस बार वह

---

offcial aristocracy. while some hundreds of our troops take the place of the many thousands that every native chief supports. The little court disappears—trade Langwishes—the Capital dicasy, the people are impoverished—the Englishman flourishes, and acts like a sponge, drawing up riches from the bank of the Ganges and squeezing them down upon the banks of the Thames.

तुलसीपूजन करतीं और दान-धर्म आदिमें व्यस्त रहती थीं। बारह बजे भोजन होता था और २ बजे तक 'वाम-कुक्षि' किया करती थीं। पश्चात् ३ बजे उठकर अष्टगन्धसे कागजपर राम-नाम लिखतीं और उनकी ११०० गोलियाँ बनाकर उन्हें आँटेसे परिवेष्टित कर 'मछलियों को' खिलाती थीं। सायङ्कालसे रातके आठ बजे तक पुराणादि श्रवण करतीं तदुपरान्त पुनः स्नानकर इष्टदेवकी पूजा-आरती और प्रसाद ग्रहण करती थीं। रातके दस बजे तक उनकी दिनचर्या इस तरह नियम के साँचेमें ढली रहती थी। पश्चात् १० बजे सो जातीं। उनके घरकी सारी व्यवस्था उनके पिता मोरोपन्त ताम्बे करते थे।

इस तरह दैवके दिखलाये हुए दिनको मान देकर महारानी लक्ष्मी-बाई बड़ी वीरताके साथ सांसारिक माया-मोहसे अलिप्त होगयीं और पूर्ण वैराग्यवृत्तिसे अपना शेष जीवन व्यतीत करने लगीं। किन्तु दुर्दैवने फिर एक बार उनके शान्त हृदयको एक हल्का सा धक्का दे ही दिया। उनके दत्तक पुत्र आनन्दराव इस समय तक ७ वर्षके हो चुके थे और उनका यज्ञोपवीत संस्कार महारानीकी शान्त वृत्तिमें चिन्ताके बादल खड़े करनेका कारण बन गया। महारानी लक्ष्मीबाई अपने इस दत्तक पुत्रको प्राणोंसे अधिक चाहती थीं और उसीके ऐश्वर्यसुखके लिये सदा चिन्तित, व्यथित और प्रयत्नशील रहा करती थीं। उन्होंने झाँसीकी गद्दी प्राप्त करनेके लिये जो अथक परिश्रम किये थे, वह अपने लिये नहीं अपितु अपने इस दुलारे पुत्रके सुखके लिये ही। वह अपने पुत्रके दुर्भाग्यकी ओर देखकर मन ही मन कुढ़ा करतीं और दुखी होती थीं। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उसका यज्ञोपवीत संस्कार एक

राजपुत्रकी तरह बड़े ठाट-बाटसे हो। किन्तु उनके पास इतना रुपया कहाँ था कि वह अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकें। वह तो पूरी तरह लुट गयी थीं। उनका सर्वस्व हरण हो चुका था। कुबेरकी सम्पत्तिकी अधिकारिणी होनेपर भी वह इस समय रुपये-रुपयेके लिये तङ्ग थीं। उनकी इस व्यग्रताको देख, उनके निकटस्थ कार्यकर्त्ताओंने उन्हें यह सलाह दी कि अंग्रेज़ सरकारके पास स्वर्गीय महाराज गंगाधररावकी निजी सम्पत्तिमेंसे जो ६ लाख रुपये दामोदररावके नाम जमा हैं, उनमेंसे १ लाख रुपये इस कार्यके निमित्त माँग लिये जायँ।

महारानीको उनका यह विचार बहुत पसन्द आया। उन्होंने तत्क्षण झाँसीके कमिश्नरको उक्त आशयका एक प्रार्थनापत्र लिख भेजा। किन्तु कमिश्नर साहब भला क्यों इस सरलतासे हाथ आयी दौलत छोड़ देनेके ? उन्होंने उसके उत्तरमें लिख भेजा—'चूँकि, आपके पति स्वर्गीय महाराज गंगाधररावकी निजी सम्पत्तिपर उनके दत्तक पुत्र दामोदर गंगाधरका अधिकार है और 'नाबालिग' होनेके कारण उनकी वह अधिकार-प्राप्त सम्पत्ति अंग्रेज़ सरकारके पास जमा है, अंग्रेज़ सरकार जब तक कि वह 'बालिग' न हो जायँ, उसमेंसे एक कौड़ीभी उनकी नाबालगीमें उन्हें या उनके किसी रिश्तेदारको नहीं दे सकती। अंग्रेज़ सरकारके पास उनके ६ लाख रुपये जमा हैं अवश्य और वह उन्हें मय सूदके बालिग होनेपर मिलेंगे, किन्तु इस समय वैसा कोई प्रबन्ध नहीं किया जा सकता। हाँ, यदि आप रकम लेनाही चाहती हैं तो आपको उचित है कि आप शहरके चार सम्भ्रान्त एवम् माननीय सज्जनोंकी ज़मानत देकर कर्जके स्वरूपमें उसे प्राप्त कर सकती हैं।

लक्ष्मीबाईने अपनी तत्कालीन परिस्थिति एवम् भाग्यकी टेढ़ी चाल पर विचारकर उस शर्तको मान लेना ही उचित समझा। उन्होंने झाँसी के चार सज्जनोंकी ज़मानतें देकर १ लाख रुपये उधार ले लिये और अपने प्यारे पुत्र दामोदर गङ्गाधरका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूमधामसे किया।

बस, पाठकगण! यहीं महारानी लक्ष्मीबाईकी शान्तिमय जीवन-यात्राका अन्तिम भाग समाप्त हो जाता है।

*   *   *   *

सैनिक-विद्रोह—भरतके प्राचीन नरेशों एवम् साम्राज्योंके सम्बन्धमें हमारे यहाँ इस समय जितने भी ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें से अधिकांश ग्रन्थ एक दूसरेके विरोधी प्रकट हुए हैं। यदि किसी इतिहासज्ञने किसी एक राजा या साम्राज्यके विषयमें एक बात लिखी है, तो दूसरा इतिहासज्ञ उसे काटकर उस सम्बन्धमें कुछ और ही लिख बैठा है। इस तरह सौ इतिहासोंमें बहुत ही कम ऐसी बातें दृष्टिगोचर होती हैं, जो अधिकांश ग्रन्थोंमें एक-दूसरीसे मेल खाती हों। सब ग्रन्थोंमें एक ही बात एक ही तरहसे लिखी हुई तो मिलती ही नहीं।

ऐतिहासिक प्रश्नोंमें इस तरहका भेद पड़ जाना इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है कि भारतके अधिकांश इतिहास,—जो आज उपलब्ध है, [विदेशी यात्रियोंके लिखे हुए इतिहासग्रन्थोंको छोड़ कर] सत्यताकी कसौटीपर रखकर एवम् पक्षपातरहित दृष्टिसे नहीं लिखे गये हैं। देश के शिक्षित समाजको भलीभाँति ज्ञात है कि इस परम पुनीत स्वर्गभूमि पर समय-समयपर विभिन्न जातियोंका शासन रहा। यही नहीं अपितु, एकही समय एकही देशके विभिन्न प्रदेशोंमें विभिन्न साम्राज्य संस्था-

पित रहे। ऐसी दशामें जो इतिहासज्ञ जिस जातिके थे, उन्होंने अपनी ही जातिका पक्षपातकर अन्य जातिसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंके विषयमें अपने रुचिके अनुसार लिख मारा। उस समय भारतवर्षमें समय-समय पर कई विदेशी यात्री भी आये हुए थे। किन्तु वह इस देशके थोड़े दिनके मेहमान होनेके कारण उन्हें तत्कालीन साम्राज्योंकी अन्तस्थ बात नहीं मालूम हो सकी थीं और उन्हें जो भी त्रोटक सम्वाद मालूम हो सके थे अथवा उनकी सरसरी दृष्टिमें जो कुछ भी तत्कालीन भारतवर्षकी स्थिति पड़ी, उन्हींको देखते हुए उन्होंने भारतवर्ष तथा यहाँके शासन-कर्त्ताओं एवम् साम्राज्योंके विषयमें अपनी सम्मतियाँ अपने ग्रन्थोंमें प्रकाशित की हैं। अतः उनका मूल्यभी हमें उन इतिहास लेखकोंसे कुछही अधिक मालूम होता है, जो यहाँके साम्राज्योंके अन्तर्गत रहते रहे एवम् जातीयताके कारण पक्षपात-पूर्ण इतिहास लिखते रहे। किन्तु फिर भी वह त्रोटक सम्वादोंसे परिपूर्ण एवम् सरसरी दृष्टिमें सम्मुख आनेवाली वार्ता से भरे हुए होने के कारण हम उन्हें पूर्ण विश्वसनीय नहीं मान सकते।

रहे अन्य इतिहास! उनके विषयमें भी हम जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, पक्षपातकी मात्रासे अधिकतया भरे रहनेके कारण हम उन्हें भी अविश्वसनीय ही मानते हैं। मुसलमानी साम्राज्योंमें रहनेवाले मुसल-मान इतिहासज्ञोंने अपने साम्राज्य का पक्षपात कर इतर साम्राज्योंके विषयमें मनमाने रूपसे 'झूठ-सच' की खिचड़ी पकायी है। यही दशा हिन्दू साम्राज्यान्तर्गत हिन्दू इतिहासज्ञोंकी हुई है। किन्तु मुसलमानी साम्राज्यों एवम् हिन्दू साम्राज्योंके विषयमें अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंने अपने ग्रन्थोंमें लिखे हुए उन ऐतिहासिक विवरणोंको, जो उन्होंने यहाँ अपने

पैर जमाने के पूर्व लिखे हैं, इसलिये सच मानते हैं कि वह विदेशी थे। उक्त दोनों जातियोंमेंसे किसीभी जातिके नहीं थे। अतः उनके लेखोंमें पक्षपात होनेकी गुन्जाइश ही नहीं रह जाती। किन्तु फिर भी जबसे इन अंग्रेजों का सम्बन्ध यहाँके साम्राज्योंसे होता गया, इन्होंने यहाँकी विभिन्न राज्यव्यवस्थाओंमें हाथ डालना आरम्भ किया एवम् यह धीरे-धीरे यहाँ के साम्राज्योंको अपने अधिकार-छत्रमें लाने लगे, तबसे इस जातिके इतिहासज्ञोंने जो कुछ भी यहाँके साम्राज्योंके विषयमें लिखा है, (चाहे वह हिन्दू साम्राज्य हो चाहे मुसलमान) उस सम्बन्धमें हमारा विश्वास इनपर से उतनाही उठ जाता है जितना कि हम उक्त मुसलमान और हिन्दू इतिहासज्ञोंका लिख आये हैं। कारण, यह स्पष्ट है कि जब इस जातिका सम्बन्ध यहाँके साम्राज्योंसे हुआ, तब यह सम्भवनीय नहीं है कि इसमेंभी वह जातीय पक्षपात न आया हो जो हम अन्य इतिहासज्ञों में देखते हैं।

इस सरल स्पष्ट एवं मार्मिक रूपसे ध्यान देते हुए जब हम मुसलमान और अंग्रेजकालीन महाराष्ट्र साम्राज्य एवम् महाराष्ट्र राजपुरुषोंके इतिहासों एवम् जीवनचरित्रोंपर विचार करते हैं, तब हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय महाराष्ट्रके जिस तरह मुसलमान शत्रु थे उसी तरह अंग्रेज़ भी शत्रु थे। अतः इन दोनों जातियोंके इतिहासज्ञोंने उनके सम्बन्धमें लिखते हुए अवश्य ही अपनी-अपनी जातिका पक्ष समर्थन किया है यह तर्कसिद्ध बात है और यही कारण है कि आज महाराष्ट्र साम्राज्यका सच्चा इतिहास एवम् राजपुरुषोंके यथोचित जीवन चरित्र प्राप्त होना असाध्य हो गया है। हमें इस समय इस सम्बन्धमें

जो कुछ भी सहारा मिलता है, वह केवल महाराष्ट्रीय इतिहासज्ञों (यद्यपि वह भी पक्षपातपूर्ण दृष्टिसे लिखे हो सकते हैं—किन्तु अनुभव की बात अनुभवी ही बतला सकते हैं, इस दृष्टिसे—तथा कुछ ऐसे विद्वान् अंग्रेजोंके इतिहास ग्रन्थोंसे मिलता है, जिन्होंने निष्पक्षभावसे ऐतिहासिक दृष्टिसे हो, सत्यपर प्रकाश डालते हुये अपने ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु ऐसे इतिहासज्ञ भी बहुतही कम तथा उँगलियोंपर गिनने लायक हैं। इनके इतिहासोंमें यद्यपि बहुत कुछ सत्यताका अंश है तथापि कहीं-कहीं प्रमाणाभावके कारण एवम् प्रत्यक्षदर्शी न होनेके कारण स्थान-स्थानपर भूल होजाना असम्भव नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही महारानी लक्ष्मीबाईका जीवनचरित्र है। महारानी लक्ष्मीबाईकी जीवनीके आरम्भ की घटनाएँ यद्यपि बहुतेरे निष्पक्ष इतिहासज्ञोंके ग्रन्थोंमें एक दूसरे के लेखोंसे मिलती हैं, तथापि उनकी जीवनकी मध्यकी घटनाओं के सम्बन्धमें,—जो कि महारानीके जीवनचरित्रका एक महत्त्वपूर्ण भाग है, इन विद्वान्, निष्पक्ष और प्रख्यात इतिहासज्ञोंके इतिहास-लेख एक दूसरे से विभिन्न हो जाते हैं।

महारानी लक्ष्मीबाईके जीवनचरित्रके इस महत्त्वपूर्ण भागको लिखते समय बड़े-बड़े निष्पक्ष और धुरन्धर इतिहासज्ञोंने भारी भूलें की हैं। जिनके कारण इस प्रातःस्मरणीया अमर—आर्य महिलाके सम्बन्धमें बहुतेरे पूर्वीय और पाश्चात्य लोगोंकी धारणायें वृथा कलुषित होगयी हैं। यह विचार करनेकी बात है कि जो आर्य-महिला अंग्रेज सरकारको साक्षात् सत्यताका अवतार समझे, उसकी न्याय-नीति उदारता और मित्रतापर सर्वस्व लुट जानेपर भी दृढ़ विश्वास रखे, वह

राजद्रोह कैसे कर सकतो है ? किन्तु दैवदुर्विपाकसे अंग्रेज सरकारका उसे विद्रोही समझना एवम् तत्कालीन इतिहासज्ञोंका उसके जीवनचरित्र को उसी रङ्गसे रङ्ग देना, यह केवल उसकाही नहीं अपितु हम सारे भारत-वर्षीय हिन्दुओंका परम दुर्भाग्य है। महारानी लक्ष्मीबाईके जीवनचरित्र का मध्य भाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवम् पेचीली घटनाओंसे भरा पड़ा है। जिसकी आलोचना यदि मार्मिक भावसे और निष्पक्ष बनकर नहीं की जायगी तो तदन्तर्गत सत्यपर प्रकाश पड़ना दुःसाध्य ही नहीं, असम्भव भी है।

इतिहासज्ञोंको यह बात भली भाँति विदित है ही कि लार्ड डलहौसीने अपने शासनकालमें अपनी कुटिल नीतिकी बदौलत किस प्रकार एक-एक करके सतारा, नागपुर, तञ्जोर, झाँसी, अवध इत्यादि प्रान्तोंके देशी राजाओंको नारियल-सुपारी थमाकर उनके देश अपने शासनमें मिला लिये थे। उसके इस कपिन्यायसे उन प्रतापशाली नरेशोंके हृदय को कितना ज़बर्दस्त धक्का लगा था, यह सभों पर विदित है ही। उसने हिन्दू धर्मशास्त्रके अनुसार हिन्दू राजाओंके लिये हुए दत्तक पुत्रोंको अस्वीकार कर भारतकी सर्व साधारण जनतामें अंग्रेज़ सरकार के प्रति जबर्दस्त अविश्वास पैदा कर दिया था।

इस सम्बन्धमें यदि हम विशेषरूपसे लिखने बैठें तो सन्देह नहीं कि इस पुस्तकके अतिरिक्त "लार्ड डलहौसीकी स्वार्थी लालसा" नामक एक दूसरी पुस्तकका समावेश इसीमें होजाय और हमारे प्रकाशक महात्मा हमसे इस बातके लिये मुँह फुलाकर बैठ जायँ कि यह तो इन्होंने अच्छा 'अलिफ-लैलाका' ख़ासा पोथा लिख मारा। बाज़ारकी

मन्दी, कागज़की तेजी, छपाईका बोझ एवम् प्रकाशकोंकी इच्छा, इन चारों महाभूतोंको सम्हालते हुए आजकलके लेखकोंको अपनी लेखनी चलानी पड़ती है। अतः इनकी वक्रदृष्टिसे बचनेके अभिप्रायसे हम अपना यह विचार यहीं स्थगित कर देते हैं और लार्ड डलहौसी कालीन कुछ निष्पक्षपाती अंग्रेज इतिहासज्ञोंने अंग्रेज़ी राजनीतिके सम्बन्धमें जो सम्मतियाँ दी हैं उन्हींको हम ऐतिहासिक एवम् सत्य प्रमाण मान कर यहाँ उद्धृत कर देते हैं। इन अंग्रेज़ विद्वानोंने महारानी लक्ष्मीबाईसे सम्बन्ध रखनेवाली जटिल समस्याओंके सम्बन्धमें जो सम्मतियाँ दी हैं, उन्हें हम नीचे उद्धृत करते हैं।

1. In three of these instances, Satara, Nagpur and Jhansi, the Governor General not only terrified the native governing clases throughout India with the respect of a resistless centralization, but struck at the very root of Hindu religion and cut out of Hindu Law its highest and gentlest enactment.

—Dalhousie's Administration of British India.

२. द्वितीय बाजीरावके साथ किये हुए सन्धिपत्रके अनुसार, उनकी मृत्युके पश्चात् उनके दत्तक पुत्र नानासाहबको ८ लाख रुपयेकी पेन्शन मिलनी चाहिये थी। किन्तु अंग्रेज सरकार उस सन्धिपत्रको घोलकर पीगयी। नानासाहबने इस बातसे असन्तुष्ट होकर उस सम्बन्धमें लण्डन के कोर्ट आफ डायरेक्टर्सके पास लिखा। किन्तु उससे भी कुछ लाभ न

हुआ। लाचार नानासाहब प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर कानपुरके बलवेमें शामिल हो गये और बुरी तरह अंग्रेज़ोंको खेतकी मूलीकी तरह काटकर अपने दिलकी आग बुझाई। इस सम्बन्धमें "Dalhousie's Administration of British India" में लिखा है:—

"Cawnpur told in 1857, how a Hindu prince's heart regarded Lord Dalhouse's doctrine of such expedient eats."

३. ईस्वी सन् १८०२ में अंग्रेज़ सरकारने बाजीरावके साथ जो सन्धिकी थी उसका विवरण Empire in Asia में इस प्रकार है:—

"The treaty was to last while sun and Moon endureth. The day was soon to come when these eternal vows were to be pooh-poohed as mere dead flowers. But the original of the treaty from first to last stands in the handwriting of the Governer General. Peshawa and Satara have passed away, but these words of his will not pass away!"

४. लार्ड डलहौसीकी कृपाके कारण भारतवर्षमें अंग्रेज सरकारके प्रति जो असंतोष उत्पन्न हुआ था, उसके कारणोंके सम्बन्धमें Memorials नामक ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है:—

The chief causes of the popular dis-satisfaction with our rule were—the extinction of

the Native states and our consequent measures; the depression of the chiefs and heads of society, the resumption, or the conversion into life tenures, of hereditary rent-free tenures of land, or of hereditary interests connected with land or the land revenue; alienation of Zamindary lands for arears of revenue, or in satisfaction of civil decrees; the non-conferment of estates or honours for eminent services to the state; the want of conciliatory and confidential personal intercourse between our officers and the Native chiefs, heads of society and people etc., etc, etc.

इन प्रमाणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन भारतवर्षीय समाजके अन्तःकरणमें विदेशी शासनके प्रति जो असंतोष एवम् अविश्वास पैदा हुआ था उसका वास्तविक दोष उस समयके कुछ अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा देशमें प्रचलित की हुई कुटिल नीतिके मत्थेही पड़ता है। यदि इस सम्बन्ध में हमें कठोर सत्यका आश्रय लेकर लिखना पड़े तो हम निर्भीक होकर स्पष्ट शब्दोंमें यही लिखेंगे कि उस समयके कुछ अदूरदर्शी अंग्रेज अधिकारियोंकी स्वार्थ-लिप्सा एवम् कुटिल नीतिका ही यह भयङ्कर परिणाम हुआ था कि भारत जैसे शान्तिप्रिय, सहनशील, उदार, राजभक्त और विवेकशील देशमें विद्रोहकी आग भयङ्कर रूपसे प्रज्वलित हो गयी और उसकी गगनचुम्बी ज्वालाओंमें एक सहन-

शील-विवेकशील एवम् धर्म्मपरायण हिंदूरमणीका बलिदान होगया! उसके इस बलिदानका परिणाम ब्रिटिश राज्यको कैसा बुरा भोगना पड़ा यह आगे चलकर पाठकों पर विदितही होगा।

ईस्वी सन् १८५६ में लार्ड डलहौसी भारतमें किये हुए अपने काले कारनामोंका गट्ठर पीठपर बांधे विलायत लौट गये। उनके स्थानपर कोर्ट आफ डायरेक्टर्सकी ओर से लार्ड केनिङ्गसाहब भारतके गवर्नर जनरल बनाकर भेज दिये गये। उन्हें लार्ड डलहौसीने अपने शासनकालमें भारतवर्षमें प्रचलितकी हुई कुटिल नीतिका पूरा पता था और वह इस बातको भली भाँति जानते थे कि लार्ड डलहौसीने अपने काले कारनामोंको चरितार्थ कर भारतवर्ष जैसे शान्तिप्रिय प्रदेशमें अंग्रेज़ोंके विरुद्ध किस प्रकारका असन्तोष पैदा कर रखा था। यही कारण है कि उन्होंने भारतवर्षमें आनेके कारण पूर्व लण्डन स्थित कोर्ट आफ डायरेक्टर्सके सम्मुख स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि, "भारतवर्षमें लार्ड डलहौसीकी कुटिल नीतिका पुनः अनुसरण होनेसे अंग्रेज़ों की भारी हानि है। उन्होंने जिस कुटिल नीतिका आश्रय लेकर भारतीय समाजको दुखी किया हैं, उसके कारण भारतके राजनैतिक नभोमण्डलमें अंग्रेज़ों का नाश करनेवाला वह सर्वव्यापी मेघका टुकड़ा पैदा हो गया है, जो अब भी वही नीति चरितार्थ होनेसे शीघ्रही सारे राजनैतिक नभोमण्डल में फैल जायगा और अंग्रेज़ोंको साँस लेना कठिन कर देगा!" उनका वह विचार कितना ठोस और ठीक था, यह आगेके इतिहाससे स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि लार्ड केनिङ्ग अपने शासनकालमें भारतवर्षमें पूर्ण शान्ति बनाये रखना चाहते थे किन्तु उनके सूत्रधार, लण्डन स्थित कोर्ट

दोनों वीरवर भी अंग्रेज़ी शासनसे बड़े पीड़ित थे, अतः अवसर पातेही विद्रोहियोंमें शामिल हो गये। इस प्रकार जब उन दुखी नरेशोंको,–जो अंग्रेजोंकी कुटिल नीतिके कारण अपना सर्वस्व लुटा चुके थे विद्रोहियोंने अपना सहयोग करते देखा, तब तो उनकी हिम्मत और भी बढ़ गयी और उनके उठाए हुए विद्रोह आन्दोलनको भयङ्कर प्रकारका राजनैतिक रूप प्राप्त होगया।

धीरे-धीरे यह समाचार वायुवेगसे झाँसी भी पहुँच गया। उस समय झाँसीके अधिकारमें एक बड़ा तोपखाना एवम् बङ्गाल नेटिव इन्टफेन्टरीकी १२ वीं तथा इरेंग्युलर कैवेलरीकी १४ वीं पल्टनें थीं। इन दोनो सेनाओंके कर्त्ता-धर्त्ता भाग्य विधाता थे,–कप्तान डनलाप। उन्हें इस बातका पूरा विश्वास था कि, झाँसीकी सेना नितान्त शान्तिप्रिय और अनन्य राजभक्त है। वह कभी विद्रोहियोंमें शामिल न होगी। मई मासके आरम्भही से यद्यपि संयुक्त प्रान्तके अन्य सैनिक अड्डोंपर विद्रोह का रूप भयङ्कर होरहा था तथापि उसी माहकी १८ वीं तारीख तक झाँसीमें पूर्ण शान्ति विराज रही थी। उस सम्बन्धमें झाँसीके तत्कालीन कमिश्नर मि० स्कीनने अपने लेखमें स्पष्ट लिखा है कि 'झाँसीकी सेना बड़ीही राजभक्त और शान्तिप्रिय है। उसे मेरठ और दिल्लीके विद्रोहियों से हार्दिक घृणा है। झाँसीमें किसी प्रकारका उपद्रव होनेकी मुझे रत्तो-भर भी आशङ्का नहीं है।..........बुन्देलखण्डके छोटे-छोटे राज्योंके सम्बन्धमें भी वैसी आशङ्का रखना व्यर्थ है। क्योंकि इस समय बुन्देल-खण्डमें ओरछा, छत्रपुर और अजयगढ़की जो प्रमुख तीन रियासतें हैं, वहाँके नरेश अभी नाबालिग हैं तथा शेषकी व्यवस्था उत्तम प्रकारसे

कर दी गयी है। अतः मेरा विश्वास है कि इस प्रान्तमें कभी कोई झगड़ा-बखेड़ा नहीं उठ सकता और हमलोग यहाँ पूर्ण सुरक्षित हैं।"

इसके पश्चात् तारीख ३० मईके दिन उक्त कमिश्नर साहब पुनः लिखते हैं कि झाँसीमें अब भी शान्ति है। समस्त सैनिक अनन्य राजभक्त बने हैं। यही बात उन्होंने अपनी ३ री जूनकी चिट्ठीमें दोहारायी थी। किन्तु साथही यह लिख दिया कि गत सोमवारकी रातको यहांके कुछ ठाकुरोंने कोंच गांवपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया था। किन्तु यथा समय मैंने उसका समाचार पातेही उसकी सूचना कप्तानको दे दी। जिन्होंने तुरंत ही उस नगर की रक्षाके हेतु अपने कुछ सैनिक भेज दिये। उन्हें देखकर विद्रोही ठाकुर शान्त होगये। उन्होंने अपना विचार बदल दिया।' इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पत्रके अन्तमें यह भी लिख दिया था कि 'यद्यपि बहुतेरे लोगोंका यह कहना है विद्रोहकी आग सारे संयुक्त प्रान्तमें फैल गयी है तथापि मेरा विश्वास है कि झाँसी उससे नितान्त अछूताहै और यहां के लोग सरकारसे कभी विमुख नहीं हो सकते।'

कमिश्नर स्कीनकी यह चिट्ठियां उनके लिखे "Sepoy War" नामक ग्रन्थमें विस्तारके साथ छपी है। जिन्हें पढ़कर कोई भी नहीं कह सकता कि उस समय झाँसीकी सेनामें किसी प्रकारके क्रान्तिके भाव वर्तमान थे।

यदि न्याय की दृष्टिसे इसका कारण पूछा जाय तो सन्देह नहीं कि इस शान्तिकी मुख्य अधिष्ठात्री देवी थी महारानी लक्ष्मीबाई। उस समय आप सर्वस्व-विहीन होकर, एक जनसाधारण दुःखिनी विधवा

अबलाकी भाँति अपना शेष जीवन ईश्वरोपासना और परमार्थसाधनमें बिता रही थीं। आपकी सहनशीलता और राजभक्तिपर झाँसीके अखिल समाजका पूरा विश्वास था। यही कारण था कि उनके सच्चरित्र और आदर्श सहनशीलताको सामने रखते हुए झाँसीकी प्रजा शान्त थी और कमिश्नर साहबको वहाँ विद्रोहका कुछ भी भय न मालूम हुआ।

किन्तु होनहारको कौन टाल सकता है? अंग्रेज़ोंने तत्कालीन भारतीय समाजको जो कष्ट दिये थे, वह महारानी लक्ष्मीबाईकी अनुपम सहन-शीलताके कारण उन्हें भलेही विस्मरणीय हो गये हों, किन्तु सर्व साधारण समाजको तो वह अविस्मरणीय ही थे। यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाईकी संयमी वृत्तिको देखकर झाँसीके समाजने बहुत दिनों तक विद्रोहियोंका साथ नहीं दिया और वहांके अंग्रेज़ अधिकारियोंको यह विश्वास दिया कि वह शान्त एवम् राजभक्त हैं तथापि उसका वह संयम अधिक दिन तक न टिक सका। उसके हृदयमें अंग्रेज़ोंके काले कारनामोंके कारण एक बार जो प्रतिहिन्साकी आग सुलग चुकी थी वह शक्ति भर प्रयत्न करनेपर भी भीतर ही भीतर शान्त न हो सकी और उसका स्फोट ईस्वी सन् १८५७ के जून मासकी ४ थी तारीखको विद्रोहके रूपमें हो ही गया।

उस दिन झाँसीकी ७ वीं पैदल सेनाके अधिपति गुरुबख्शने 'स्टारफोर्ट' में प्रवेश किया तथा वहाँका सारा युद्धोपयोगी सामान (गोला-बारूद-बन्दूक आदि) अपने अधिकारमें कर अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया। कप्तान डनलापने यह समाचार पाकर अपनी बची-बचाई सेना लेकर 'स्टारफोर्ट' पर चढ़ाई

करनी चाही, किन्तु वहाँका सारा सामान एवम् धन विद्रोहियोंके अधिकारमें पहलेही से चले जानेके कारण तथा वहांके पहरेदारों तक के विद्रोही बन जानेके कारण उनकी हिम्मत पस्त होगयी और वह चढ़ाई का विचार छोड़कर अपने जातभाई एवम् बालबच्चोंको लिये दिये छावनीके बाहर होगये। शहरमें पहुँचकर उन्होंने कमिश्नर मि० स्कीनसे भेंट की तथा उनकी आज्ञानुसार क़िलेमें जाकर पनाह ली। उस समय कप्तान डनलापने अपनी सहायताके लिये नौगांवकी छावनीमें एक पत्र लिखा था। यही पत्र झाँसीके विद्रोहका एकही प्रमाण रह गया है। जिसके अतिरिक्त अंग्रेज़ोंके पास इस सम्बन्धमें दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। अस्तु,

दूसरे दिन अर्थात् ईस्वी सन् १८५७ के जून मासकी ५ वीं तारीख को सबेरे कप्तान स्कीन और मि० डार्डन झाँसीके डिप्टी कमिश्नर मि० डनलापसे मिलनेके हेतु छावनी पहुँचे। वहाँ उन लोगोंमें बड़ी देर तक गुप्त परामर्श होता रहा। पश्चात् दोनों क़िलेमें वापिस लौट गये। उनके चले जाने पर मि० डन्लापने छावनीमें अपने लिये गोले-बारूद की व्यवस्था की एवम् अन्तमें अपना लिखा हुआ पत्र रवाना करनेके हेतु पोस्टआफिस चले गये। वहां उनकी मि० रेलरसे भेंट हो गयी। उन्हें लेकर वह 'परेड' पहुँचे। किन्तु उन दोनोंके वहाँ पहुँचते ही उनके खूनकी प्यासी बारहवीं पैदल सेनाने उन्हें अपनी गोलियोंका शिकार बना डाला। उनकी कुटिल आत्मा विद्रोहियोंकी कठोर गोलियाँ खाकर चल बसीं। विद्रोहियोंने इन अंग्रेज़ अधिकारियोंको मारकर बड़ा आनन्द मनाया और किलेमें शरण लिये हुए अंग्रेज़ोंका बध करने आगे बढ़े।

उस समय जो युरोपियन एवम् युरेशियन अधिकारी अपने प्राण बचानेके हेतु क़िलेमें शरण लिये थे, उनकी संख्या प्रायः ४५ के लगभग थी। मि० स्कीनसाहबने उन्हें गोला-बारूद-बन्दूक इत्यादि सारे युद्धोपयोगी सामान पहिलेही से दे रखे थे। उन लोगोंने विद्रोहियोंके आक्रमणके भयसे क़िलेके प्रवेशद्वारोंको मज़बूतीके साथ बन्द कर लिया था। जब विद्रोही छावनीको नष्ट-भ्रष्ट कर किले पर दौड़ गये तब उन्होंने बड़ी मुस्तैदीके साथ उनसे मोर्चा लिया। किन्तु विद्रोहियों की समुद्रकी तरह बढ़ी हुई सेनाके सन्मुख यह मुट्ठी भर अंग्रेज़ कर ही क्या सकते थे? उन्हें अपना भविष्य स्पष्ट दीख पड़ता था। इसी हेतु उन्होंने बहुत कुछ विचार कर महारानी लक्ष्मीबाईसे सहायताकी याचना करनेका मनसूबा बांधा। इस कार्यके लिये उनकी ओरसे मि० स्काट और पर्सेल नामक बन्धुद्वय महारानीके पास दूत बनाकर भेजे गये। किन्तु दुर्भाग्यवश वह दोनों महारानीके पास पहुँच न सके और मार्गहीमें विद्रोहियों द्वारा मार डाले गये।

इसी बीच मि० स्कीनने नागोद, ग्वालियर आदि स्थानोंमें सेना भेज देनेके लिये लिखा था। किन्तु वह सेनाएँ पहुँचनेके पूर्वही अर्थात् तारीख ७ जूनके दोपहरको विद्रोहियोंने बड़े ज़ोर-शोरसे किलेपर धावा बोल दिया। उस धावेका समाचार पाकर भीतर छिपे हुए अंग्रेज़ अधिकारियोंकी घिग्घी बँध गयी। किन्तु प्राणरक्षाका अन्य कोई उपाय न देखकर वह जान लड़ाकर मुक़ाबिलेपर मुस्तैद हो गये। कहा जाता है कि, उससमय उन अंग्रेज़ अधिकारियोंकी औरतें अपने शौहरों को बन्दूकें भर-भरकर देती थीं तथा अधिकारीवर्ग उन्हें ले लेकर दनादन

गोलियाँ चला रहा था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस समय उन अधिकारियोंके मनसे प्राणोंका सारा मोह दूर होगया था और वह जान लड़ाकर विद्रोहियोंका मुकाबिला करनेपर अड़े थे। उनके बन्दूकोंसे होनेवाली गोलियोंकी वृष्टिके सामने विद्रोही सेनाको आगे बढ़ना कठिन होगया। तथापि मनुष्यबल अधिक होनेके कारण वह बड़ी दृढ़ता और साहसके साथ अपने स्थानपर अड़ी रही और जब भी अवसर मिलता आगे बढ़ती रही। इतना होनेपर भी अंग्रेज़ोंकी गोलियोंके सामने उसे अधिक देर तक डटे रहना अशक्यसा मालूम हुआ और वह क़िलेमें प्रवेश करानेवाले किसी गुप्तद्वारका अनुसन्धान करनेका उद्योग करने लगी। विद्रोहियोंके भाग्यसे उसी समय झाँसीके असिस्टेन्ट सर्वेयर मि० पाविस कुछ ऐसे सैनिकोंको जिन्हें वह विश्वास-पात्र समझते थे, अपने साथ लिये क़िलेमें पहुँचे। वही सैनिक किलेमें प्रवेश होतेही अंग्रेज़ोंसे फिरन्ट होगये और विद्रोहियोंसे मिलकर उन्हें किलेमें प्रवेश करनेका गुप्तमार्ग दिखलाने लगे। मि० पाविसको इस भयङ्कर भूलपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह अपना अन्तिम प्रयत्न सफल करनेकी आशासे उन सैनिकोंको मना करनेके हेतु उनके पास पहुँचे। किन्तु ज्योंही उनका वहाँ पहुँचना था, त्योंही उन विद्रोहियोंमें से एकने उनकी गर्दन धड़से अलग कर दी।

इसमें सन्देह नहीं कि उस समय विद्रोहियोंकी सेना भी बड़ी वीरताके साथ लड़ रही थी। उसने अवसर-अवसर पर एक-एक कदम आगे बढ़कर किलेके तटतक अपनी पहुँच करली ली और अन्तमें क़िले का दरवाज़ा खोलनेका भी उद्योग किया। किन्तु इसमें उसे सफलता न

मिल सकी। क़िलेके भीतर छिपे हुए मि० गार्डन बड़ी सुदृढ़ताके साथ एक खिड़कीकी राहसे विद्रोहियोंपर गोलियाँ चला रहे थे। विद्रोहियों ने उन्हें सबसे ज़बर्दस्त पावा देख उन्हींकी ओर अपना मोर्चा घुमाया। वह लोग मि० गार्डनके चेहरेको भली भाँति पहिचानते थे। उनमें एक विद्रोही बड़े प्रखर वेगसे मि० गार्डनपर तीरोंकी वृष्टि करने लगा। जिसके कारण मि० गार्डनका हाथ कुछ ढीला पड़ गया और वह उसे पुनः सख्त करनेकी सोचही रहे थे कि एक तीर आकर उनके कलेजेको चीरता हुआ पार निकल गया। वह रक्तरञ्जित होकर ज़मीनपर गिर पड़े। कुछही देरमें उनका प्राण पखेरू उड़कर सर्वदाके लिये इस लोकसे बिदा हो गया।

अंग्रेज़ लोग उन्हें इस आकस्मिक ढंगसे धराशायी हुए देख भयके मारे व्याकुल हो उठे। उनकी रही-सही हिम्मत भी पस्त होगयी। मेम-समुदायमें अजब हाहाकार मच गया। ठीक इसी समय उनके पास का गोला-बारूद आदि युद्धोपयोगी सामान शेष होगया। विद्रोहियोंका सरदार कालेखां तथा अहमदहुसैन तहसीलदारने इस युद्ध में भारी पराक्रम दिखलाया और क़िलेका अधिकांश भाग अपने हस्तगत कर लिया। अंग्रेज़ लोग सब तरहसे निराश होगये और उन्होंने सन्धिकी प्रार्थना की।

तारीख ८ जून सन् १८५७ ईस्वीके दिन झाँसीकी विद्रोही सेनाने अपूर्व आनंद मनाया। उसकी ओरसे हकीम सुलेमान नामक एक मुसलमान रईस प्रतिनिधिके रूपमें मि० स्कीनके पास गया। मि० स्कीन उसे देख, क़िलेका दरवाज़ा खोल बाहर निकल आये और बड़े ही विनम्र

होकर बोले कि हमें कुछ नहीं चाहिये । हम अभी झाँसी छोड़कर जानेको तैय्यार हैं । कृपया आप हमें प्राणदान देकर समुद्रकी ओर जाने दीजिये ।' हकीमसाहबने इसपर अत्यन्त सहानुभूति दिखलाते हुए और 'कुरान शरीफ' की कसम खाते हुए कहा कि, 'यदि आप लोग हथियार रखकर क़िला खाली कर देंगे तो आपको किसी तरहकी तकलीफ़ नहीं दी जायगी और आप लोग छोड़ दिये जायेंगे ।' संकटग्रस्त अंग्रेज़ हकीमसाहब के उक्त आश्वासन पर विश्वास कर गये । उन्होंने अपने हथियार क़िलेमें रख दिये और निहत्थे बनकर विद्रोहियोंके सामने खड़े हो गये । उन्हें इस तरह विवश दशामें सामने देखकरभी प्रतिहिन्साके कारण पशु बने विद्रोहियोंको दया न आयी । वह लोग 'दीन-दीन' चिल्लाकर अंग्रेज़ोंपर टूट पड़े और उन्हें कैद कर सारे शहरमें घुमाते हुए 'जोगिनबाग' की ओर ले गये । शहर के बाहर पहुँचतेही विद्रोही सेनाके कुछ सैनिकों ने अपने सरदार कालेखाँकी आज्ञा सुनाई कि 'वह सारेके सारे अंग्रेज मारे जाने चाहिये ।'

अपने सरदारकी आज्ञा पाकर झाँसीके जेल दारोगा बक्शीश अलीने मि० स्कीनका सिर धड़से अलग कर दिया । पश्चात् अन्य विद्रोहियोंने एक-एक करके सारे अँग्रेज़ोंको खेतकी मूलीकी तरह काट डाला ।*

---

* इस सम्बन्धमें इतिहासज्ञोंमें बहुतसे मतभेद हो गये हैं । अंग्रेज इतिहासज्ञोंने अपने ग्रन्थोंमें लिखा है कि झाँसीमें विद्रोहियोंने जो अंग्रेज़ मारे थे उनकी संख्या ६० थी । इसके अतिरिक्त कुछ और अंग्रेज़ क़िलेकी रक्षा करते समय छावनीमें मारे गये थे । कप्तान पिङ्क,

महारानी लक्ष्मीबाईका शासन—इस परिच्छेदमें हम इस बातका निर्णय करना चाहते हैं कि गत परिच्छेदमें वर्णित सिपाही विद्रोहमें महारानी लक्ष्मीबाई का हाथ था या नहीं। इस सम्बन्धमें कतिपय अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंने भारी भूलकी है। तत्कालीन अंग्रेज़ अधिकारियोंने महारानी झाँसीके सम्बन्धमें प्रायः एकसी बातें लिखी हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि उक्त महारानीका हाथ उक्त विद्रोहमें अवश्य था और उन्हींकी आज्ञानुसार झाँसीमें अंग्रेज़ोंकी हत्याकी गयी थी। किन्तु उनके इन लेखोंको विना किसी अधारके सत्य मान लेना, विवेचन और अन्वेषण शक्तिका महत्त्व निःशेष कर देने के बराबर है। यद्यपि महारानीके सम्बन्धकी यह छानबीन करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और कठिन है तथापि उनके प्रति इन अंग्रेज़ ग्रन्थकारोंने जो लाञ्छन लगाये हैं, वह कहाँ तक सत्य है इसका अनुसन्धान करना भी हमारे लिये अनिवार्य कार्य है। अतः हम उन * अंग्रेज़ ग्रन्थकारोंने महारानी लक्ष्मीबाईपर जो दोष लादे हैं उन्हें आगे रखकर पश्चात् उस संबन्धमें विवेचन करते हुए इस बातको खोजनेकी चेष्टा करेंगे कि उनमें कहाँ तक सत्य है।

हत्या किये गये अंग्रेज़ों की संख्या ६७ बतलाते हैं। जबलपुरके मेजर अरिकंनके हिसाबसे वह संख्या ७६ होती है और इन्दौरके लेखमें यह लिखा मिलता है कि उस हत्याकाण्डमें ७५ मनुष्य, २३ बच्चे और १६ स्त्रियाँ मारी गयीं थीं।

* इस सम्बन्धमें "The Indian Empire" नामक ग्रन्थमें राबर्ट मान्टगोमरी मार्टिनने महारानी लक्ष्मीबाईको उद्देश्यकर लिखा है:—

तत्कालीन अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंमें से अधिकांश लोगोंका यह कहना है कि "महारानी लक्ष्मीबाईके हृदयमें अंग्रेज़ोंके प्रति ओत-प्रोतरूपसे

"She was a heathen, the forgiveness of injuries was no article in her creed; and believing herself deeply injured by the infraction of the Hindu Laws of adoption and inheritance, she threw aside every consideration of tenderness for sex or age, and committed herself to a deadly struggle with the supreme Government by an act for which, as she must have wellknown her own life would, in all human probability, pay the forfeit." राबर्ट मार्टिन महोदयने उक्त लेखमें रानीको मूर्तिपूजक बतलाकर जो विष उगला है, उसे पढ़कर बड़ी हँसी आती है। हम नहीं समझ सकते कि यह महात्मा किस अधिकारसे हिन्दू-धर्म्मपर टीका टिप्पणी करने पर तुल गये। क्या यह हिन्दू धर्म्मतत्वोंके पूर्ण ज्ञाता हैं? क्या यह कह सकते हैं कि हिन्दू धर्म्ममें क्षमा है ही नहीं? क्या अंग्रेज़ लोग, जो अपने को ईसामसीहके अनुयायी बतलाते हैं हमें शपथपूर्वक कह सकते हैं कि वह अपने धर्म्मग्रन्थ (बाइबिल) की आज्ञानुसार पूरे क्षमाशील हैं? यदि नहीं, तो उक्त राबर्ट मार्टिनका महारानी लक्ष्मी-बाई के प्रति इस प्रकारका दोष लगाना सरासर पक्षपातपूर्ण है इसमें संदेह नहीं। राबर्ट मार्टिन ने अपनी थोथी, पक्षपातपूर्ण और प्रगल्भ कल्पनाओं के कारण महारानी पर जिस प्रकार मनमाने आक्षेप किये हैं,

द्वेष भरा था। जबसे उनका सर्वस्व अंग्रेज़ सरकारने अपने हाथमें कर लिया तबसे वह बुरी तरह अंग्रेज़ों से जल रही थीं और इस बातका अवसर ढूँढ रही थीं कि वह दिन कब आता है, जब वह अपने हृदयमें सुलगी हुई प्रतिहिंसाकी प्यास शमन करेंगी। निदान गत परिच्छेदमें

उसी प्रकार उसके अन्य जात भाइयोंने भी महारानीके प्रति व्यर्थ विष उगला है। उदाहरणार्थ मि० मेलिसन साहब का लेख पढ़िये। उन्होंने अपने 'History of the Indian mutiny' नामक ग्रन्थमें लिखा है:—

"British Government regarded her anger and her remonstrances with careless indifference. They did what was even worse. They added meanness to insult. On the confiscation of the State, they had granted to the widow Rani a pension of 6000 a year. The Rani had first refused but had ultimately agreed to accept this pension. Her inclination may be imagined when she found herself called upon to pay out a sum which she regarded as a mere pittance, the debts of her late husband...... Other grievances such as the slaughter of kine amid a Hindu population and the resumption of grants made by formal rulers for the support

वर्णित सैनिक-विद्रोहके समय उन्हें वह अवसर मिल ही गया। वह विद्रोहियोंसे पूरी सहानुभूति रखती थीं और उन्हें सहायता देती थीं। उन्होंने विद्रोहियों की उस भयानक ज्वालामें अपनी प्रतिहिंसाकी रोटी खूब सेंक ली। वह विद्रोहियों से मिल गयीं और उनकी सहायक बनकर भीषणरूपसे अंग्रेज़ोंके खूनसे अपना हाथ रङ्गने और अपने अन्तःकरणमें लगी हुई क्रोध की ज्वाला शान्त करने लगीं"। किन्तु समझमें नहीं आता कि इन अंग्रेज़ोंका यह कथन क्योंकर सत्य माना जाय जबकि इन्होंने उस सम्बन्धमें कोई प्रत्यच प्रमाण नहीं दिया है! महारानी की पेन्शन तथा उनके स्वर्गीय पति गङ्गाधररावके कर्जके विषय में जो बातें इन लेखकोंने लिखी है, वह विल्कुल बेसिर-पैरकी हैं—उनमें सत्यका अंश भी नहीं है। उन्होंने न तो अंग्रेज़ सरकारसे एक पैसा पेन्शनही ली और न उनके पति गङ्गाधररावपर एक पैसा कर्ज ही रहा। महारानी लक्ष्मीबाईपर इन अंग्रेज ग्रन्थकारों ने जो दोष

---

of Hindu temples, whilst formig discontents of the population with their change of masters, formed subject for further remonstrance; but the personal indignity was that which rankled most deeply in the breast of this high-spirited lady, and made her hail with gratitude the symtoms of disaffectin which, in the early part of 1857, began to appear amongst the native soldiers of the hated English."

लगाये हैं, वह सप्रमाण नहीं हैं। ऐसी दशामें जब इन ग्रन्थकारोंकी लिखी हुई प्रत्येक बात की जांच की जाती है तब यही स्पष्ट होता है कि उनके लिखे इतिहासोंके सत्य होनेपर भी उन्होंने जो-जो दोष महारानी पर लगाये हैं, वह बिल्कुल प्रमाणशून्य होनेके कारण अविश्वसनीय हैं।

हाँ, इस सम्बन्धमें हम केवल इतनाही मान सकते हैं कि उस समय झाँसीमें बहुतसी बातें ऐसी हो गयी थीं जिनका सम्बन्ध विद्रोह से हो सकता है। किन्तु जब उस सम्बन्धमें प्रत्यक्ष प्रमाणोंका ही अभाव है तब केवल तदानुषङ्गिक बातोंपर ही ज़ोर देकर काकतालीय न्यायसे महारानी लक्ष्मीबाईको उनके साथ जोड़ देना एवम् उनपर झांसीमें विद्रोह मचानेका अपराध मढ़ना नितान्त अनुचित और अप्रशस्त है। इस सम्बन्धमें इतिहासोंमें जो प्रमाण मिलते हैं, उनसे यही स्पष्ट होता है कि महारानी लक्ष्मीबाई झाँसीके सैनिक विद्रोहमें कभी सम्मिलित नहीं थीं। परञ्च उन्होंने उल्टे उस समय अंग्रेजोंकी रक्षा एवम् सहायता ही की थी।

झाँसीके कमिश्नरकी रिपोर्टसे यह ज्ञात होता है कि, ईस्वी सन् १८५७ की २ री जून तक झाँसीमें 'विद्रोह' की आशङ्का भी नहीं पायी जाती थी तथा कमिश्नर साहब स्वयम् झाँसीकी प्रजा एवम् महारानी लक्ष्मीबाईको पूर्ण शान्त और राजभक्त समझते थे। उन्हें नगरके किसी भी नागरिकपर कोई सन्देह न था। जिस समय झाँसीमें अकस्मात् विद्रोहके चिह्न दिखलायी देने लगे उस समय कप्तान गार्डन स्वयम् महारानी लक्ष्मीबाईके पास गये और उन्होंने महारानीसे प्रार्थना की थी कि, यदि भविष्यमें अंग्रेज़ों पर विपत्ति आजाय तो वह

उनकी सहायता करें एवम् झाँसीको प्रजाको सुरक्षित रखनेमें उनकी मदद करें।

इस बातको स्वीकार कर महारानी लक्ष्मीबाईने उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया था कि इस समय हमारे पास न तो युद्धोपयोगी अस्त्र-शस्त्र ही रह गये हैं, और न शूर-वीर योद्धागण हो। ऐसी परिस्थितिमें यद्यपि मेरी सहायताका आपको उचित उपयोग हो सकेगा, इसका मुझे संदेह है तथापि प्रार्थी होकर आये हुए सज्जनको विमुख बनाकर भेजना आर्य-धर्म्म विरुद्ध है। इस दृष्टिसे एक कर्त्तव्यके नाते मैं आपकी सहायता अवश्य करूँगी और अपनी शक्तिभर इस बातकी चेष्टा करूँगी कि मेरी तुच्छ सहायतासे आपको सहायता प्राप्त हो जाय।"

इस आदर्श उत्तरको सुनकर मि० गार्डनसाहब बड़े प्रसन्न अन्तः-करणसे अपने बङ्गलेपर पधारे। दूसरे दिन वह पुनः महारानीके पास पहुँचे और अत्यन्त विनम्र बनकर बोले कि 'हम लोगोंकी जान इस समय भयङ्कर संकटमें है। समझमें नहीं आता कि भविष्यमें हमारा क्या होनेवाला है। किंतु, चूंकि हम लोग पुरुष हैं, वीरताके साथ उस संकट से जूझने के लिये तैयार हैं। किन्तु हमें चिंता इसी बातकी है कि हमारे परिवार (बाल-बच्चे) की क्या व्यवस्था की जाय। यदि महा-रानी उदार होकर उनकी रक्षाका भार अपने सिर लेंगी और उन्हें आश्रयमें रख लेंगी तो हम आपके इस उपकार को कभी नहीं भूलेंगे।

महारानी लक्ष्मीबाईका हृदय मि० गार्डनकी उक्त बातें सुनकर दयार्द्र हो उठा। उन्होंने मि० गार्डनकी प्रार्थना स्वीकार करली और अंग्रेज़ोंके सारे परिवारको अपने आश्रयमें बुला लिया। अंग्रेज़ोंकी औरतें

तथा बाल-बच्चे महारानी लक्ष्मीबाईके आश्रयमें रहने लगे। किन्तु उधर विद्रोहियोंने ज्योंही अंग्रेजोंको छावनीसे भगा दिया एवम् नगरमें भी स्थान-स्थान पर विद्रोहकी चिनगारियाँ छूटने लगीं त्योंही अंग्रेज बड़े घबड़ा गये और अपने बाल बच्चों तथा औरतोंको किलेमें लेगये। उस समय भी महारानी लक्ष्मीबाई उन्हें बराबर गुप्तरीतिसे धैर्य्य देती रहीं और उनको खानेके लिये तीन दिन तक बराबर (जब तक सम्भव हो सका) तीन मन गेहूँके आटेकी रोटियाँ किलेमें भेजती रहीं। उन्होंने किलेमें रहनेवाले अंग्रेजोंकी रक्षाके लिये अपनी शक्ति भर कोई बात उठा नहीं रखी।

क्या यह प्रमाण महारानी लक्ष्मीबाईका विद्रोहियोंसे पृथक् रहना एवम् अंग्रेजोंका सहायक रहना नहीं साबित करता ? इससेभी अधिक दृढ़ प्रमाणकी आवश्यकता हो, तो वह भी तत्कालीन झाँसीके हत्याकाण्डसे बचे हुए मि० मार्टिन नामक एक अंग्रेजने महारानी लक्ष्मीबाईके सुपुत्र दामोदररावको लिखे हुए एक पत्रके रूपमें, जो उन्होंने ईस्वी सन् १८८९ के अगस्त मासकी २० वीं तारीखको लिखा था, मिलता है। *

---

* "Your poor mother was very unjustly and cruelly dealt with—and no one knows her true case as I do. The poor thing took no part whatever in the massacre of the European residents of Jhansi in June 1857. On the contrary she supplied them with food for two days after they had

इससे यह बात निर्विवाद हो जाती है कि झाँसीके विद्रोहके समय महारानी लक्ष्मीबाई विद्रोही नहीं, अपितु अंग्रेज सरकारकी सच्ची शुभाकांक्षिणी एवम् सहायक थीं। उनपर विद्रोहका दोष लगाना कतिपय अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंका सरासर अन्याय है। अस्तु,

झाँसीके विद्रोही सैनिक उस समय साक्षात् दानव बन गये थे,

---

gone into the Fort-got 100 match lock men from kurrura, and sent them to assist us. But after being kept a day in the fort, they were sent away in the evening. She then advised Major Skene and captain Gordon to fly atonce to Dattia and place themselves under the Raja's protection, but this even they would not do, and finally they were all massacred by our own troops"—

उक्त पत्र ऐसे अंग्रेजका है, जो झाँसीके वद्रोहके समय वहां स्वयम् उपस्थित था। अतः उसका यह लेख क्या साबित नहीं करता कि महारानी लक्ष्मीबाईका उक्त 'विद्रोह' में कोई हाथ नहीं था अपितु वह बराबर अंग्रेजोंकी ही सहायक थीं। यदि इतने पर किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता हो तो सुप्रसिद्ध इतिहास मि० 'के' के लेखको पढ़िये—

" I have been informed, on good authority that none of the Rani's servants were present

इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने जो हत्याकाण्ड एवम् उपद्रव मचा रखा था, वह साक्षात् हिंस्रक पशुको भी लज्जित करनेवाला था। उनकी रक्तपिपासा एवम् धनतृष्णा इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि उन्होंने झाँसीका किला जीत लेनेके पश्चात् अपना मोर्चा महारानी लक्ष्मीबाईके राजमहल की ओर घुमाया। वह महारानीका राजमहल घेरकर खड़े होगये और उनसे ३ लाख रुपये माँगने लगे। उनका वहांसे दिल्लीको ओर अग्रसर होनेका विचार था तथा राहखर्चका कारण बतला कर उन्होंने महारानी के सामने यह मांग पेश की थी। महारानी लक्ष्मीबाईने उन्हें बहुतेरा समझाया, अपनी दीनावस्था उनके सामने प्रकटकी, अपनी विवशता एवम् सर्वस्व हरण होनेकी कथा दोहरायी किन्तु उससे उन दानवोंका हृदय ज़रा भी न पिघला और वह अपने स्थान पर अड़ेही रहे। महारानी लक्ष्मीबाईने अन्य कोई उपाय न देखकर उन्हें अपने शरीरके सारे आभूषण जिनका मूल्य १ लाख रुपया था, दे दिये। वह उस अतुल सम्पत्तिको पाकर बड़े प्रसन्न हुए और ऊँचे स्वरमें यह कहते हुए—'खल्क खुदाका, मुल्क बादशाहका अमल महारानी लक्ष्मीबाईका' दिल्लीकी ओर रवाना होगये।

---

on the occasion of the massacre. It seems to have been mainly the work of your own old followers. The irreguler Cavalary issued the bloody mandate and our Gaol Daroga was foremost in the buchery."

उस समय दुर्भाग्यवश झाँसीका राज्यप्रबंध देखनेके हेतु एक भी अंग्रेज का बच्चा जीवित नहीं था। जिसे देखकर महारानी लक्ष्मीबाईने भविष्य प्रबंधके विचारसे अपने यहाँके फौजदारी विभाग के अधिकारी पण्डित गोपालराव लघाटे, माल-विभागके अधिकारी एहसान अली एवम् कमिश्नरीके अधिष्ठाता इन सब बड़े-बड़े सरकारी कर्म्मचारियों को अपने पास बुलाया तथा उनके सामने भविष्यत् प्रबंधके विषयमें चर्चा चलायी। उन लोगोंमें जो बातें हुईं उनका सारांश यह था कि झाँसीके पड़ोसी सागरके अंग्रेज़ अधिकारियोंको झाँसीमें विद्रोहकी चेष्टा होनेका समाचार भेज दिया जाय। जिसमें वह सतर्क होकर पहिलेहीसे सागरमें शांति बनाये रखनेकी चेष्टा एवम् अपनी रक्षा कर सकें तथा झाँसीकी भविष्यत् व्यवस्थाके संबन्धमें भी अपनी राय दें। निदान यही विचार सर्व सम्मतिसे स्थिर हुआ और पं० गोपालराव लघाटेने इस आशयका एक पत्र लिखकर तत्क्षण सागरके कमिश्नरके पास भेज दिया। उनका यह पत्र उस समय सागरके अंग्रेज़ोंको बड़ाही उपयोगी सिद्ध हुआ। उस पत्रके कारणही सागरके अंग्रेज़ अधिकारी अपने यहाँ पूर्ण शान्ति बनाये रखनेमें समर्थ हो सके। झाँसीके कमिश्नर साहबने महारानी लक्ष्मीबाईको लिख दिया कि जब तक झाँसीमें राजकाज सम्हालनेके हेतु कोई दूसरा अधिकारी नहीं पहुँचता तब तक झाँसीकी सारी राज्यव्यवस्था महारानी साहब ही देखें।

किन्तु दुर्भाग्यका विषय तो यह था कि उस समय महारानी लक्ष्मीबाईके पास राज्य-व्यवस्था देखनेके हेतु कोई राजनीतिचतुर एवम् सुदक्ष प्रबन्धक नहीं था। उनके प्राचीन राज्यकर्मचारी राज्यके ख़ारिज

होतेही झाँसी छोड़कर बाहर चले गये थे। यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाई स्वयम् बड़ी बुद्धिमती, न्याय-नीति-निपुणा एवम् धुरन्धर कर्त्तव्य-शालिनी रमणी थीं तथापि थीं तो वह अबलाही। वह अपनी कुशाग्र बुद्धिकी बदौलत राज-काज सम्बन्धी जो बातें निश्चित करती तथा अत्यन्त मनन करनेके पश्चात् जो आज्ञायें प्रकाशित करती थीं उनका पालन उनका आश्रित एवम् अधीनस्थ समाज उनकी इच्छानुसार नहीं कर सकता था। यदि उनके पास उस समय सुदक्ष, चतुर एवं राजनीतिनिपुण सहायक होते तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि वह अपनी कुशाग्र बुद्धिकी बदौलत महारानी लक्ष्मीबाईके सद्-व्यवहार, राजभक्ति एवम् शुद्धान्तःकरणका सिक्का भारत सरकारके हृदयपर जमा देते और उसकी धारणा महारानीके प्रति कभी बुरी न होने देते। यदि प्रसङ्गवशात् वह हो भी जाती तो वह अपने उद्योगसे उसे तत्क्षण सुधार देते। किन्तु दुर्भाग्यवश महारानी लक्ष्मीबाईके पास वैसे व्यक्तियोंका बिल्कुलही अभाव था। उनके सान्निध्यमें, उनके पिता मोरोपन्त ताम्बे, लक्ष्मणराव बाण्डे आदि जो कुटुम्बीजन थे उन्हें राजकाज सम्बन्धी कोई अनुभव न था। उस समय झाँसीके दरबारमें जो नवीन लोग भर्ती हुए थे उनमेंसे अधिकांश लोग ओरछा-रियासतके थे। यह लोग कट्टर राजद्रोही, स्वार्थी एवम् अनुभवहीन साबित हो चुके थे। महारानी लक्ष्मीबाईके कुटुम्बी-जनोंके सम्बन्धमें ऊपर लिख ही आये हैं कि वह राज्यप्रबन्ध और जबाबदेहीके नामसे बिल्कुलही कोरे थे। महारानी लक्ष्मीबाई अपने दरबारियों एवम् आश्रितोंकी अकर्मण्यतासे भलीभाँति परिचित नहीं

थीं। और सर्वदा यही समझती थीं कि, वह लोग उनकी इच्छा और आज्ञानुसार अंग्रेज अधिकारियोंके पास पत्र भेजते रहते हैं। किन्तु तत्कालीन झाँसीके राज्यकर्म्मचारियों अर्थात् महारानी लक्ष्मीबाईके आश्रितगणोंकी स्थिति, मनोभाव एवम् कार्य्यकलापोंके सम्बन्धमें जब हम सूक्ष्म रूपसे विचार करते हैं तब हमारे सन्मुख यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय उन आश्रितगणोंके द्वारा महारानीकी जीवनी पढ़नेसे हमें स्थान-स्थानपर इस बातका प्रमाण मिलता है कि महारानी ने अपनी राजभक्ति, सरलहृदयता एवम् सद्व्यवहारका परिचय देनेके हेतु तत्कालीन अंग्रेज़ सरकारके अधिकारियोंको बारम्बार पत्र भेजे थे। उन्होंने अपने मन्त्रियोंको कई बार इस बातको लिखकर कहा था कि, वह अधिकारियोंको पत्र द्वारा इस बातकी सूचना दे दें कि, वह झाँसीकी राज्य-व्यवस्था अंग्रेजोंकी ही आज्ञानुसार करनेको तत्पर हुई हैं। *

---

* इस सम्बन्धमें कप्तान पिङ्क साहबने, जो अंग्रेज सरकारके एक विश्वासपात्र एवम् ऊँचे दर्ज़ेके पदाधिकारी थे तथा विद्रोहके पश्चात् झाँसीके कमिश्नर रह चुके थे, अपने लेखमें लिखा है:—

"It is stated on the most trustworthy authority, that at the same time, she endeavoured to keep terms with our Government, by writing to the Commissioner of Jubbulpore and to others, lamenting the massacre of our contry-

इस तरह हर प्रकारसे अपनेको राजद्रोहके लाञ्छनसे दूर रखनेकी चेष्टा करने परभी उस समयके कुछ अंग्रेज अधिकारियोंने बिना कुछ सोचे महारानी लक्ष्मीबाईके शुभ्र भालपर,—राजद्रोहके कलङ्कका टीका लगाही दिया। उन्हींके उन पक्षपातपूर्ण और मिथ्या लेखोंका यह परिणाम था कि, महारानी लक्ष्मीबाई ब्रिटिश सरकार द्वारा व्यर्थही हत्यारे-विद्रोहियोंकी पंक्तिमें बैठायी गयीं। ब्रिटिश सरकारके वास्तविक स्थितिका विवेचन करना छोड़ अपने उन जातभाइयोंके लेखों-पर अन्धविश्वास कर लिया और सर्वदाकी राजभक्त महारानीसे संग्राम

---

men, stating she was in no way concerned in it, and declaring that she only held the Jhansi District till our Government could make arrang-ements to re-occupy it."

इसके अतिरिक्त और भी विश्वसनीय प्रमाण हमें मि० मार्टिनके लेख से मिलता है, जिन्होंने स्वयम् अपने हाथसे महारानीके सारे पत्र अंग्रेजोंको दिये थे। वह लिखते हैं—

"She sent kharreetas to colonel Erksine at Jubbalpur to col. Fraser, chief commissioner of Agra, which I handed to him, with my own hand, to hear her explanation but—No! Jhansi had been a bye—word and was commended un—heard!!

करनेकी ठान ली। यदि इस सम्बन्धमें अंग्रेज़ सरकार विचारसे काम लेती तो सन्देह नहीं कि, वह न्यायकी हत्या करनेके पापसे बची रहती। किन्तु उस समयके अंग्रेज़ अधिकारियों एवम् अंग्रेज़ी शासनके पास भला उतनी उदारता कहाँ? वह तो केवल अपना स्वार्थ एवम् जातीय प्रेम जानते थे। यही कारण था, उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाईका कोई मूल्य न समझा। अस्तु—

सागरके कमिश्नरको सूचित कर उनसे आज्ञा लेनेके पश्चात् महारानी लक्ष्मीबाईने झाँसीके राजसूत्र अपने हाथमें ले लिये। राज्यभार सम्हालते ही उन्होंने सर्व प्रथम अपने राज्यकी उचित व्यवस्था की तथा प्रत्येक विभागके भिन्न-भिन्न अधिकारी नियुक्तकर 'कर' Tax वसूली और न्यायदानकी उचित व्यवस्था की। उनके अधिकारसूत्र हाथमें लेनेके पूर्व झाँसीमें जो विद्रोह हुआ था और जिसमें झाँसीके सारे अंग्रेज़ चुन चुनकर मारे गये थे, उसकी इति श्री होनेपर भी झाँसीमें अभी तक उसकी प्रतिध्वनि उठानेवाले चोर-डाकू डटे हुए थे। महारानी लक्ष्मीबाईने उनके दमनके हेतु एवम् अपने प्रान्तमें रक्षाके लिये शान्ति बनाये रखनेकी अभिलाषासे बहुतसी सेना इकट्ठी कर ली और उनसे इफ़्तोंतक नगर भरमें गश्त लगवाकर उन चोर-डाकू एवम् विद्रोहियोंका दमन कर दिया। उनकी राजव्यवस्था इतनी उत्तम थी कि लोग कल्पना नहीं कर सकते थे कि जो रानी सर्वदा राजमहलमें फूलकी तरह पली थीं, वह राजकार्यमें इतनी सुदक्ष होंगी। उनके पति स्वर्गीय गङ्गाधररावके शासनकाल में उनके स्वाभाविक गुणोंका परिचय झाँसीकी प्रजाको पूरी तरह नहीं मिल सका था। वह नहीं

जानती थी कि, महारानी लक्ष्मीबाई राज-काजमें इतनी प्रवीण, प्रजाके प्रति सुशील, न्यायकुशल, धर्म्मपरायण होंगी। उन्होंने राजसूत्र हाथमें आतेही जितनी थोड़ी अवधिमें झाँसीकी प्रजाको अपनी मुट्ठीमें कर लिया था, उनकी प्रजा उनके शासनको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। झाँसीके दरबारमें पुनः पूर्व ऐश्वर्य लौट आनेका आभास होने लगा। आर्थिक उन्नतिके हेतु कई जगह भिन्न-भिन्न वस्तुयें बनानेके कल कार-खाने खुल गये। राजसूत्रोंके हाथमें आते ही महारानीकी पूर्व दिनचर्यामें भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया। उसका वर्णन उन्हींके एक सेवकने इस प्रकार किया है:—

जबसे महारानी लक्ष्मीबाईको सागरके कमिश्नर साहबकी ओरसे राज्याधिकार प्राप्त हुआ तबसे वह नित्य सबेरे पाँच बजे उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, चन्देरीका बना हुआ शुभ्र ·वस्त्र परिधान कर लेतीं और पार्थिवपूजा करती थीं। पूजाके समय ब्राह्मणसमुदाय आपके पास बैठकर भजन-कीर्तन करता और पुराणादिकी कथाएँ सुनाता था। इसके पश्चात् दरबारके आश्रितगण एवम् राजकर्म्मचारी महारानीको दण्डवत् करने पहुँचते थे। तदुपरान्त महारानी भोजन करतीं और कुछ देर विश्राम करती थीं। जब कभी विश्रामकी आवश्यकता बोध न होतो तब वह उपहारमें आयी हुई वस्तुओंका निरीक्षण करतीं जो प्रजा द्वारा उन्हें नित्य भेजे जाते थे। उन वस्तुओंमेंसे एकाध-दो उत्तम वस्तुओंको चुनकर वह अपने लिये रख लेतीं तथा शेष वस्तुएं अपने आश्रितगणोंमें बांट देती थीं। प्रायः तीन-बजे दरबार लगता था, जहाँ वह शाम तक स्वयम् राज्य प्रबन्ध और न्यायादिका काम देखती थीं।

उनकी पोशाकके सम्बन्धमें 'गिलीन' नामक एक विद्वान्ने "दी रानी" नामक ग्रन्थमें लिखा है:—

"यद्यपि उनकी पोशाक जनसाधारण महाराष्ट्रीय अबलाके समान ही थी तथापि उसमें उन्होंने बहुतसा परिवर्त्तन कर रखा था। वह अपने शिरपर लाल रंगका चमकदार रेशमी 'टोपो' पहिनती थीं, जिसके आस-पास मोतियोंकी लड़ी और रत्न जड़े थे। गलेमें एक छोटासा एक लाख रुपये मूल्यका हीरेका 'हार' रहा करता था। उनकी कंचुकी आगेकी ओर सर्वदा खुली रहती जिसके कारण उनका विशाल एवम् गठीला उरु-प्रदेश सर्व साधारण जनताको दृष्टिगोचर होता था। यह कंचुकी कमर तक लम्बी रहती और वह सुन्दर ज़रदोज़ी किये हुए कमरबन्दीसे जकड़ी रहती थी। कमरबन्दमें 'दमिश्क' के बने हुए दो सुन्दर पिस्तौल खोंसे रहते थे, जिनपर चान्दीके पत्तर मढ़े रहते और नकाशीका काम किया रहता था। इन्हींके साथ वह एक और शस्त्र कमरबंदमें खोंसे रहती थीं, जो था 'एक सुडौल' पेशकब्ज।" यह 'पेश-कब्ज' जहरमें बुता हुआ था और इसका एक हल्कासा वार शत्रु का प्राण हरण करनेके लिये पर्याप्त था। कभी-कभी वह साड़ी के बदले ढीला ढाला 'पायजामा' पहिन लेतीं थीं।"

यह उनकी एक प्रकारकी पोशाक थी। इसके अतिरिक्त कभी-कभी वह जन साधारण महाराष्ट्रीय तरुणीकी तरह पहिन कर दरबारमें जाती थीं। उस समय वह १७ हाथकी सफेद साड़ी (महाराष्ट्रीय ढंग की) और चोली पहिनती थीं। इस वेशमें उनके गलेमें मोतियोंका हार

तथा तर्जनीमें छोटीसी हीरेकी अंगूठी रहा करती थी। इसके अतिरिक्त अन्य आभूषणोंको उन्होंने सर्वदाके लिये त्याग दिया था।

वह दरबारके सारे काम-काज स्वयम् देखती थीं। उनके बैठनेके लिये एक अलग कमरा निश्चित था, जिसके द्वारपर दो सशस्त्र सन्तरी हाथमें सोनेकी छड़ी लिये खड़े रहते थे। महारानीके मन्त्री लक्ष्मणराव लेखन साहित्य लेकर महारानीके आसनसे कुछ दूर बैठा करते और जो-जो बात महारानी बोला करतीं उसे लिखते जाते थे। महारानी लक्ष्मीबाई बड़ी बुद्धिमती थीं। उनके सन्मुख जो भी प्रश्न उपस्थित होता, उसे वह बड़ी उत्तमताके साथ हल करतीं तथा उसके अन्तस्तल-तक पहुँच करही, उसके सम्बन्धमें यथोचित निर्णय सुनाती थीं। इस सम्बन्धमें मि० टेलर नामक विद्वान् ने इसप्रकार लिखा है:—

"महाराष्ट्र जातिकी यह पदाधिकारिणी परदा-प्रणालीकी विरोधिनी थी। वह नित्य-प्रति अपने स्वर्गीय पतिदेवके राजसिंहासन पर विराजमान होती, प्रार्थनापत्र और व्यवस्थापत्र पढ़ती तथा उनके सम्बन्ध में उचित आज्ञा सुनाती थी। वह जिस जिम्मेदारीके कार्यको उठाये थी उसे बड़ीही कुशलता, मनोधैर्य्य और साहसपूर्वक निभाती थी।"

महारानी लक्ष्मीबाईको धर्म्मके प्रति बड़ा प्रेम था। वह हर शुक्रवारको कभी घोड़ेपर चढ़कर तो कभी तामज़ान* में अपनी कुल-देवता

* 'तामज़ान'—यह अरबी शब्द है। इसे हिन्दी भाषामें पालकी या मियाना कह सकते हैं। महारानीके उक्त दर्शन यात्रा का वर्णन उनके एक सेवकने इसप्रकार किया है—महारानीकी पालकीपर सोने और चाँदीके पत्तर चढ़ाये गये थे। जिनपर झाँसीके प्रसिद्ध कारीगरों द्वारा नक्काशीका

श्रीमहालक्ष्मीके मन्दिरमें जाया करती थीं। उस समय मार्गमें जो भिखारी दिखलायी देते उन्हें तरह-तरहके 'दान' दिये जाते थे। उनकी उदारता एवम् दानी स्वभावके विषयमें कई किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

एक दिन की बात है, महारानी लक्ष्मीबाई श्रीमहालक्ष्मीका दर्शन कर मन्दिरके दक्षिण फाटकसे वापिस हो रही थीं। उस समय सहस्रों भिखमंगे उन्हें देखकर हो हल्ला मचाने लगे। महारानीने अपने मन्त्री लक्ष्मणरावसे इसका कारण पूछा। जिसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि, यह भिखमङ्गे हैं और हेमन्त ऋतु होनेके कारण शीतसे पीड़ित हैं।" महारानी उनके इस उत्तरको सुन दयासे व्याकुल हो उठीं। उन्होंने किले में जाकर शहरके सारे दर्जियोंको बुलवाया और केवल चार दिनकी अवधिमें उनसे रूईदार फतुहियाँ और टोपियाँ इत्यादि सिलवाकर पाँचवें दिन सबेरे सारे नगरमें इस बातकी मुनादी करवादी कि, जिन भिखमङ्गोंको कपड़ोंकी आवश्यकता हो, वह शामको राजमहलके सामने जमा हो जायँ। तदनुसार उस दिन शामको प्रायः २००० भिखमङ्गे राज-

---

काम कराया गया था। इन नकाशियोंमें स्थान-स्थान पर रत्न जड़े थे। महारानीकी सवारीके पीछे पीछे २०० शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित सैनिक चला करते थे। पालकीके 'पावे' पकड़नेके लिये ४।६ दासियाँ पालकीके साथ रहा करती थीं। इनकी पोशाक रेशमी रहती तथा उसपर ज़रदोज़ी का काम किया रहता था। शरीरपर विभिन्न प्रकारके आभूषण, पैरोंमें चाँदीके कड़े और जूते रहा करते थे। यह लोग एक हाथ में पालकीके पावे पकड़े रहा करतीं तथा दूसरेसे चँवर हिलाया करती थीं। इस सवारी के आगे-आगे रणवाद्य बजानेवाला दल चलता था। पालकी

महलके सामने इकट्ठे हो गये । जिनमेंसे प्रत्येकको महारानीने एक फतुही, एक टोपी और एक-एक कम्बल दान दिया तथा उस दिन यथेष्ठ भोजन करवाया ।

इसी तरह एक दिन महारानीके पास काशीका एक दरिद्र किन्तु विद्वान् ब्राह्मण जा पहुँचा और बोला कि मेरी आर्थिक दुरावस्थाके कारण मैं भारी संकट में पड़ गया हूँ । इसीके कारण मेरा विवाह होना असम्भव हो गया है । लड़कीका पिता अपनी लड़कीके लिये ४०० रु० माँगता है तथा विवाहके लिये कमसे कम १०० रु० तो अवश्यही चाहिये । नहीं मालूम इतना द्रव्य मेरे पास कब होगा ? महारानी उसके इस संकटको सुन एक थाली भर रुपये मंगवाकर उस ब्राह्मणको दे दिये और बोलीं—विवाह पक्का होतेही मुझे भी निमन्त्रण पत्र भेजियेगा ।" ब्राह्मण प्रसन्न होकर चला गया । उसने विवाहके पूर्व महारानीको निमन्त्रित किया था । किन्तु राजकीय कार्योंके कारण वह न जा सकीं । हां उस ब्राह्मणको नववधूके लिये उन्होंने ५०० रु० मूल्य का उपहार भेज दिया ।

के ठीक पीछे-पीछे राज्यकर्मचारीगण चला करते थे । जब महारानी घोड़ेपर सवार होकर दर्शनके निमित्त निकलतीं तब उनकी पोशाक मर्दों की सी रहा करती । उस समय वह पायजामा और पैरोंमें जूते पहिनतीं । बदनमें चुस्त कुरता सिरपर टोपी और उसपर जरीकी मुरेंदार पगड़ी, तथा कमरमें जरीका दुपट्टा लपेटा रहता था, जिसमें एक सुदीर्घ चौड़े फलकी तलवार लटकती रहती थी । जिस समय यह सवारी किलेसे कूच करती उस समयसे लेकर महारानीके वापिस होने तक किले और मन्दिरमें दोनों जगह वाद्य बजा करते थे ।

उक्त १।२ किम्वदन्तियोंके लिखनेका उद्देश्य यह है कि महारानी अपने आश्रितों एवम् प्रजाजनोंको पुत्रवत् समझती थीं। जिस तरह उनका अन्तःकरण दयासे ओत-प्रोत था उसी तरह वह प्रत्येक बातकी कुशाग्र परीक्षक भी थीं। वह घोड़ेकी सवारीमें जैसी प्रवीण थीं वैसी ही घोड़े की परीक्षा करने में भी अद्वितीय थीं। इस कलामें उस समय उनका इतना नाम था कि जो कोई नया घोड़ा लेता वह पहिले उसे महारानी से जँचवा कर लेता था। एक दिन एक घोड़ेका व्यापारी महारानी के पास दो घोड़े लेकर पहुँचा। दोनो घोड़े देखनेमें खूब हट्टे कट्टे एवम् उम्दा मालूम होते थे। महारानीने उन दोनों घोड़ोंको परीक्षा की और कहा कि, इन दोनोंमेंसे एक घोड़ेका मूल्य १००० रुपया तथा दूसरेका ५० रुपया है। देखनेवाले लोग महारानीके इस उत्तरको सुनकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने उनसे अत्यन्त विनम्र स्वर में इस अन्तरका कारण पूछा। जिसके उत्तरमें महारानी बोलीं कि, जिसका मूल्य मैंने ५० रु० कहा है, उसकी छातीमें चोट है और दूसरा निर्दोष है। घोड़ेका व्यापारी भी महारानीको इस परीक्षाको देखकर अवाक् हो रहा। उसने वह 'भेद' स्वीकार करते हुए महारानीकी बड़ी प्रशंसा की। अस्तु,

इस तरह महारानी लक्ष्मीबाईने अपने क्षणिक शासन कालमें झाँसी की प्रजाको, अपनी कुशाग्र बुद्धि, सराहनीय-सहिष्णुता एवम् अप्रतिभ चातुर्यका परिचय करा दिया था। यही कारण था कि तत्कालीन झाँसीकी प्रजा महारानी लक्ष्मीबाईको साक्षात् महालक्ष्मी समझती थी। किन्तु, हाय ! उसे क्या मालूम था कि, उसकी

यह महालक्ष्मी शीघ्रही ब्रिटिशोंके कारण झाँसी छोड़कर दर-दर घूमनेवाली है।

*　　*　　*　　*

अबला या सबला—झाँसीके सिपाही विद्रोहके पश्चात् जब ब्रिटिश साम्राज्यका रवि कुछ कालके लिये झाँसी प्रान्तमें अस्त होगया, उस समय उस प्रान्तमें एक तरहकी धाँधली सी मच गयी थी। झाँसी प्रान्तकी वास्तविक अधिकारिणी महारानी लक्ष्मीबाई ने सिपाही विद्रोह के समय अंग्रेज अधिकारियोंकी कैसी कड़ी सेवाकी थी, इसका चित्र-चित्रण सातवें परिच्छेदमें करही आये हैं तथा साथही साथ उसीके अनन्तर आठवें परिच्छेदमें यह भी बतला आये हैं कि, महारानी लक्ष्मीबाईने झाँसी प्रान्तको नख-शिखान्त रूपसे अंग्रेज़ शून्य देखकर उसकी भविष्यत् व्यवस्थाके लिये 'सागर' के कमिश्नरको लिखा था और उन्हींकी आज्ञा लेकर उन्होंने झाँसीके राजसूत्र, अंग्रेजोंके तात्कालिक प्रतिनिधिके रूपमें अपने हाथमें ले लिया था। उस समय सिपाही-विद्रोह के कारण झाँसीकी जो दुर्दशा होरही थी उसका चित्र-चित्रण करना व्यर्थ है। कारण यह बात स्वयम् सिद्ध है कि जिस समाजका कोई नेता,-सूत्रधार न हो, उसमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली' नीति चरितार्थ हो जाती है। सिर पर कोई शासनकर्त्ता न होने के कारण झाँसीका समाज भयानक रूपमें उद्दण्ड और स्वेच्छाचारी बन गया था। किन्तु ज्योंहीं महारानी लक्ष्मीबाईने सागरके कमिश्नरके आदेशानुसार झाँसीके सारे शासनसूत्र अपने अधिकारमें ले लिये त्योंही धीरे-धीरे समाजकी वह

स्वेच्छाचारिता कम होने लगी। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय महारानी लक्ष्मीबाईने उस बिगड़े हुए समाजको ठिकाने लाने में अपनी एड़ी और चोटीका पसीना एक कर दिया था। यदि वह उस समय इतना परिश्रम न करतीं तो यह सम्भव नहीं था कि झाँसी में पुनः शान्ति स्थापित हो जाती। इतिहाससे यह बात स्पष्ट होती है, कि वह महारानी लक्ष्मीबाईही थीं जो अपनी अलौकिक सुव्यवस्था एवम् अथक परिश्रम के कारण झाँसीकी प्रजाको इतने शीघ्र अपने वशमें कर सकीं। यदि उनकी जगह यह कार्य किसी दूसरे को करना पड़ता तो सम्भव नहीं था कि वह उसमें सफलता प्राप्त करता। झाँसीके राज्यसूत्र हाथ में लेते ही उन्होंने ब्रिटिश—शत्रुओंका नाश करनेके हेतु नयी सेना रख ली थी, इसे पाठक गत परिच्छेद में पढ़ही चुके हैं।

उसी समय अर्थात् झाँसीके राजसूत्र हाथ में लेतेही महारानी लक्ष्मीबाई को एक आकस्मिक शत्रुका सामना करना पड़ा था। यद्यपि यह शत्रु महारानीके लिये नया न था किन्तु ब्रिटिश सरकारके लिये तो नयाही था। पाठकों को स्मरण होगा कि महारानी लक्ष्मीबाईके पति महाराज गङ्गाधररावके देहान्त होनेके पश्चात् महारानी लक्ष्मीबाईके दत्तक पुत्र दामोदररावको झाँसीकी गद्दीका अनधिकारी सिद्ध करते हुए बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेण्ट मि० मालकमने ईस्वी सन् १८४४ के दिसम्बर मासकी ३१ वीं तारीखको, तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजीके पास जो पत्र भेजा था, उसमें उन्होंने महाराज गङ्गाधररावके प्राचीन निवासस्थान खानदेश में रहनेवाले उनके भाईबन्दोंमेंसे सदाशिव नारायण नामक एक मनुष्यको झाँसीका वास्तविक अधिकारी

बतलाया था । वही मि० मालकमके कृपापात्र सदाशिव नारायण झाँसीमें अंग्रेजोंकी शक्तिका ह्रास हुआ देखकर इस ऐन समय पर झाँसीके राज्यलोभसे महारानी लक्ष्मीबाईके विरुद्ध खड़े हुए । इसमें सन्देह नहीं कि, वह लगातार ४ वर्षों से ही झाँसीकी गद्दी हथियानेका प्रयत्न कर रहे थे । उन्होंने इस कार्य के लिये बहुतसी सेना भी एकत्रित कर रखी थी और केवल उचित अवसरकीही प्रतीक्षा कर रहे थे । निदान यही अवसर उन्हें उत्तम जान पड़ा और ईस्वी सन् १८५७ के जून मास की १३ हवीं तारीखको झाँसीके निकटवर्ती 'करेरा' नामक क़िलेपर चढ़ाई करही दी ।

इस चढ़ाईके समय उन्होंने जिस क्रूरतासे काम लिया उस क्रूरता का अवलम्ब लेना मानव हृदयके बाहरका कार्य हैं । उन्होंने वहाँ पहुँच कर अंग्रेजोंके थानेदार एवम् तहसीलदारको मार भगाया तथा किले पर अपनी पूर्ण सत्ता कायम करली । इसके पश्चात् वह अपने निकटस्थ ठाकुरों पर तरह-तरहके अत्याचार कर उन्हें लूटने लगे । इस तरह अपने रिक्तकोष को ठाकुरों के खून से सने हुये द्रव्य से भर लेने के पश्चात् उन्होंने बड़ी धूमधाम के साथ अपना राज्याभिषेक करवाया और घोषणा की कि, झाँसी राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी मैं ही हूँ । उन्होंने उस अवसर पर अपने नाम के आज्ञापत्र प्रकाशित किये तथा नगर-नगर में अपने 'राजा' होने का समाचार भेजा । संवत् १९१४ विक्रमीके आसाढ़ वदी अष्टमीको उन्होंने राजपुर के थानेदार गुलाम हुसैन के नाम यह आज्ञापत्र भेजा कि, वह उनकी ओर से राजपुर का थानेदार नियुक्त हुआ है । अतः वह अपने निकटवर्तीय ग्रामों में इस बात की घोषणा

कर दे कि, अब से झाँसी के राजा सदाशिव नारायण हुये हैं। गुलाम हुसैनने यह आज्ञा अस्वीकार कर दी। जिसके परिणामस्वरूप मदान्ध सदाशिव नारायण ने आषाढ़ बदी दशमीको उसे थानेदारी के पद से अलग करने और उसकी सम्पत्ति जब्त करने की आज्ञा निकाली। इस प्रकार के कतिपय दानवी अत्याचार उस नामधारी राजा ने उस थोड़ीसी अवधि में कर डाले। जिसके कारण वहाँ की प्रजा अत्यन्त दुखी हुई। जब महारानी लक्ष्मीबाई को यह समाचार मालूम हुआ तब वह तुरंतही इधर उधर से सेना इकट्ठी कर उसपर दौड़ गई। नामधारी राजा साहब उस आक्रमणको देख दुम दबाकर भाग निकले और उन्होंने सिन्धिया नरेश के अन्तर्गत 'नरवर' नामक ग्राम में जाकर अपनी जान बचाई। थोड़े दिनों पश्चात् उन्होंने फिर सिर उठाया। किन्तु इस बार वीर रमणी ने उन्हें कैदकर सदाके लिये झाँसी के किले के कारागार में डाल दिया। इस तरह इस वीर रमणीके प्रतापसे झाँसीके तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों के प्रथम शत्रु का नाश हुआ। झाँसी प्रान्त की एक शत्रु से रक्षा हुई।

इसके कुछही काल के अनन्तर महारानी लक्ष्मीबाई को एक दूसरे शत्रु से सामना करना पड़ा। यह शत्रु पहिले से कहीं अधिक पराक्रमी एवम् शक्तिशाली था। झाँसीके राज्यको अंग्रेजों से रहित एवम् एक अबलाके हाथमें देखकर ओरछा राज्य के दीवान नत्थेखां के मुँह में पानी भर आया। उसने राज्यप्राप्ति की आशा से २० हजार सैनिकों को लेकर झाँसीपर चढ़ाई कर दी। महारानी लक्ष्मीबाई के पास उस समय बहुत ही कम सेना थी। अतः उन्होंने सेण्ट्रल इण्डिया (मध्य-भारतके पोलि-

टिकल एजेण्टको एक पत्र लिखकर, उसमें सारी बातोंका एक कच्चा चिट्ठा लिखते हुए उनसे सेनाकी सहायता मांगी, किन्तु धूर्तशिरोमणि नत्थेखाँको जासूसों द्वारा इसबात का पता चल गया और उसने उस पत्र लेजानेवाले दूतको मार्ग ही में मरवा डाला !

महारानी लक्ष्मीबाई उक्त पोलिटिकल एजेन्ट से अपने पत्र का कोई उत्तर न पाकर तथा आसपास से भी किसीकी सहायता मिलनेकी आशा न देखकर क्षणमात्र के लिये घबड़ा गयीं। किन्तु तुरंत ही उन्हें अपने भावी कर्तव्यका ध्यान हो आया और वह गम्भीर बन गयीं। उन्होंने मनमें यह प्रण कर लिया कि, वह अकेली ही, बिना किसी की सहायता लिये, अपने मुट्ठीभर सैनिकोंके साथ शत्रु का सामना करेंगी तथा झाँसी प्रान्त की रक्षा के लिये जान लड़ा देंगी।

इसी समय उन्हें नत्थेखाँकी ओरसे यह सन्देश मिला कि, यदि वह झाँसी का किला और शहर दोनोंको चुपचाप उसके हवाले कर देगीं तो वह उनका वैसाही आदर-सम्मान करेगा जैसा अंग्रेज़ लोगों ने उनका किया है। इस सन्देश को पाकर महारानी लक्ष्मीबाई बड़ी क्रुद्ध हुईं। उन्हें नत्थेखांके यह व्यङ्ग भरे शब्द विषाक्त बाणों की तरह बोध हुए। वह अपने आपे में न रहीं। उन्होंने मनही मन संकल्प कर लिया कि, चाहे कुछभी हो वह नत्थेखाँ को दण्ड दिये बिना कदापि न मानेंगी। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने कर्मचारियोंसे सलाह ली। किन्तु उन जीचोरों ने जिस कायरता से उसका उत्तर दिया, उसे सुनकर वह और भी क्रुद्ध गईं। उन्होंने उन्हें अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में धिःकारा और नत्थेखाँ को कहला भेजा कि, आपकी शूरता इसी से प्रकट होती है कि आपने

एक अबला से युद्ध करने की ठानी है। अस्तु, कोई परवाह नहीं, मैं शिवरावभाऊकी 'बहू' हूँ। रणाङ्गण में शत्रु की ललकार का उतमताके साथ स्वागत करना जानती हूँ। आपको शायद नहीं मालूम कि, एक महाराष्ट्र रमणी या तो शत्रुको रणमें मारकर ही हटती है या स्वयम् मर मिटती है। आपने जिस तरह मुझे अपमानित कर ललकारा है उसका उत्तर आपको रणाङ्गणहीमें मेरी तलवार देगी। इसमें सन्देह नहीं कि झाँसीका राज्य इस समय अंग्रेजोंका है और मैं उनकी प्रतिनिधि बनकर उसकी देखभाल कर रही हूँ। आप यदि झाँसी को चाहते हैं तो प्रसन्नता से ले सकते हैं। किन्तु मेरे जीते जी नहीं। इस उत्तर को पाकर नत्थेखाँ क्रोधके मारे आग बबूला होगया। उसने उसी क्षण अपनी सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दे दी।

महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने उक्त उत्तर का भावी परिणाम पहिले ही से समझ रखा था। उन्होंने भी उसी दिन झाँसी प्रान्तके बड़े-बड़े ठाकुरों एवम् जागीरदारों को निमंत्रित कर, जिनमें दीवान जवाहिरसिंह, कटीलेवाले पंवार, दीवान दलीपसिंह, दीवान रघुनाथसिंह और ओरछा के राजा के दीवान साहब आदि सज्जन विशेष उल्लेखनीय थे,—एक सभा बुलवायी और उनको झाँसी पर आनेवाले भावी संकटका हाल बतलाकर उनसे सहायताकी याचना की। उस समय महारानी लक्ष्मीबाईका भाषण इतना प्रभावशाली हुआ था कि उन उपस्थित सज्जनोंने महारानीके इस कार्यमें पूरी सहायता देने की प्रतिज्ञा की।

तत्पश्चात् उन्हें विदा कर महारानी लक्ष्मीबाई ने, अपने यहाँ की प्राचीन तोपें जो जमीन में गड़ी थीं, (जिन्हें अंग्रेज़ोंने झाँसी राज्य

खारिज़ करने के पश्चात् वहाँ की युद्ध सामग्री नष्ट करते समय ज़मीन में गाड़ दिया था) बाहर निकलवायीं और उनकी उचित मरम्मत करवा-कर उन्हें क़िले के बुर्ज़ोंपर चढ़वा दिया। पश्चात क़िलेही में एक गोला-बारुद बनाने का कारखाना खुलवाकर दनादन युद्धोपयोगी सामान तैय्यार करवाया जाने लगा। इसी समय उक्त सभामें एकत्रित हुए ठाकुर और बुन्देलोंकी सेनाएँ भी वहाँ आ पहुँचीं। महारानी लक्ष्मीबाईने उन्हें उपस्थित होते देख हार्दिक कृतज्ञता प्रकटकी और उनके मुखिया दीवान जवाहरसिंह कटीलेवाले को अपने हाथ से रणकङ्कण बाँध दिया। महारानी की ओर से यही वीरपुङ्गव इस युद्धका सेनापति घोषित किया गया था। इसके पश्चात् स्वयम् महारानी मर्दानी पौशाक़ पहिनकर, सैनिक वेष में, अपनी सेना के साथ में युद्ध करने को डट गयीं।

नत्थेखाँ की सेना ने झाँसी के किले की दक्षिण दिशासे धावा बोल दिया। ज्योंही वह सेना महारानीकी तोपोंकी मारके भीतर पहुँची त्योंही महारानी लक्ष्मीबाईने अपने सुचतुर गोलन्दाज गुलाम गौसखाँको तोप दागनेकी आज्ञा देदी। उनकी आज्ञा पातेही गुलाम गौसखांने वह अग्नि-वर्षा आरम्भ की कि, घण्टे भरमेंही नत्थेखांकी सेना के होश—हवास उड़ गये और वह तितर-बितर होकर इधर—उधर भागने लगी। नत्थेखाँ अपनी सेनाको इस तरह भागते देख बहुत लज्जित हुआ। रातको चुपके चुपके छः दरवाजोंपर ४ तोपोंके निशाने लगाकर अपनी सेनाका चार भाग करते हुए उसने दुबारा आक्रमण किया। यह आक्रमण अत्यन्त भयङ्कर था, इसमें सन्देह नहीं। ओरछा दरवाज़ेपर नत्थेखाँकी तोपें वह विकराल आग उगल रहीं थीं कि महारानीको उसके टूटनेका सन्देह

होने लगा। वह तुरंत वहाँ पहुँचीं और अपने सैनिकोंको वीरोचित शब्दोंसे युद्ध के लिये प्रोत्साहित करने लगीं। परिणाम यह हुआ कि, वह सैनिक नये उत्साह के साथ मरने-मारने को तैय्यार होगये। उन्होंने शत्रु पक्षको दरवाज़ेके भीतर घुसने नहीं दिया। इसी समय महारानीके एक विश्वासपात्र सरदार वीरवर लालाभाऊ बक्शीने ओरछा दरवाज़ेके बुर्जपर झाँसीकी विख्यात तोप—"कड़कबिजली" चढ़वायी। उससे जिस समय शत्रुकी सेनापर अग्नि-वर्षा आरम्भ हुई, उस समय चारों ओर हाहाकार मच गया। "कड़क-बिजली" का एक-एक गोला नत्थेखाँके एक-एक सैनिक समूहको जहाँका तहाँ ढेर बनाने लगा। उसके सारे सैनिक जान लेकर जिधर मार्ग मिला उधरही अपना सब सामान जहाँ का तहाँ छोड़ भाग निकले। नत्थेखाँने बहुतेरा चाहा कि, उन्हें रोक रखे, पर उसकी एक न चली। कुछ थोड़ेसे सैनिक, जो उसके विश्वासपात्र थे उसके साथ डटे रहे। उन्हींको लेकर नत्थेखाँने कुछ दिन और युद्ध किया। किन्तु झाँसीकी प्रबल सेनाके सामने उसकी एक न चली। झाँसीकी सेनाके दूसरे नायक दीवान रघुनाथसिंह ने एक पहाड़ी परसे तोपें चलाकर नत्थेखाँकी शेष सेनाका भी सफाया कर दिया। नत्थेखाँ बड़ी कठिनतासे अपनी जान बचाकर युद्धभूमिसे भाग निकला। उसकी सारी तोपें एवम् युद्धोपयोगी सामान जहाँ के तहाँ पड़े रहे। महारानी लक्ष्मीबाई इस विजयसे बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने दीवान रघुनाथसिंह, दीवान जवाहिरसिंह, गुलाम गौसखाँ, सरदार लालाभाऊ बक्सी प्रभृति नरवीरोंको, जो महारानीकी इस विजयके मुख्य कारण थे, यथोचित पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया।

इस प्रकार अपने दूसरे शत्रु पर विजय प्राप्तकर महारानी लक्ष्मीबाई ने बड़ी वीरता और शौर्य्यके साथ झाँसी प्रान्तकी रक्षाकी। पश्चात् सर्वत्र शान्ति स्थापन होजाने पर उन्होंने इन सब आकस्मिक घटनाओंका समाचार मि० हैमिल्टन नामक एक अंग्रेज अधिकारीको लिखवा भेजा। किन्तु दुष्ट नत्थेखांने, जो महारानीके द्वारा बुरी तरह परास्त एवम् अपमानित होनेपर भी अपनी कुचालसे बाज न आया था और प्रतिहिन्सासे प्रेरित होकर गुप्तरूपसे महारानीके सर्वस्व को नष्ट भ्रष्ट करनेका अवसर खोज रहा था, इस बातका पता लगा लिया और मार्गहीमें उक्त पत्र ले जानेवाले महारानीके दूतको अपने किसी शैतान अनुयायी द्वारा मरवा डाला। इस कार्यसे उसे ऐसी प्रसन्नता हुई मानों उसने बड़ी भारी विजय प्राप्त करली हो। वह प्रसन्नताके वशीभूत होकर मनही मन इस बातका विचार कर रहा था कि, और कौनसा उपाय किया जाय, जिसमें शीघ्रातिशीघ्र महारानीका सर्वनाश हो। उसे एक विचार सूझही गया। उस विचारके मनमें पैठतेही उसके चेहरेपर पैशाचिक हँसीके चिन्ह प्रकट हुए। वह खिलखिलाकर हंस पड़ा। उसने उसी क्षण अंग्रेज़ अधिकारीके नाम इस आशयका एक पत्र लिखा कि, महारानी लक्ष्मीबाई विद्रोही होगयीं है। उन्होंने अंग्रेज़ोंके विरुद्ध खुली लड़ाई छेड़ दी है। गत झाँसीके विद्रोहमें जो अंग्रेज़ मारे गये हैं उसका वास्तविक कारण महारानी लक्ष्मीबाईही हैं। मैं अंग्रेज़ सरकारका सच्चा शुभचिन्तक एवम् घनिष्ठ मित्र हूँ। इसी हेतु मैंने महारानीसे युद्ध करनेकी ठान ली है और जब-जब भी अवसर मिला है, मैंने बराबर अपने मित्र अंग्रेज़ोंके लियेही महारानीके विरुद्ध तलवार उठायी है।"

पाठकगण ! देखी आपने नत्थेखाँकी पैशाचिक लीला ! दैवकी गति भी बड़ी विचित्र है । उस समय महारानी लक्ष्मीबाईका भाग्यही उनका प्रधान शत्रु बन गया था । वह जो-जो कार्य लाभ-जनक समझकर करतीं थीं, वही उनके लिये दुखदायी बन जाते थे। इसीको कहते हैं दैवदुर्विपाक!

यद्यपि उससमय महारानी लक्ष्मीबाईने अंग्रेज़ोंका इतना साथ दिया, उनके कड़े समयपर काम आयीं, उनके प्राणोंकी रक्षाकी, उनके प्रान्तको शत्रुओंसे बचाया, उनकी अनुपस्थितिमें उसकी देखभाल एवम् रक्षा की, उनकी मित्रताके सामने अपने जीवनतक को तुच्छ समझा, तथापि उनका वह परिश्रम दैवदुर्विपाकके कारण ब्रिटिश सरकारके सम्मुख निःसारही साबित हुआ। वह उस परिश्रमका उचित पुरस्कार न पासकीं ।*

---

* इस सम्बन्धमें मि० मार्टिन नामक इतिहासज्ञने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है:—

"After the mutinous troops had quitted Jhansi, she certainly took possession of her country; when the two states, Datia and Tehree, who could easily have protected our people, but would not, so much as raise a finger to help us though the Orcha boundry was not more than a mile and half from Jhansi Parade grounds and that of Dattia only 6 miles—with large bodies of armed men on their respective frontiers watching the doings of our troops.

उन्होंने अंग्रेजोंकी जो सेवायें की थीं उनका पुरस्कार अंग्रेजों की ओरसे उन्हें क्या मिला ?—यही कि अंग्रेजोंने उन्हें विद्रोही घोषित कर दिया।

महारानी लक्ष्मीबाईके प्रबन्धमें अब तक जितनी बातें लिखी गयी हैं तथा उनका सप्रमाण रीतिसे जो गवेषणापूर्ण विवेचन किया गया है, उनसे यह बात स्पष्ट होगयी है कि, महारानी लक्ष्मीबाई न तो स्वयम् विद्रोही थीं न उनका विद्रोहियोंसे कोई सम्बन्धही था। ओरछाके दीवान नत्थेखाँसे उन्होंने जो भयङ्कर युद्ध किया उससे यही स्पष्ट होता है कि, वह विद्रोही नहीं थीं। यदि उनके मनमें किसी भी अंशमें विद्रोहकी भावना होती तो उन्होंने अवश्यमेव नत्थेखाँसे मिलकर ब्रिटिश सरकार का शासन जड़–मूलसे उखाड़कर फेंक दिया होता। उनकी ज़रासी सहायता विद्रोहियोंको पर्याप्तरूपसे लाभजनक हो सकती थी और वह अत्यधिक बलवान् हो सकते थे। इसके अतिरिक्त एक बात और विचारणीय है कि, जिस रघुनाथसिंह दीवानकी सहायतासे महारानी लक्ष्मीबाईने नत्थेखाँको पराजित किया था, वह अंग्रेज़ोंका अनन्य भक्त था। इसे सारेके सारे अंग्रेज़ इतिहासज्ञ स्वीकार कर चुके हैं। उसके सम्बन्ध

Imaginning that the Rance being unprepared, and that they would with ease wrest her country from her hands, attacked her with their combined forces, and wore from time to time, thrashed back by that gallent lady."

में इतिहास यह स्पष्ट बतला रहा है कि, उसने विलियम स्लीमनके समयमें अंग्रेज़ोंकी सेनामें रहकर वह अतुल पराक्रम दिखलाया था, जिसके कारण उसे ब्रिटिश सरकार की ओरसे विक्टोरिया सार्टिफकेट और शस्त्रपुरस्कारकी प्राप्ति हुई थी। ऐसी दशामें यह सोचनेकी बात है कि, यदि महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ोंकी शत्रु होतीं तो भला यह अंग्रेज़ों का अनन्य भक्त कब उनकी सहायता करनेवाला था? अंग्रेज़ोंका मित्र अंग्रेज़ोंके शत्रुकी सहायता करे, यह तत्कालीन अंग्रेज़ अधिकारी, अंग्रेज़ सरकार एवम् अंग्रेज़ इतिहासज्ञ भले ही सम्भवनीय समझें,—किन्तु निष्पक्ष दृष्टिसे तो ऐसा होना असम्भवनीय ही जंचता है।

*　　　*　　　*　　　*

गोरोंकी मित्रता—सैनिक विद्रोहके उपरान्त, ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधिके रूपमें ईस्वी सन् १८५७ की १ जूनसे लेकर २० मार्च सन् १८५८ ईस्वी तक महारानी लक्ष्मीबाईने प्रायः १० महीने,—झाँसी प्रान्तकी राज्य-व्यवस्था देखी। उस अवधिमें महारानीके पत्र लेकर जो दूत अंग्रेज़ अधिकारियोंके पास जाते, उन्हें मार्गही में नत्थेखाँ खा जाता था। उसने अपनी ओरसे महारानीके विरुद्ध अंग्रेज़ोंके पास जो पत्र भेजा था, उसे पाठकगण गत परिच्छेदमें पढ़ ही चुके हैं। महारानी लक्ष्मीबाई अपने किसी भी पत्र का उत्तर न पाकर तथा भेजे हुए दूतोंको वापिस होते न देख चिन्तित होती थीं अवश्य, किन्तु सिवाय चिन्ता करने के उनके पास अन्य उपाय ही कौनसा था? हम पहिले बतला चुके हैं कि, उस समय उनके पास न तो कोई सुदक्ष एवम् होशियार

कर्मचारी ही था न राजनीति निपुण विद्वान् अथवा कुटुम्बी। वह स्वयम् यद्यपि बुद्धिमती, गुणवती एवम् राजनीतिज्ञ थीं तथापि थीं तो अबला ही। अबला चाहे जितनी प्रबल एवम् विमल हो तथापि उसमें स्त्रियोचित लज्जाभाव होताही है। वह पुरुषोंको भी आश्चर्यमें डालनेवाले चाहे जितने पराक्रम के काम क्यों न करे किन्तु जहाँ समाजाभिसरण की समस्या उसके सम्मुख उपस्थित हो जाती है तहाँ उसमें लज्जाके भाव आ ही जाते हैं। इसी सिद्धान्तके अनुसार महारानी लक्ष्मीबाईकाभी हाल रहा। यद्यपि वह वीर-गम्भीर एवम् पुरुषों के भी कान काटनेवाली निडर रमणी थीं तथापि अबला होने कारण वह अंग्रेज़ अधिकारियोंके पास जानेमें हिचकती थीं। यही कारण था कि, उनके सम्बन्धके सारे समाचार उनकी इच्छानुसार अंग्रेज़ अधिकारियोंके पास नहीं पहुँच सकते थे। उन्हें इस सम्बन्धमें पूर्ण रूप से अपने कर्म्मचारियों परही निर्भर रहना पड़ता था। अस्तु,

इन दस महीनोंके शासनकालमें महारानी लक्ष्मीबाईने झाँसी-प्रान्तको नत्थेख़ाँ सरीखे प्रबल शत्रुसे सुरक्षित रखनेके हेतु पर्याप्त शक्ति इकट्ठी कर ली थी। उन्होंने झाँसी नगरमें पुनः १८ तरहके कारखाने खुलवा दिये। तथा नये सैनिक भर्ती कर गोला बारूद इत्यादि युद्धोपयोगी सामान बनवाये। पश्चात् क़िलेकी मरम्मत करवा कर उसके प्रत्येक 'बुर्ज़' पर तोपें रखवादीं। नत्थेख़ाँके पराभवके कारण महारानी लक्ष्मीबाईके हाथ उसकीभी बहुतेरी तोपें आ गया थीं। इस समय उनके पास प्रायः ४१ तोपें हो गयी थीं। जिनमेंसे भवानी शङ्कर, कड़कबिजली, नालदार, घनगर्ज इत्यादि तोपें बड़ीही भयङ्कर और संसारभर

को तोपोंमें बड़ी एवम् अद्वितीय थीं। बड़े-बड़े इतिहासज्ञोंका कहना है कि, वैसी सुविशाल तोपें आजतक अंग्रेज़ी शासनमेंभी नहीं देखनेमें आयीं। महारानी लक्ष्मीबाई ने झाँसीकी रक्षाके हेतु जो कुछभी व्यवस्था की थी, वह केवल अंग्रेज़ोंके प्रतिनिधि की हैसियतसेही। उन्हें उस समय बड़ी आशा थी कि, अंग्रेज़ लोग कभी भूलकर भी उनके कृत उपकारोंको न भूलेंगे और विद्रोह शान्त होतेही उनकी कृत सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप उन्हें झाँसी प्रान्तके सम्पूर्ण अधिकार दे देंगे। किन्तु वहाँ तो कुछ बातही दूसरी दिखलायी दी। अपनी उदारता न्याय और विवेचनात्मक बुद्धिकी डींग हाँकनेवाली अंग्रेज़ सरकार महारानीके कृत उपकारोंको भूल गयी। उसने कृतघ्न बनकर उलटा चोर कोतवालको डाँटे' वाली उक्तिके अनुसार महारानी लक्ष्मीबाईको विद्रोही करार दिया।

महारानी लक्ष्मीबाई इससे घबड़ायीं नहीं। उन्होंने यही समझा कि, अंग्रेज़ अधिकारी उनके सम्बन्धमें अभीतक सम्पूर्णरूपसे अज्ञानान्धकार में हैं। उनको उद्देश्य कर उन्होंने जो पत्र लिखे वह उन्हें मिले नहीं, इसी हेतु उनकी यह मिथ्या धारणा होगयी है।

इस विचारके प्रादुर्भूत ही वह कुछ कालके लिये चिन्तित होगयीं। उनको दरबारियोंकी कर्तृत्वशक्ति पर कोई विश्वास न रहा। वह इसी बातका विचार कर रही थीं कि, क्या उपाय सोचा जाय, जिसकी बदौलत अंग्रेज़ अधिकारियों को उनके सम्बन्धका वास्तविक रहस्य मालूम हो। इसी समय नाना भोपटकर नामक एक वयोवृद्ध दरबारीने, जो झाँसी दरबारका प्राचीन आश्रित था, महारानी के सम्मुख उपस्थित होकर यह समाचार सुनाया कि अंग्रेज़ सरकार का विश्वास होगया है

कि महारानी विद्रोही हो गयी हैं। इसी हेतु अंग्रेज़ोंकी एक बड़ी सेना झाँसीपर धावा बोलने आ रही है।

महारानी लक्ष्मीबाई इस समाचारको सुनकर क्षणमात्रके लिये स्तब्ध हो गयीं। किन्तु दूसरे ही क्षण उनके चेहरे पर गम्भीरताके भाव छा गये। तीसरे क्षण विशाल भाल पर गहरी सिकुड़न पड़ गयी। पश्चात् कुछ कालके लिये मौन रहकर उन्होंने नाना भोपटकरसे भावी कार्यक्रमके विषयमें पूछा।

नाना भोपटकरने बहुत देरके विचार के पश्चात् कहा कि 'मेरी दृष्टिसे यही उत्तम होगा कि महारानी पुनः अपने किसी विश्वसनीय दूतको ग्वालियर और इन्दौरके पोलिटिकल एजेण्टके पास भेजें जो उनके पास जाकर उन्हें भलीभाँति समझा दे कि महारानीसे और अंग्रेज़ सरकारसे कोई विरोध नहीं है परन्च महारानी उनकी अनन्य भक्त एवम् सहायक हैं। उन्होंने इधर १० महीनों तक झाँसी प्रान्तकी जो कुछ देखभालकी है वह सागरके पोलिटिकल एजेण्टकी आज्ञानुसार एवम् अंग्रेज़ोंके प्रतिनिधिके रूपमें की है। गत झाँसी विद्रोहके समय अंग्रेजोंकी प्राणरक्षा करनेवाली, उन्हें गुप्त रूपसे भोजन पहुँचाने वाली, विद्रोहियोंका झाँसीमें दमन करनेवाली एवम् सदाशिवराव तथा नत्थेखांके समान अंग्रेजोंके भयानक शत्रुओंको परास्त करनेवाली महारानी लक्ष्मीबाईही हैं। उन्होंने जो कुछ काम किये हैं, वह अंग्रेज सरकारके हितके लियेही किये हैं। ऐसी परिस्थितिमें उन्हें विद्रोही समझना अंग्रेज सरकारकी नितान्त भूल है।"

महारानीको भोपटकरकी यह राय बहुत पसन्द आयी। उन्होंने

अपने मन्त्रियोंको बुलाकर उन्हें आज्ञा दी कि शीघ्रही इन्दौर और ग्वालियरके पोलिटिकल एजेण्टोंके पास उक्त कार्यके निमित्त एक सुचतुर एवम् सुदक्ष दूत भेज दें जो अंग्रेजी भाषा बखूबी जानता हो और अंग्रेज अधिकारियोंके मनमें महारानीकी निर्दोषिता भली भाँति उतार सके। किन्तु उस मूर्खाधिराज मन्त्रिमण्डलने इस अत्यावश्यक आज्ञा का उतनी सतर्कतासे पालन नहीं किया,—जैसा चाहिये था। उसने महारानी का यह विशेषरूपसे आदेशित कार्य अपने यहाँके एक नवयुवकको सौंप दिया। यह नवयुवक महात्मा ऐसे महाप्रभु निकले कि, वह न तो इन्दौर ही गये न ग्वालियर ही, परञ्च उन्होंने अपना डेराडंडा ग्वालियर नरेशके ईसागढ़ नामक सूबेमें एक प्रतिष्ठित सज्जन रामचन्द्र बाजी-रावके यहाँ जमाया और वहीं बैठे-बैठे झाँसी दरबारसे झूठा पत्र-व्यवहार करने लगे। परिणाम यह हुआ कि, झाँसीके दरबारियोंने उन झूठे पत्रोंपर विश्वास कर लिया! क्यों न हो? इसीको कहते हैं—'दुर्मन्त्री राज्यनाशाय।'

उधर अंग्रेज अधिकारियोंकी तो दृढ़ धारणा हो चुकी थी कि महा-रानी लक्ष्मीबाई विद्रोही हैं। ईस्वी सन् १८५७ के जून मासमें झाँसीमें जो सिपाही विद्रोह हुआ था, उसका विवरण सुनकर अंग्रेजोंके अन्तः-करण जलकर राख होगये थे। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाईके प्रति तब तक जो अन्यायपूर्ण व्यवहार किये थे, उन पर विचार करते हुए उनका यह समझना कि, महारानी लक्ष्मीबाई प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर विद्रोही होगयी हैं, अनुचित और प्राकृतिक नियमसे परे नहीं था। कारण यह सिद्धान्त है कि, जो सूरन खाता है उसीका गला खुजलाता है। इसी

उक्तिके अनुसार अंग्रेजोंकी महारानी लक्ष्मीबाई के प्रति वैसी धारणा का हो जाना अप्रासङ्गिक न था। अस्तु,

उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाईको विद्रोही समझकर उनके दमनके हेतु खूब तैयारी की थी। इस कार्यके लिये भारतसरकारने विलायतसे सर ह्यू रोज़को विशेषरूपसे निमन्त्रित किया। वह ईस्वी सन् १८५७ सितम्बर मासको १६ वीं तारीखको बम्बई पहुँचे। उन्होंने अपना कार्य-भार सम्हालते हुये बुन्देलखण्डके पोलिटिकल एजेन्ट मि० हैमिल्टन तथा कमाण्डर इन-चीफ मि० बेलसे परामर्शकर झाँसी प्रान्त पर धावा करने की ठानी। कमण्डर-इन-चीफ मि० बेलने अपनी सेनाको दो विभागोंमें विभक्त किया, जिनमेंसे एक भागमें थी बम्बई और मद्रास प्रान्तकी संयुक्त सेना तथा दूसरेमें थी इतर सेनायें। पहिले विभागके अधिकारी बने स्वयम् सर ह्यू रोज़ तथा दूसरेका नायकत्व दिया गया ब्रिगेडियर जनरल विटलाकको।

सर ह्यू रोज़ने सेनाका अधिकार अपने हाथमें लेकर तारीख १७ दिसम्बरको सन् १८५७ के अपनी सेनाके पुनः दो हिस्से किये। जिनमें से पहिले हिस्सेमें बम्बईकी सेनाका तीसरा रिसाला, चौदहवीं लाइट ड्रगून्स, हैदराबादकी कैण्टिनजण्ट फौजके दो रिसाले, ८६ वीं पल्टनकी दो टुकड़ियाँ एवम् बम्बई नेटिव इन्फैण्टरीकी २५ वीं पल्टन तथा तीन तोपखाने थे। दूसरे हिस्सेमें बम्बईके रिसालेका मुख्य भाग, हैदराबादकी कैण्टिनजण्ट फौजका एक रिसाला, बम्बईकी तीसरी यूरोपियन रेजीमेण्ट, बम्बई--नेटिव इन्फैन्टरीकी २४ वीं सेना, हैदराबाद कैण्टिनजन्टको एक पैदल पल्टन, भोपाल रियासतका एक दस्ता तोपखाना और मद्रास

साथपर्सकी एक कम्पनी थी। सर ह्यूरोज़ने इस विशाल सेनाका पहिला हिस्सा मऊमें तथा दूसरा हिस्सा सिहोरमें रखा।

ईस्वी सन् १८५८ की ६ जनवरीको मि० रोज तथा मि० हैमिल्टन साहबने अपनी सेनाको सिहोरकी ओर बढ़ाया। इसी समय भोपालकी बेगमके भेजे हुए ८०० सैनिक भी मार्गमें उससे जा मिले। उन्हें साथ लेकर मि० रोज विद्रोहियोंका दमन करनेके हेतु अपने दल-बल सहित सागरको ओर बढ़े। उन्होंने सागरसे प्रायः २४ मील दूर रहटगढ़नामक स्थानमें पड़ाव डाला। रहटगढ़का किला उस समय मुसल्मानोंके शासन में था। उन्होंने अपने किलेकी रक्षाका यथेष्ट प्रबन्ध किया था। किन्तु अंग्रेज़ोंकी प्रबल सेनाके सन्मुख उनकी एक न चली। चार दिनोंके भीषण युद्धके पश्चात् मुसलमानोंको क़िला छोड़ देना पड़ा और वह अपने प्राण बचाकर निकल भागे। मि० रोज़ अपना यह 'श्रीगणेश' इतनी उतमताके साथ यशस्वी होते देख प्रसन्नताके मारे फूलकर कुप्पा हो गये। उनमें अपूर्व उत्साह आ गया और वह द्विगुणित वेगसे अपनी सेनाको लिये दिये आगे बढ़े। इस बार उन्होंने बाणपुरके नरेशपर चढ़ायी कर दी। कहा जाता है कि बाणपुरका राजा विद्रोही हो गया था और उसने बहुतेरे विद्रोहियोंको आश्रय दिया था। मि० रोज़ने उसपर धावा बोलकर उसे भी मार भगाया किन्तु इस युद्धमें अंग्रेज़ोंके शूरवीर कप्तान मि० नेवली मारे गये।

उक्त दो युद्धोंसे छुट्टी पाकर विजयोन्मादसे मतवाले मि० रोज़ने तारीख ३ फरवरीके दिन सागर की ओर अपना मोर्चा घुमाया और वहाँके विद्रोहियोंको परास्त वहाँ अंग्रेज़ी अधिकार स्थापित कर दिया।

इसके पश्चात् ही लगे हाथ उन्होंने सागरसे प्रायः २५ मीलकी दूरी पर बसे हुए गढ़कोटा नामक किले पर चढ़ाई कर दी। यह क़िला उस समय बङ्गाल की ५१ वीं और ५२ वीं सेना के विद्रोहियों के आधीन था। मि० रोज ने अपनी विजयिनी सेना की बदौलत उसे सहज ही में अपने आधीन कर लिया।

इस तरह जब मि० रोज़ने देखा कि, थोड़ीसी मेहनतमें सागर तक का सारा प्रान्त तथा नर्मदा नदी के उत्तरी किनारे का अधिकांश भाग अंग्रेजी अधिकार में आगया है, तब तो उनका उत्साह और भी बढ़ गया। उन्होंने बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ने का निश्चय कर लिया। वह बुन्देलखण्ड में झाँसी को विद्रोहियों का केन्द्र समझते थे। उधर कमाण्डर-इन-चीफ़ मि० कैम्पबेल साहब का भी यही विश्वास था। उन्होंने मि० रोज़ को खुले शब्दों में कह दिया था कि, बिना झाँसीपर विजय प्राप्त किये उत्तर हिन्दुस्तानसे विद्रोहियोंका नामो-निशान मिटाना असम्भव है। किन्तु प्रश्न तो यह था कि, उस समय अंग्रेजी सेना को झाँसीतक पहुँचनेके लिये मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ दिखलाई दे रही थीं। सागर से कानपुर तकका सारा प्रदेश विद्रोहियोंके अधिकारमें चला गया था। मार्गमें मालथोन, मदनपुर, नारुत, धामौनी आदि कतिपय सुदीर्घ एवम् संकीर्ण घाटियाँ पड़ती थीं। विद्रोहियों ने आरम्भसे ही इन स्थानों पर दृढ़ताके साथ युद्ध करनेकी तैयारियाँ कर रखी थीं। सर ह्यूरोज़ इन बातोंसे पूर्णतया विज्ञ थे। इसीलिये उन्होंने अपनी सेनाको कतिपय हिस्सोंमें बाँटकर उन्हें भिन्न-भिन्न मार्गोंसे निकाल दिया तथा आप स्वयम् नारुतकी घाटीवाले मार्गसे जानेको तैयार हुए। किन्तु जब उन्होंने

इस मार्गपर बाणपुरके राजाको युद्ध करनेके लिये तैयार देखा तब तो उनका वह पहिला विचार बदल गया और वह शाहगढ़के राजा के अधीनस्थ मदनपुरके घाटसे जानेको तैयार हुए। इस मार्गसे जाने में भी उन्हें इस बातका भय था कि, यदि बाणपुरके राजाको यह बात विदित हो जायगी तो वह अवश्य ही शाहगढ़ नरेशकी सहायता करने दौड़ेगा और अंग्रेजोंको दो-दो शत्रुओं की संयुक्त सेनासे सामना करना पड़ेगा। इस विचारके मनमें आते ही उन्होंने अपनी सेनाकी एक टुकड़ी नारुत घाटकी ओर बाणपुरके राजाको रोक रखनेके लिये भेज दी और शेष सेनाके साथ वह बड़ी सरलतासे मदनपुरके घाटकी ओर अग्रसर होगये। इतने पर भी उन्हें मदनपुर घाटपर विद्रोहियोंके साथ युद्ध करनाही पड़ा। यद्यपि उन्होंने इस मार्गसे आनेके पूर्व सुदक्षतासे काम लेकर बाणपुरके विद्रोही राजाको नारुतकी घाटीमें ही रोक कर विद्रोहियों का बल कम कर दिया था, तथापि उनकी शक्ति मदनपुर घाटपरभी कम नहीं थी। उसीका यह परिणाम था कि, इतनी सतर्कतासे काम लेने एवम् इतनी जबर्दस्त सेनाको साथ लेने पर भी उनकी वहाँ हड्डी-पसली ढीली होगयी। विद्रोहियोंने उनकी प्रबल सेनासे बड़ी वीरताके साथ सामना किया और मि० सर ह्यूरोज़पर गोली चलाकर उन्हें घायलकर दिया। उनका घोड़ा गोलीको मार खाकर वहीं ढेर होगया। इस युद्धमें यदि बाणपुरके राजाकी साहयता मिली होती तो इसमें सन्देह नहीं था कि, विद्रोही सेना अंग्रेजी सेनाको कभीको मार भगाये होती। किन्तु युद्धकला निपुण सर ह्यूरोज पहिले ही उसकी व्यवस्था कर चुके थे। अतः उसका परिणाम वही हुआ जो इष्ट था। अंग्रेजोंकी

प्रबल एवम् असंख्य सेनाकी विजय हुई। उस युद्धमें बहुतेरे बुन्देले सरदार खेत रहे। अंग्रेज़ी सेना विद्रोहियोंको हटाते हुये सरायके किलेके पास जा धमकी।

सरायका प्रासाद एक छोटीसी पहाड़ीके ऊपर बना था। उसके निकट ही शाहगढ़के नरेशके एक सुन्दर उद्यानमें सर ह्यू रोज़ने अपने दल-बल सहित डेरा डाला। दूसरे दिन अंग्रेज़ी सेनाने मुरोवरा नामक ग्रामपर चढ़ाईकर उसे भी जीत लिया तथा मुनादी करवा दी कि, इस प्रान्तके समस्त विद्रोहियोंका ध्वंस होगया है। बुन्देलखण्डके तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट मि० हैमिल्टनने शाहगढ़के राज्यको ब्रिटिश शासनमें मिलाये जानेकी घोषणा करदी। शाहगढ़ नरेश इसके पूर्व ही वहाँसे भाग निकले थे। उनके आश्रयमें रहनेवाले जो थोड़से सरदार वहाँ बचे थे उन्हें फाँसी देदी गयी। उस राजाका एक ज्योतिषीभी उस समय पकड़ा गया। उसे भी अंग्रेज़ोंने सूली पर चढ़ा दिया *।

---

* इस ज्योतिषीके विषयमें डा० लो ने लिखा है:—

"The Rajah of Shah Garh had escaped, and his astrologer who was now in our hands, confessed that he had been mistaken in his prediction of the fitting day for the annihilation of the Feranghees. He evedently had read the stars through a dark glass that night, and had woefully proved himself a false prophet,"

सर ह्यूरोज़ साहबका जो सैनिक दल बाणपुरकी ओर गया था उसे बहुतही कम युद्ध करना पड़ा। बाणपुरके राजा मदनसिंहने जब यह समाचार सुना कि, अंग्रेज़ी सेना शाहगढ़के राजाको परास्त करके मदनपुर घाटके पार हो गयी है, तब तो उसने युद्ध करना व्यर्थ समझा और अपने बाल बच्चोंको लेकर अदृष्ट मार्गकी राह ली। अंग्रेजोंको उसका राज्य बिना किसी परिश्रमके ही मिल गया। ईस्वी सन् १८५७ की ११ वीं मार्चको अंग्रेजका 'युनियन जैक' बाणपुरके क़िलेपर फहराने लगा। इस विजयके स्मृतिचिन्ह स्वरूप मेजर वायलोने बाणपुरके राजमहलका एक भाग तोपसे उड़वा दिया और शेष भागमें आग लगवा दी। पश्चात् दूसरे दिन अर्थात् तारीख १२ मार्चको वह सेना 'तालबेहट' नामक गांवके पास पहुची। वहां के किलेको भी विद्रोहियों ने अपने आधीन कर-लिया था। मेजर वायलोकी सेनाके साथ उनको थोड़ीसी मुठभेड़ होगई किन्तु थोड़ी देर पश्चात् अंग्रेज़ी सेनाको प्रबल और अधिक देखकर विद्रोही भाग खड़े हुए। किला अंग्रेज़ों के हाथ आगया। इस विजयको सम्पादन करनेके पश्चात् १७ वीं मार्चको सर ह्यूरोज़ साहब अपनी सेना सहित बेतवा नदीके पार हुए। उसी दिन उन्होंने चन्देरी के प्राचीन एवम् इतिहास प्रसिद्ध क़िले को विद्रोहियों से छीनकर वहाँ अपना झण्डा गाड़ दिया। पश्चात् तारीख १६ मार्च को वह झाँसी से १४ मील की दूरी पर बसे हुये चञ्चनपुर नामक गाँव में जा पहुँचे। उसके ठीक दूसरे दिन उनकी ओर से झाँसी के मार्गों का निरीक्षण एवम् नाकेबंदी करनेके उद्देश्यसे एक बड़ा तोपखाना और घुड़सवारोंका सशस्त्र सैनिकदल भेजा गया। उसके पश्चात् सर ह्यूरोज़ साहब भी अपनी शेष सेनाको जिसमें ६० हजार

सैनिक थे, लेकर उधरही बढ़नेवाले थे। किन्तु इसीसमय सर राबर्ट हैमिल्टन तथा कमाण्डर-इन-चीफ राजा साहब को गवर्नर जनरल साहब का एक आज्ञापत्र मिला जिसमें यह लिखा था कि, झाँसीपर आक्रमण करने के पूर्व अंग्रेज़ी सेना को ब्रिटिश सरकारके परम मित्र चरखारी नरेश रतनसिंहकी सहायता के लिये दौड़ जाना चाहिये, कारण उसपर पेशवा के सेनापति तात्या टोपी ने चढ़ाई की है।

इसमें सन्देह नहीं कि, गवर्नर जेनरल महोदय का यह पत्रभी धूर्त-विद्यासे अछूता नहीं है। उस पत्रमें उन्होंने चरखारी नरेशकी मित्रताका हवाला देकर अपने मित्र-प्रेम की थोथी डींग हांकी है अवश्य, किन्तु यदि उसपर मार्मिक दृष्टिसे विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हुए विना नहीं रहता कि उस पत्र को लिखने में गवर्नर महोदय का आन्तरिक उद्देश्य कुछ दूसराही था। उस समयके अंग्रेज़ * तात्या टोपीके नामसे थर-थर काँपते थे और उन्हें साक्षात् पैशाचिक अवतार समझते थे।

---

* उनके सम्बन्ध में तत्कालीन अंग्रेजोंका क्या मत था, इस विषय पर 'लण्डन टाइम्स' नामक समाचार पत्र के संवाददाता मि० रसेल ने ता० ४ दिसम्बर सन् १८५८ के दिन अपनी रिपोर्ट लिखते हुए लिखा है—

Our very remarkable friend Tantia Topee is too troublesome and clever an enemy to be admired. Since last june he has kept central India in a Fevour. He has sacked stations,

उस समय गवर्नर जनरल साहब ने यही विचार कर उक्त पत्र लिखा था कि कहीं ऐसा न हो कि चरखारीमें पहुँचे हुए तात्या टोपी अंग्रेज़ी सेना का समाचार पाकर झाँसी की ओर पिल पड़ें। यद्यपि यह सत्य है कि चंचनपुरसे चरखारी ८० मीलदूर है और झाँसी केवल १४ मील ही, तथापि वीरवर तात्या टोपी को दिनभर में ३०।४० मील की दौड़ लगाना कोई कठिन बात नहीं थी। उनके सारे कार्य हवा की तरह होते

---

plundered treasuries, emptied arsenals, collected armies, lost them, taken guns from native princes, lost them, taken more, lost them ! Then his motion have been like forced lightenings: for weeks he has marched thirty aud forty miles a day. He has crossed the Narmada too and fro. He has marched between our colomns, behind them and before them. Ariel was not more subtle aided by the best stage mechanism. Up mountains, over rivers, through rains and valleys, amid swamps on he goes, backward and forward, and side ways and zig-zag ways now falling upon a postcart, and carring of the Bombay mails, now looting a village, headed and burned, yet evasive as proteus."

थे। अंग्रेज़ लोग उन्हें उड़नखटोलाके नामसे पुकारते थे। गवर्नर जनरलको उनका बड़ा भय था और इसी भयसे प्रेरित होकर उन्होंने चरखारी नरेशके मित्रद्-प्रेमका दिखौआ नाटय-दृश्य दिखलाते हुये उक्त पत्र लिखा था। किन्तु सर ह्यूरोज़ उनके इस आन्तरिक हेतुकी थाह न पा सके। वह उक्त सरकारी आज्ञा को सुनकर बड़े असमञ्जसमें पड़ गये किन्तु तुरन्त ही मि० हैमिल्टनने उस सरकारी आज्ञाके उल्लङ्घनकी जिम्मेदारी अपने सिरपर लेते हुये गवर्नर जनरलको उक्त पत्रके उत्तरमें लिख दिया कि, "यदि हमलोग सरकारी आज्ञाके अनुसार चरखारीकी ओर अग्रसर होते हैं तो झाँसी का किला हाथसे निकल जानेका भय है। हमारी दृष्टिसे झाँसो दुर्ग ही विद्रोहियोंका प्रधान अड्डा है और इसे हाथमें कर लेना अंग्रेजोंके हितके हेतु हमारा आद्य कर्तव्य है। इस समय यदि हम लोग किसो कारणवश झाँसी पर धावा न बोल सकेंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि' हमलोगोंने काजपीके सम्बन्धमें जो निश्चय कर रखा है, उसमें भी बाधा पड़ जायगी। मेरी और सर ह्यूरोज़की दृष्टिसे कालपीको हस्तगत करना हमारे लिये आवश्यक और अत्याव-श्यक है। हम मानते हैं, कि, चरखारीनरेशकी सहायता करना भी हमारे लिये कम महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु वर्त्तमान परिस्थिति ऐसी नहीं है कि, हम अपनी सेना चरखारी ले जायँ। यदि इधर झाँसी पर आक्रमण हो जायगा तो उधर चरखारीके सब विद्रोही अपने आप ही हमारी ओर टूट पड़ेंगे और जब झाँसो हमारे हाथ आजायगा तब आपही उनका दल तितर-बितर हो जायगा।" इस प्रकार गवर्नर जनरलके पत्रका उत्तर देकर मि० हैमिल्टन तथा सर ह्यूरोज़ अपनी

सारी सेना लेकर ईस्वी सन् १८५७ के मार्च मासकी २० तारीखको सबेरे ७ बजे झाँसीकी ओर बढ़े।

*　　　*　　　*　　　*

दानवी आक्रमण——अंग्रेज़ी सेना के झाँसी की ओर अग्रसर होने का समाचार झाँसी में पहुँचते ही वहाँ के राज्यकर्म्मचारीगण घबड़ा गये। महारानी लक्ष्मीबाई उस उपस्थित संकटसे उद्धार पाने की अभिलाषा से मन ही मन किसी उपयुक्त साधनका आविष्कार करने लगीं। उस समय उनके दरबारियों में कैसे-कैसे दिग्गज कूड़ापन्थी बसे थे, इसका उन्हें पूर्ण ज्ञान था और वह समझ चुकी थीं कि, उनसे किसी तरह की आशा रखना मानो जान बूझकर कूएं में गिरने के बराबर है। उन्हींसे आशा रखनेके कारणही तो वह आज तक कुछ न कर सकीं थीं। यही सब सोचकर वह किसी अन्य युक्ति के आविष्कार में दत्त–चित्त होगयीं थीं। उन्हें इस तरह चिन्तित देख, झाँसीकी गद्दीके प्राचीन सेवक नाना भोपटकरसे रहा न गया। महारानी की चिन्ता का कारण तो वह जानते ही थे। सारी झाँसी में यह बात फैल चुकी थी कि अंग्रेजों की एक विशाल सेना झाँसी पर आक्रमण करने के हेतु बढ़ी चली आरही है। उन्होंने महारानी को यह सलाह दी कि अंग्रेज़ी सेनाको बिना किसी रोकटोकके झाँसी शहरमें आने दिया जाय और उसके प्रधान सेनापतियों एवम् अधिकारी वर्ग से मिलकर वास्तविक स्थिति समझा दी जाय। किन्तु उनका यह विचार अन्य दरबारियों को, जिनमें अधिकांश लोग वे थे जो अंग्रेजों से जले हुए एवम् नत्थेखाँ के पराजय

से मदान्ध बने हुए थे,—पसन्द न आया। उन्होंने एक स्वर होकर यही सलाह दी कि, अंग्रेजों से भिड़ जाना ही अच्छा होगा—

इतने पर भी महारानी लक्ष्मीबाईने अंग्रेज़ी सेनाके झाँसीके निकट पहुँचने तक, युद्ध की तैयारी नहीं की थी। किन्तु जब दरबारियों द्वारा उन्हें उसी समय इस बात की स्मृति दिलायी गयी कि, उनके अंग्रेजी सरकार के प्रति इतने राजनिष्ठ एवम् सहनशील रहने तथा बार-बार जबलपुर और आगरे के कमिश्नर, सेण्ट्रल इण्डिया के पोलिटिकल एजेण्ट तथा पार्लियामेंट सभा एवम् गवर्नर जनरल को अपनी सफ़ाई के पत्र लिखने पर भी उन्होंने उस ओर कोई ध्यान न दिया और व्यर्थ ही महारानी पर विद्रोहका कलङ्क लगाया, तब वह अंग्रेजों के उन अन्याय एवम् अत्याचारपूर्ण व्यवहार पर विचार करते हुए अत्यन्त दुखी हुईं। उन्हें अंग्रेजोंके दुराग्रह पर भारी क्रोध हो आया और उन्होंने सच्ची आर्यमहिलाके गुण कर्मस्वभावानुसार स्वधर्म-स्वाभिमान और स्वतन्त्रताके लिये अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठानाही उचित समझा।

कुछ लोगोंका कहना है कि अंग्रेजी सेनाके झाँसीको घेरतेही सर ह्यू रोजने महारानी लक्ष्मीबाईके पास यह सन्देशा भेजा था कि, वह निःशस्त्र होकर अपने दीवान लक्ष्मणराव, लालाभाऊ बक्शी, मोरोपन्त ताम्बे, नाना भोपटकर प्रभृति आठ सज्जनोंको लेकर दो दिनके भीतर उनसे मिलें। उनके साथ जो भी सज्जन आये वह सभी निशस्त्र हों। किन्तु स्वाभिमानिनी लक्ष्मीबाई ने ऐसी भेंट करना उचित न समझा। वह उस पत्र को पढ़ते ही क्रोधके मारे भड़क उठीं। उन्होंने उसी

त्रण लक्ष्मणराव को बुलवा कर इस आशयका उत्तर लिखवाया कि आपने अपने पत्रमें जो शर्तें लिखी हैं, उनसे अपना प्रत्यक्ष अपमान समझती हूँ। मुझे नहीं मालूम था कि, अंग्रेज़ सरकार अपने सदाके मित्रका इस तरह अपमान करेगी! पत्रमें इस बुलाहटका कोईभी कारण नहीं लिखा है। ऐसी परिस्थिति में मैं कैसे विश्वास कर लूं कि, वहां पहुँचने पर हमलोगोंके प्रति विश्वासघात नहीं किया जायगा। * दिल्ली के सम्राट् के प्रति भी तो अंग्रेज़ सरकारने इसी तरहका व्यवहार किया है। यदि लिखिये तो राज्यकी प्रचलित रूढ़ि के अनुसार मैं अपने दीवानको मय उनके अङ्गरक्षकोंके साथ (जो सब सशस्त्र रहेंगे) भेज सकती हूँ। मेरे विषय में सरकारको मालूम होना चाहिये कि, कोईभी हिन्दू अबला, जो हिन्दू-संस्कृतिकी अनुगामनी है इस तरह किसी पुरुषसे मिलने नहीं जा सकती।

इस सम्बन्धमें कतिपय इतिहासज्ञ यह लिखते हैं कि, 'जब महारानी लक्ष्मीबाईने अपनी राजभक्तिका बदला इस प्रकार मिलते देखा,

---

* दिल्ली शहर हस्तगत कर लेनेके पश्चात् अंग्रेजो सेनाने दिल्लीके सम्राटका विचार करनेके अभिप्रायसे सिविल कोर्ट बैठा दिया था। जिसमें अंग्रेज़ोंने सम्राट् बहादुरशाहको देशनिर्वासनकी सज़ा सुनाकर उन्हें ब्रह्मदेशमें कैद कर रखा था। उनके पुत्रोंकी तो सुनवाई तक नहीं हुई और वह बेचारे व्यर्थ ही अंग्रेज़ोंकी गोलियोंके शिकार बनाये गये थे।

—सन् १८५७, By. N. K. Behae

तब वह भीषण रूपसे क्रुद्ध हो उठीं। इसी समय अंग्रेजोंने झाँसी प्रान्तमें गोवध करना आरम्भ कर दिया था। धर्म्मवीर महारानी इस कृत्य से और भी क्रुद्ध गयीं। उन्होंने खुले आम विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया तथा विद्रोहियोंके महाराष्ट्र नेता नाना साहबके साथ पत्र व्यवहार करने लगीं। किन्तु इतिहासज्ञोंका यह लेख केवल प्रगल्भ कल्पनाओं के आधार पर लिखा गया है। कारण जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई और अंग्रेज़ों में खुलकर विरोध हुआ था, उस समय तक नानासाहब पेशवा युद्ध छोड़कर नेपालकी ओर भाग निकले थे, इसका प्रमाण इतिहास दे रहा है।

किन्तु फिर भी हमारे मनमें इस बातको जाननेकी उत्सुकता रहही जाती है कि, वह कौनसा कारण था, जिसके कारण महारानी लक्ष्मीबाई सरीखी विधवा अबला,--जो सदा से राजभक्त और अंग्रेज़ों की सहायक बनी चली आती थीं, जो अपने शान्तस्वभाव सहनशील अन्तःकरण एवम् प्रेम-पूर्ण व्यवहारके लिये सदासे प्रसिद्ध थीं, वह अकस्मात् सर ह्यूरोज़ सरीखे कसे हुए योद्धाके साथ इस तरह लड़नेको तैय्यार हुईं। इस सम्बन्धमें कितने ही लोग कितनी ही कल्पनाएँ दौड़ा रहे हैं। कुछ लोगोंका तो यह कहना है कि, महारानी लक्ष्मीबाईको यह विश्वास हो चुका था कि, अंग्रेज़ लोग महारानी तथा उनके दरबारियों को विश्वासघातका आश्रय लेकर कैद करना चाहते हैं। इसीलिये वह शत्रु द्वारा अपमानित होनेकी अपेक्षा उसे अपनी तलवारका पानी पिलाकर मर जाना अधिक श्रेयस्कर समझती थीं। कुछ लोगोंका यह मत है कि महारानी लक्ष्मीबाईको अंग्रेज़ी सेना देखकर इस बातकी आशङ्का हो गयी कि

वह सेना अंग्रेज़ोंकी नहीं, अपितु उनके पुराने शत्रु नत्थेखाँकी है-जो अपने सैनिकोंके साथ अपने चेहरोंको रङ्ग देकर अंग्रेजोंके वेषमें युद्ध करने आया है। इसी आशङ्कासे प्रेरित होकर उन्होंने अंग्रेजी सेना पर तोपें चलवा दी थी। कोई लिखते हैं कि, महारानी लक्ष्मीबाईने अंग्रेज अधिकारियों के पास अपने सम्बन्धकी सारी सच्ची बातें बतलानेके लिये कुछ कर्म्मचारी भेजे थे, जिन्हें अंग्रेज़ोंने मार डाला। सारांश यह कि उस समय इस सम्बन्धका वास्तविक रहस्य क्या था, यह किसी भी इतिहासज्ञको मालूम नहीं है और न अब उसके मालूम होनेकी सम्भावना ही है। ऊपर इस सम्बन्धकी जितनी भी बातें लिखी हैं, वह सब विभिन्न इतिहासज्ञों की विभिन्न कल्पनाओंका समूहीकरण है जिनका केवल तत्कालीन स्थितिसे अनुमान किया जा सकता है। किन्तु वास्तवमें कारण क्या था,—पहिले झगड़ा किसने बढ़ाया, यह अभी निश्चितरूपसे जाननेकी कोई गुञ्जायश नहीं है। किन्तु हाँ दोष चाहे जिसका भी हो, उस समय उभयपक्षमें एक दूसरेके प्रति हार्दिक द्वेष हो गया था और दोनों ही एक दूसरेको विश्वासघाती समझते थे, यह बात अक्षरशः सत्य है। अतः हम यही मानकर चलेंगे कि, झाँसी पर अंग्रेज़ोंकी सेना के आक्रमण करने पर महारानी लक्ष्मीबाईने भी वीरताके साथ उससे मुक़ाबिला करनेके लिये निश्चय कर लिया।

उन्होंने थोड़े ही दिनोंके अवकाशमें क़िलेकी रक्षाका उत्तम प्रबन्ध कर लिया। क़िलेकी विशालकाय दीवारों पर, जो १६ से २० फीट चौड़ी थीं और जो क़िलेके चारों ओर गगनचुम्बी पठारों की तरह खड़ी थीं तथा उनपर स्थान-स्थान पर तोपें रखनेके लिये बुर्ज बने थे, तोपें

चढ़ा दीं। इन बुर्जोंमें 'गरगज' नामका एक भव्य बुर्ज था। जिसकी लम्बाई और चौड़ाई ४० हाथ एवम् उँचाई प्रायः १२५ हाथ थी। उसके चारो कोनों पर भवानी शंकर, कड़क बिजली, घनगर्ज और नालदार नामकी ४ प्रलयंकरी तोपें रखवा दीं। इसके अतिरिक्त क़िलेके चारो ओर जो 'खाई' बनी थी, उसमें नया पानी भरवा दिया। यह खाई इतनी चौड़ी थी कि कैसी ही भारी सेना, क़िलेसे होनेवाली तोपों की मारसे बचकर इसे पार नहीं कर सकती थी। इसके अतिरिक्त यदि उसने आतताईपनसे उसे पार करनेकी चेष्टा भी की तो उसे उसीमें बझाये रखनेके लिये उसमें बड़े-बड़े सुदीर्घ भाले लगे थे, जो तैरते हुए आदमी-को बिना छिन्न-भिन्न किये नहीं मानते थे।

इस प्रकार उन्होंने किलेकी रक्षाका उत्तम प्रबन्ध कर उसके भीतर ही गोला-बारूद तैय्यार करनेका कारखाना खुलवा दिया। सैनिकोंके खानपानके हेतु मनों धान्यसामग्री इकट्ठी कर ली। रुपयोंकी कमी को दूर करनेके अभिप्रायसे राजमहलमें जितने भी चाँदीके सामान एवम् बर्तन थे, सबको गलाकर, उनके सिक्के ढलवा दिये। युद्धमें विजय प्राप्ति की आशासे कुल देवता महालक्ष्मीके मन्दिरमें जप तपका अनुष्ठान बैठा दिया। पश्चात् इन सब कार्योंसे छुट्टी पाकर वह अपनी सेनाकी ओर मुड़ी।

उनकी सेनामें अंग्रेजोंसे द्वेष भाव रखनेवाले सैनिक पहिलेहीसे अधिक थे। उन्होंने महरानीको विद्रोहका झगडा खड़ा किये देख' महारानीके प्रति अपनी पूर्ण सहानुभूति दिखलाते हुए इस बातका बचन दिया कि, वह अपने मरते दम तक महारानीका साथ न छोड़ेंगे।

इनके अतिरिक्त उनके पास रणबांकुड़े बुन्देले सरदार एवम् अफ़गानी शेरोंकी भी कमी नहीं थी। वह लोग महारानीके पसीनेकी जगह अपना खून बहानेको तैय्यार थे। शेष जो कुछ लोग थे, वह यद्यपि युद्धसे अपरिचित थे तथापि उनकी महारानीके प्रति सच्ची निष्ठा थी और वह सभी सम्भवनीय प्रकारोंसे महारानीके लिये कटने मरनेको प्रस्तुत थे। महारानीने इस 'चित्र-विचित्रम् बहु कृतवेशम्' सेनाके कई विभागकर उनमें से प्रत्येक विभागपर अपने विश्वासपात्र ठाकुर एवम् बुन्देले सरदारोंको अधिकारी नियुक्त कर दिया। पश्चात् उन समस्त सैनिकों एवम् अधिकारियोंको एकत्रितकर एक विराट सभा की, जिसमें उन्होंने एक अत्यन्त ओजस्वी एवम् खुन खौलानेवाला भाषण देते हुए उन नरपुङ्गवोंको उनका कार्यक्रम समझा दिया तथा आप भी पुरुषवेशमें सजकर किलेकी देखभाल एवम् रक्षा कार्यपर डट गयीं। इसी बीच उनहोंने गुप्तरूपसे कालपीमें तात्याटोपी एवम् राव साहबको पत्र लिखकर उनसेभी सहायता की याचना कीथी। अस्तु,

इधर सर ह्यू रोज़ने २१ मार्च तक अपने पत्रके उत्तरकी राह देखी। इस बीच उन्होंने झाँसीके क़िले एवम् शहरका सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण किया था। जहाँ-जहाँ आवश्यक मालूम हुआ वहाँ-वहाँ अपनी सेना और तोपें नियुक्त कर दीं। पश्चात् शहर और क़िलेके भीतर रहनेवाले सज्जनोंको बाहरसे जिन-जिन मार्गोंसे सहायता मिलना सम्भव था उनसभी स्थानोंपर उन्होंने अपना दखल कर लिया। शहरके सब नाके अंग्रेज़ी सेना द्वारा रोक दिये गये। इसी ऐन अवसर पर ब्रिग्रेडियर स्टुअर्टकी एक पल्टन चन्देरीसे आकर उन्हें मिल गयी। जिसके कारण

अंग्रेज़ोंको झाँसीका किला एवम् शहर घेरनेमें और भी अधिक सहायता मिली। उन लोगोंने अपनी सेनाकी रक्षाके अभिप्रायसे स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े खन्दक खोदे। एक स्थानसे दूसरे स्थान तक समाचार पहुँचाने के लिये तार लगा दिये। निकटस्थ एक ऊँची पहाड़ी पर शहर और क़िलेका भीतरी हाल देखनेके लिये दुरबीन लगा दी। इस प्रकार जहाँ तक सम्भव हो सकता था, उन्होंने अपनी सेना की रक्षा और झाँसीकी प्रजाको शिक्षा (दण्ड) देनेके लिये जहाँ तक तय्यारी हो सकती थी कर डाली।

दोनोंही पक्षोंने अपनी शक्तिभर इस तैय्यारीमें कोई बात उठा नहीं रखी थी। उभय पक्ष,--जो किसी समय एक दूसरेके घनिष्ट मित्र थे, आज समय के फेरसे,--एक दूसरेके खून के प्यासे शत्रु बन बैठे थे। ईस्वी सन् १८५७ की २३ वीं मार्चको उन दोनों की मित्रताका नामभी इस दीन दुनिया से लोप हो गया। राज्य लोभ की लालसा से उन्मत बनी अंग्रेज़ी सेना सर ह्यु रोज़की आज्ञा पातेही क़िलेपर आक्रमण करने के हेतु आगे बढ़ी। अंग्रेजोंने झाँसीके क़िले पर ज़ोरोंसे गोले बरसाना आरम्भ किया। उन्हींका सहारा लेकर अंग्रेज़ घुड़सवार झाँसी शहरकी ओर बढ़े। किन्तु इसी समय सुचतुरा महारानी लक्ष्मीबाईने उन घुड़-सवारोंको अपनी तोपोंकी मारके भीतर पहुँचते देख, अपने गोलन्दाज़ोंका तोपों के दागनेका इशारा किया। निमेषमात्रमें तोपें गरज उठीं। उनका सम्मिलित गर्जन इतना भयंकर था, मानों बिजलीकी कड़कड़ाहटसे आस्मान फटा जाता हो। उनके अग्निमुखसे निकलनेवाला एक-एक गोला क्षणमात्रमें १०।५ गोरोंको भस्म कर देता था। उस प्रलयंकरी

अग्निवृष्टिके सन्मुख अंग्रेज़ी रिसालोंकी एक न चली। वह जिधर मार्ग मिला, उधरही जान बचा कर भागने लगे।

अंग्रेज़ोंका यह विचार था कि, किसी तरह शहरकी सरहद तक पहुँचकर उसके तट पर अधिकार जमाते हुए उसी मार्गसे शहरमें प्रवेश किया जाय। इसीलिये वह शहरके चारों ओर तोपोंके मोर्चे बाँधनेके प्रयत्नमें लगे थे। किन्तु उनके हज़ार प्रयत्न करने पर भी उनकी तोपें तटको उड़ानेमें असमर्थही रहीं। महारानी लक्ष्मीबाईके सुचतुर गोलन्दाजोंने अपनी तोपें चलाकर अंग्रेजी सेनाको चनेकी तरह चुन-चुन कर भूनना आरम्भ किया। अंग्रेज लोग विवश और हताश हो उठे। तोपोंकी हृदयभेदी गड़गड़ाहट, उनके मुँहसे निकलनेवाले लाल-लाल गोले तथा धूँआ, वायुमण्डलमें व्याप्त हो गये। अंग्रेज़ी सेना भयभीत होकर भाग निकली। किन्तु उसका यह भागना,—भागना न था। कारण उसी दिन रातको तीसरी योरोपियन पल्टनके सैनिकोंने आगे बढ़कर अपने लिये झाँसी शहरके तटसे प्रायः ३०७ गजकी दूरी पर तोपोंका एक मज़बूत मोर्चा बाँधा।

दूसरे दिन प्रातःकाल होतेही पुनः क़िलेपर तोपोंका धूम--धड़ाका आरम्भ हुआ। किन्तु रातको अंग्रेजी सेनाने अपनी तोपों के लिये जो नया मोर्चा बाँधा था, वह तटके बिलकुल समीप और ऊँचाईपर होनेके कारण इस बार अंग्रेज़ी तोपोंके गोले ठीक शहरमें जा-जाकर गिरने लगे। क़िलेकी तोपें आशातीत ऊंचाई पर होनेके कारण उनसे जो गोले छूटते थे, वह नीचेकी अंग्रेज़ी सेनाके सिर परसे होते हुए दूर जाकर गिरते थे। इनसे अंग्रेजी सेनाकी कोईभी हानि नहीं होती थी।

अपितु उल्टे अंग्रेज़ी सेनाकी तोपोंहीसे झाँसीवालोंको हानि उठानी पड़ती और क़िलेका गोला-बारूद व्यर्थ नष्ट होता था। अंग्रेजी तोपोंने झाँसी शहरमें भीषण अग्निकाण्ड और हाहाकार मचा दिया। झाँसी निवासियों का शहरमें घूमना फिरना बन्द होगया। स्थान-स्थानपर कितनेही लोग तथा घर अंग्रेजी तोपोंके शिकार होगये। इसी समय क़िलेके विख्यात गोलन्दाज गुलाम गौसख़ाँको एकायक जोश चढ़ आया। उसने 'घनगर्ज' नामकी प्रसिद्ध तोपको आगे बढ़ाकर वह भीषण अग्नि-काण्ड मचा दिया कि, क्षणही भरमें अंग्रेजी सेना, ओ गाड! ओ फ़ादर! कहती हुयी पीछे हटने लगी। इस अद्भुत तोपमें एक विशेषता यह थी कि, इससे जो गोले छूटते थे, उनका सन्धान अचूक होता तथा उनके छूटते समय किसी प्रकार का धूआँ नहीं होता था। यही कारण था कि, इसकी छिपी मारसे सतर्क रहनेका अंग्रेजोंको अवसरही नहीं मिलने पाता था। इसका प्रत्येक गोला अंग्रेजोंकी खासी शक्ति विचूर्ण कर देता था।

अंग्रेज लोग इस भयानक आक्रमण से अत्यन्त व्यग्र हुए। उन्हें अपना भावी परिणाम बहुतही बुरा मालूम होने लगा। वह इस चिन्ता से उत्तेजित हो उठे। उनके अन्तःकरणमें सदा यही विचार घूमने लगा कि, कौनसी युक्ति काममें लायी जाय, जिससे क़िलेकी तोपें ठण्डी पड़ें। इसी समय अंग्रेज़ोंके सुभाग्यसे कहिये अथवा यह कहिये कि, झाँसी शहरके कुछ नमकहराम दुर्जनोंकी नीचताके कारण, जो शहरके बाहर रहते थे--अंग्रेजोंको उस स्थान का पता चल गया, जहाँ पर तोपों का मोर्चा बाँधनेसे, झाँसीके क़िले पर तोपोंके गोले बखूबी बरसाये जा सकते

थे। उन्होंने यह जगह मालूम होतेही २४ मार्चके दिन किलेके पश्चिम की ओर ४ नये मोर्चे बाँधे और उसके दाहिनी ओरसे विकराल आक्रमण आरम्भ किया। अंग्रेजोंकी गरनली तोपें भीषण रूपसे आग उगलने लगीं। उनका एक-एक गोला ६०।६५ सेरसे कम वजन का नहीं था। यह गोले जिस समय तोपोंसे निकलकर किलेकी ओर अग्रसर होते थे, उस समय ऐसा बोध होता था मानो सैकड़ों सुदीर्घ विद्युत प्रवाह ज़ोरोंसे किलेकी ओर बढ़ रहे हों। इनमेंसे प्रत्येक गोला १५।२० आदमियोंका एक साथ 'बलि' लेता था। उनको अविरल बौछारके कारण महारानीके तटवर्तीय सैनिक कीट--पतङ्गकी तरह जल-भुनकर वीर गति को प्राप्त होने लगे। क़िलेके तोपोंके गोलन्दाज़ अंग्रेज़ी तोपोंके गोले खाकर धराशायी होने लगे। उन्हें अपनी तोपें सम्हालनेका अवसर मिलना कठिन होगया। अंग्रेज़ोंकी 'गरनाली' तोपोंके गोलोंकी यह विशेषता थी कि, वे किलेके छतपर गिरतेही वहाँ छेद करते हुए नीचेके तमाम खण्डों को छेदते चले जाते और अन्तमें फूटकर निकटस्थ सैनिकोंको मार गिराते थे। इन गोलोंमें चाकू काँटे, सुई और काँच भरे रहते थे, जो फूटनेपर चारों ओर छितरा जाते और समीपस्थ शत्रुओंको ज़ख्मी बना देते। उनकी रुद्र बौछारके कारण निमेषमात्रके लिये क़िले की तोपें बन्द पड़ गयीं। उनके बचे बचाये गोलन्दाज अपने स्थान छोड़ निरापद स्थानोंमें आश्रय लेने लगे। महारानी लक्ष्मीबाईको अपने पक्षकी यह दुर्दशा देख भारी दु:ख हुआ। इस समय तक वह अपनी आँखों झाँसी शहरके दर्जनों घरों एवम् सैकड़ो कुटुम्बियोंको अंग्रेजी गोलों के कारण धूलमें मिलते देख चुकी थीं। उनको यह दारुण दशा देख

उनका हृदय भर आया। वह क्षणमात्रके लिये मुग्ध एवम् गम्भीर बन गयीं। किन्तु अधिक देर तक ऐसी दशामें रहना मानों मालूमही न था। उन्होंने शीघ्रही अपनी सेनाको ढाढ़स देकर उसमेंसे कुछ सैनिकों को विपद्ग्रस्त नगरवासियोंकी रक्षाके लिये और कुछ को अपने गोल-न्दाज़ोंको सहायताके हेतु भेज दिया। इस प्रकार समुचित व्यवस्था कर देनेपर पुनः एक बार झाँसीकी सेनामें ज़ोर हो आया। अंग्रेज़ी तोपें धीरे-धीरे अनुपयोगी सिद्ध होने लगीं।

इसमें सन्देह नहीं कि, अंग्रेजोंकी सेना बड़ीही सुसङ्गठित, विशाल एवम् युद्ध निपुण थी तथापि महारानी लक्ष्मीबाईने भी किले की अन्त-र्व्यवस्था इतनी उत्तमतासे कर रखी थी कि उस बेचारीका सारा युद्ध नैपुण्य भूल जाता था। अंग्रेज़ोंने यद्यपि चुनिन्दा जगहों पर अपने मोर्चे तथा तोपें लगा रखी थीं तथापि किलेकी प्रलयङ्कारी तोपों और बन्दूकोंके सामने उनकी एक न चलती थी। उभयदल अपनी-अपनी दृष्टिसे खूब मज़बूतीसे तैयार थे। दोनों ही प्राणोंके मूल्यपर 'विजयश्री' के खरीददार थे। यही कारण था कि दोनों कीही एक दूसरेके कारण भारी हानि होनेपर भी दोनों ही एक दूसरेके सामने डँटे रहे।

२५ वीं मार्चके दिन सर ह्यूरोज़ने अपनी सेनाके कुछ सैनिकोंको किले के दक्षिणकी ओर आक्रमण करने के हेतु नियुक्त कर दिया। जिनमें विशेषकर चंदेरीके विजयी सैनिक उपस्थित थे। उन्होंने अपनी शक्तिभर किले पर आक्रमण किया। किन्तु कुछ ही देर के पश्चात् उनकी वह चेष्टा व्यर्थ प्रमाणित हुई। दूसरे दिन अर्थात् तारीख २६ मार्चको सर ह्यूरोज़ साहबने एक और सेना उसकी सहायताके लिये भेज दी। इस

नयी सेनाके पहुँचतेही पुनः एक बार उभयपक्षमें खूब छनी। प्रायः दो बजे किलेके दक्षिण बुर्ज़वाली तोपका गरजना अकस्मात् बन्द होगया। उसपर अंग्रेजी सेना भीषण रूपसे गोले बरसा रही थी। जिसके कारण महारानीके एकभी गोलन्दाज़को दम साधे पड़े रहना असंभव होगया। महारानी अपनी इस विवश दशाको देख कर कुछ चिन्तितसी हो गयीं। उन्होंने अपने सैनिकोंको पश्चिम बुर्जवाली तोप लाकर उस बुर्जपर लगानेकी आज्ञा दी। यह तोप वही प्रख्यात कड़क बिजली थी, जिसकी मारके सामने नत्थेखाँ की प्रबल सेना जान बचाकर भाग निकली थी। उसका गोलन्दाज भी वही गोसखाँ था जिसकी अपूर्व गोलन्दाजी सारे भारतमें प्रसिद्ध थी। उसने अपनी तोपको आगेकर एकबार दूरबीनकी सहायता से अंग्रेज़ी गोलन्दाज़ को देखा। पश्चात् आगे बढ़कर उसी ओर निशाना साधते हुए उसमें बत्ती देदी। बत्तीके लगतेही एक कर्कश ध्वनिसे सारा वायुमण्डल गूंज उठा। अंग्रेज़ी गोलन्दाज़ पतङ्गकी तरह हवामें उड़कर छिन्न-भिन्न रूपमें माता वसुन्धरा की गोदमें जा गिरा। उसकी हड्डी-पसली कहाँ गयी इसका भी पता न चला। अंग्रेज़ी गोलन्दाजको इसतरह पञ्चतत्वमें मिलते देख महारानी लक्ष्मीबाईकी प्रसन्नताका वारापार न रहा। उन्होंने गुलाम गोसखाँको सामने बुलाकर पुरस्कारमें एक जोड़ा सोनेका कड़ा दे डाला।

इस तरह बराबर ६ दिन तक उभयपक्षीय सेनाओंमें खूब घमासान युद्ध हुआ। इस बीच अंग्रेज़ोंने कई बार झाँसीके क़िलेपर घोर आक्रमण किया; परन्तु महारानी लक्ष्मीबाईके थोड़ेसे वीर सैनिकोंने अंग्रेज़ोंकी उस विशाल सेनाके दाँत ऐसे खट्टे किये कि उनकी सारी उछल-कूद बन्द

होगयी। कहा जाता है कि, उन दिनों झाँसीकी स्त्रियाँ तक गोला बारूद तैय्यार करती थीं। छठवें दिन रातको अंग्रेजोंने बड़े जोर-शोर के साथ झाँसी-शहर और किलेपर तोपों की मार आरम्भ कर दी। उनका एक-एक गोला ५०। ६० सेरसे कम न था। झाँसीकी प्रजा उस भयङ्कर गोलन्दाजीको देख भयभीत होगयी। उसके सामने वह दृश्य बड़ाही प्रलयङ्कर था। अंग्रेज़ी तोपोंका छूटा हुआ प्रत्येक गोला आकाशमें आगके लाल गेंदों की तरह चमकता,—तीव्रवेगसे जिस स्थानपर जा धमकता, उसकी पूरी दुर्गतिही बना देता था। उसकी प्रत्येक मारमें १५। २० मनुष्य मृत्यु-मुखमें पड़ जाते थे। झाँसीवासियोंके सन्मुख मानों यह साक्षात् मृत्युकी विभीषिका उपस्थित थी! उस दिन दिनभर दोनों ही पक्ष ऐसे जूझे कि विजयश्रीने किसी ओर भी जाना स्वीकार नहीं किया। सातवें दिन अर्थात् ३१ मार्चको सूर्यास्तके समय झाँसीके क़िले के पश्चिम की तोप अकस्मात् बन्द हो गयी। वहाँ अंग्रेज़ोंके गोले इतने भीषणरूपसे बरस रहे थे कि, उस जगह क़िलेके गोलन्दाज़ोंका क्षण भर भी रहना असम्भव हो गया। दैववशात् उसी समय अंग्रेजी तोपों की मार खाकर क़िलेका मोर्चा भी टूट गया। किन्तु प्राण हथेलीपर लेकर लड़नेवाले महारानीके वीर सैनिकोंने, उस अन्धेरी रातमें, रातोरात कम्बल ओढ़कर उस नष्ट-भ्रष्ट हुए 'बुर्ज' की मरम्मत की। पुनः उस बुर्जसे अंग्रेज़ी सेनापर तोप चलने लगी। इस बार उसकी मार इतनी तीव्र थी कि अच्छे-अच्छे अंग्रेज़ कप्तानोंको छठीका दूध याद आ गया। इस मारसे अंग्रेज़ी सेनाको भारी हानि उठानी पड़ी।

इसमें सन्देह नहीं कि, अंग्रेज़ोंकी विशाल और युद्धविद्या विशा-

रद सेनाके सन्मुख महारानीकी सेना अत्यन्त थोड़ी और अनुभवहीन थी। उनकी सेनाका न तो प्रबन्धही अच्छा था न उनके सैनिक नियमित रीतिसे कुछ कार्यही करना जानते थे। इस कारण उस युद्धका जो कुछ भी भार था वह केवल महरानी लक्ष्मीबाईके शौर्य एवम् साहसपर ही [illegible] था। यदि उस समय उनके पास उन्हीं की तरह अधिक नहीं तो २।४ ही वीर और रहते तो निश्चय ही आज हमें यह झाँसी का इतिहास किसी दूसरेही रूपमें लिखनेका सुअवसर प्राप्त होता। किन्तु दुर्भाग्यवश वैसे सज्जनों के अभावमें भी वीर शिरोमणि महारानी लक्ष्मीबाईने अपने स्वकीय बाहुबल एवम् बुद्धिबलसे लगातार ११ दिनों तक अंग्रेज़ों की सेनासे टक्कर लिया तथा उन्हींके सेनानायकोंसे अपनी प्रशंसा करायी।

इस सम्बन्धमें डा० लो ने लिखा है:—

"On the 28 th there was continued heavy firing from the batteries on both attacks and the enemy kept up a very smart fire upon our various works from their guns and from the whole line of the Wall reaching from the Fort to the right attack. We had silenced several of their guns, and as often as they were silenced so often did they reopen from them to our astonishment. In the midst of this din and roar, lash and smoke, a great explosion occured in

the fort on the east face. This followed the constant shelling from the right attack. Every-ten minuts in the 24 hours shell and shot fell in the various parts of this doomed place and fresh fire burst out among the different buildings—each fire greeted with loud hurrahs by the men in our batteries. The Excitement frequently became intense, and the Gunners Continued their works In the scorching sun as though it were winter time. By the 29th parapets of the fort bastion were torn down from the left attack, and the enemy's guns were accordingly rendered useless."

"At the same time a breach was commenced in the town-wall near the fort. The Canonading went on with great spirit, while the enemy continued a determined opposition from the garden battery on the west side, and from musketry and light guns along the wall.

During the mid day head scarcely a shot was fired by the enemy but about 3-30 P. M. Every evening they reopened upon us wlth

considerable spirit. Round shots of various sizes bounced over our heads and matchlock balls whizzed like hail about us. From this hour till sunset was always a dangerous time and our poor fellows were severely tired. The 'garden battery' and guns on the fortgate pestered us a good deal. Near the former battery we could see scores of the enemy among the trees sauntering about as though they were superintending a quiet every day matter of bussiness although our shell occasionally dropped in the midst of them.

The breaching and shelling were continued with unabated sprit on the 30th and 31st, and the enemy kept up a fearful fire upon us. Not withstanding the damage done to their fort and works upon the wall, their vigilance and determination to resist abated not one iota, on the contrary, their danger appeared to add to their courage."

Central India page 242-244.

आठवें दिन प्रातःकाल होतेही अंग्रेजी सेनाने किलेके 'शङ्करबुर्ज'

की ओर रुख बदलकर अपनी तोपें दागना आरम्भ किया। अंग्रेज़ सेनानायकोंके पास उस समय जो दुरबीनें थीं, उनसे वह किलेकी अन्तर्गत रचना एवम् व्यवस्थाको भलीभाँति देख लेते थे। उन्हींने दुरबीनों की सहायतासे किलेके जलाशयको देख लिया था। वहाँ पर किलेमें पानी पहुँचाने के हेतु कितनेही पनिहारोंकी भीड़ इकट्ठी हुई थी। उसे देख सर ह्यूरोज़के मनमें एक कुत्सित कल्पनाका प्रादुर्भाव हो उठा। उन्होंने अपने सैनिकोंको उन पनिहारों पर तोपें चलानेकी आज्ञा दी। परिणाम् स्वरूप ४।५ पनिहारे तत्त्क्षण काल कवलित हो गये। महारानी लक्ष्मीबाई इस आकस्मिक विपदाको देखकर क्षणभरके लिये किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहीं। किन्तु तुरंतही उन्होंने मनही मन अपने मनोविकारों को दबाकर किलेके दक्षिणी बुर्ज एवम् पश्चिमी बुर्ज पर स्थित तोपोंको एकही साथ दागनेकी आज्ञा दी। दोनों ओरकी उस प्रलयंकरी मारके सामने अंग्रेजी तोपें ठण्डी पड़ गयीं। उनका अग्निवमन क्षणमात्रके लिये रुक गया। किलेके लोग पुनः पूर्ववत् अपने-अपने कार्यों में लिप्त होगये। पनिहारों ने किले की टंकियाँ पानीसे लबालब भर दीं। इसी समय अकस्मात् अंग्रेजोंकी ओरसे एक भीषण गोला विकराल गर्जन करता हुआ किलेपर जा धमका। दैववशात् वह गोला जिस स्थान पर पड़ा वहीं महारानी लक्ष्मीबाई के गोला-बारूद, बनाने का कारखाना था। उसका अग्निमुख उस कारखानेमें लगते ही एक भीषण धड़ाका हुआ। उसकी कर्कश ध्वनि इतनी भयंकर थी कि कितने ही समीपस्थ वीर पुङ्गवोंके कान के पर्दे फट गये। एक बार समूचा किला हिल गया। धड़ाके के पश्चात्ही उस स्थानसे गगनचुम्बी अग्निज्वालाएँ

धधक उठीं। कारखानेमें काम करने वाले प्रायः ३० पुरुष तथा ८ औरतें उसके मुखमें जा समायीं और प्रायः ४०।५० आदमी ज़ख्मी भी हो गये।

महारानी लक्ष्मीबाई इस आकस्मिक अग्निकाण्डको सन्मुख प्रस्तुत हुए देख घबड़ानेके बजाय औरभी उत्साहित हो उठीं। उस समय तक अंग्रेज़ी तोपोंकी मार खाकर यद्यपि उनके अधिकांश सैनिक मर चुके थे तथापि उन्होंने जरा भी हिम्मत न हारी। वह पहिलेसे भी अधिक साहस और उत्साहके साथ अपने सैनिकोंको उत्तेजना देने लगीं। उन्हें उस दिन जैसा परिश्रम करना पड़ा वैसा शायद उन्हें अपने सारे जीवनमें कभी नहीं करना पड़ा था। वह जहाँ जिस बातकी कमी एवम् अव्यवस्था देखतीं वहाँ पहुँच जातीं और वहाँका उचित प्रबन्ध कर देती थीं। यही कारण था कि उनके बचे बचाये सैनिक खूब उत्साहित और उत्तेजित होकर लड़ रहे थे। दिनभर उभय पक्षोंकी ओरसे बन्दूक कड़ाबीन और तोपोंकी मार पर मार हो रही थी। यद्यपि उस समय तक अंग्रेज़ बड़ी वीरता शूरता एवम् साहसके साथ लड़े थे, उनकी सेना महारानी की सेना से कई गुनी अधिक थी तथा उनका एक-एक सैनिक युद्ध विद्यामें प्रवीण था, तथापि महारानी लक्ष्मीबाईने अपने स्वपराक्रमके बल पर उन्हें ३१ मार्चतक किलेमें न घुसने दिया। *

---

* इसी दिन रातको महारानी लक्ष्मीबाईने एक विलक्षण स्वप्न देखा। स्वप्नमें उनके सन्मुख एक गौरवर्ण, मध्यम वयस्ककी सुन्दर सौभाग्यवती ललना खड़ी थी। उसकी नासिका सुदीर्घ, केश कलाप काले, त्वचा सुकोमल, बदन गठीला, भाल विशाल, नेत्र विस्तृत और काले थे। वह रक्त-वसन परिधान किये, सब आयुधों एवम् आभूषणोंसे सुसज्जित,

इसी समय महारानी लक्ष्मीबाई ने युद्धके आरम्भमें पेशावाको पत्र लिखकर जो सेना मांगी थी, वह भी महारानीकी सहयताके लिये पहुँच गयी। पेशवाके सेनापति तात्याटोपी अपने साथ १५,००० सैनिक लेकर झाँसीके निकट पहुँच गये। किन्तु उनके इस आगमनका समाचार अंग्रेज़ों से छिपा न रहा। सर ह्यू रोज़ उस समाचारको सुनकर क्षणमात्रके लिये चिन्तित होगया। परन्तु उसने उसी क्षण अपने उर्वरा मस्तिष्कमे एक अद्भुत युक्ति खोज निकाली। वह दिन १३ मार्च का था। झाँसीकी सेनासे लड़ते लड़ते अंग्रेज़ोंको ६ दिन हो चुके थे। उनकी सेना यद्यपि विशाल थी तथापि महारानीके संगठित आक्रमणसे वे ढीले पड़ चुके थे। अंग्रेजी सेनाका अधिकांश भाग क़िलेको घेरने, उसपर धावा करने और उपयुक्त स्थानों पर नाकेबन्दी करनेमें नियुक्त हो चुका था। ऐसी दशामें यदि सर ह्यू रोज अपनी उस सेनाको उसके निश्चित स्थानोंसे हटा लेते तो उनके हाथसे क़िलेका निकल जाना निश्चित था। इसी विचारसे प्रेरित होकर उन्होंने उस दिन रातके समय पहिली ब्रिगेडके कुछ साहसी सिपाहियों को गुप्त रूपसे कालपीके मार्ग पर भेज दिया तथा वहाँ दो भयङ्कर तोपें लगवा दीं। इस प्रकार ओरछा नगरके पथपर तात्याटोपी की सेनाको मार्गमें ही रोक-

---

अञ्चल बान्धे हुये वीरवेषमें किले के बुर्जपर खड़ी थी। उसके हाथ फैले हुये थे और वह अंग्रेजोंकी तोपोंसे फेंके हुए लाल-लाल गोलोंको बड़ी वीरता और शूरताके साथ अपनी हथेलीपर ले रही थी तथा महारानीकी ओर संकेत कर कह रही थी कि, 'देख,--इन अग्नि-पुष्पोंको झेलते-झेलते मेरे हाथ किस तरह काले एवम् जर्जर हो गये हैं।

नेकी व्यवस्था कर, इधर शहरके भीतरसे लोगों का आना जाना बिल्कुल बन्दकर दिया एवम् रातभर क़िलेपर तोपोंकी मार जारी ही रहने दी।

तात्याटोपी पेशवा नरेशके शूरवीर आश्रितोंमेंसे थे। उन्होंने बाजी-रावके पुत्र नाना साहब पेशवाको अंग्रेज़ोंसे विद्रोह करते समय भारी सहायता दी थी। वह अंग्रेज़ोंके कट्टर शत्रु थे। उन्हींके कारण १८५७ का सैनिक विद्रोह इतिहासके पृष्ठोंमें इतना अमर हो गया है। उनके सम्बन्ध में ईस्वी सन् १८५७ के विलायत-स्थित डेली न्यूज़ नामक समाचार पत्र में इस तरह लिखा था—"तात्याटोपी एक नीच कुलका महाराष्ट्र ब्राह्मण है। उसकी अवस्था प्रायः ४० वर्षकी है। वह बड़ा साहसी पराक्रमी, एवम् शूरवीर है। उसका चेहरा भरा हुआ एवम् तेजस्वी है। उसके नेत्रोंसे एक प्रकारकी विचित्र चमक निकला करती है। उसका बदन गठीला, क़द नाटा, विशाल भाल, उन्नत मस्तिष्क और रङ्ग गोरा है। वह सदा सादी पोशाक पहिनता, सादा भोजन करता और डाका डालने एवम् लूट–मार करनेका काम करता है। वह यद्यपि अशिक्षित है तथापि परले सिरेका धूर्त और बुद्धिमान् है। अपने साथियों पर वह विशेष स्नेह रखता है। जिसके कारण उसके साथ हज़ारोंकी संख्या में शूरवीर पुरुष रहते हैं। वह अकेला कभी नहीं घूमता। उसके साथ सदा २०।२५ अङ्गरक्षक रहते हैं। उसकी बातोंमें वह जादू है कि, वह जिसे चाहता है, अपने वशमें कर लेता है। गरीबों को गुप्तदान देने एवम् श्रीमानों का लूटनेका उसे विशेष शौक़ है। वह दिन रात घोड़े पर सवार होने परभी नहीं थकता। एक दिनमें १२५ मील दौड़ लगाना उसके लिये एक मामूली बात है। वह अपनेको नाना

साहब पेशवाका प्रतिनिधि बतलाता है।" इत्यादि० २। उनकी शूरताके सम्बन्धमें एक दूसरे अंग्रेजी ग्रन्थकार ने उन्हें इटलीके गैरीवाल्डोकी उपमा दी है। अस्तु,

ईस्वी सन् १८५७ की १ अप्रैलके दिन प्रातःकाल ही से अंग्रेजों और तात्याटोपीमें भिड़न्त हो गयी। तात्याटोपी की विशाल सेनामें उस समय ग्वालियरकी कैण्टिनजण्ट फ़ौजभी थी, जिसने कानपुरमें जरनल विण्ढमको सेनाको पराजित किया था। तात्याटोपीकी सेना अंग्रेजोंके मुट्ठीभर सैनिकोंको देख यह समझ रही थी कि विजय तो निश्चयही उसीके हाथ है। उसे अपने शत्रुकी युक्ति एवम् सामर्थ्यका कुछभी ज्ञान न था। यही कारण था कि, युद्ध आरम्भ होतेही पेशवाकी सेनाका एक भाग अचेतावस्थामें महारानी लक्ष्मीबाई की सहायताके हेतु ज़ोरसे किलेकी ओर बढ़ता चला गया। किन्तु ज्योंहीं वह अंग्रेजों के पहिले हीसे बिछाये हुए मकड़जालमें पहुँचा त्योंही उसपर उसके दाहिनी ओर से कप्तान लाइट फूटकी अश्वारोही सेना तथा कप्तान प्रेटो जानकी सेनाने एवम् बाईं ओरसे सरह्यूरोजकी तोपोंने भीषण रूपसे आक्रमण किया। पेशवा की सेना अंग्रेजोंकी इस दोहरी मारसे खाकर घबराती हुई इधर उधर भागने लगी। तात्याटोपी अपनी इस विलक्षण हारको देखकर बौखला उठे। उन्होंने अपनी सेनाको अंग्रेज़ी पल्टनों पर तोपें दागने की आज्ञा देदी। कुछ देरतक उनकी सेनाने खूब पराक्रम दिखलाया किन्तु अंग्रेजोंका आक्रमण पहिलेहीसे सुनिश्चित सुनियन्त्रित एवम् दोहरा होनेके कारण विजय उन्हींकी रही। तात्याटोपी की सेनाको हार मान कर भागना पड़ा। इस समय उनकी निजी सेना उस पराजित हुई

सेनाके प्रायः २ मील पीछे बेतवा नदीके तटवर्तीय जंगलमें छिपी थी। सर ह्यूरोज़को उसका समाचार गुप्तचरों द्वारा पहिले ही से अवगत हो चुका था। उन्होंने तत्क्षण कप्तान लाइटफूटके आधिपत्यमें "ईगल ट्रूप" के चार तोपखाने तथा 'फील्डबैटरी'का एक पथक देकर उस ओर भेज दिया। तात्याटोपीकी सेनाने अंग्रेज़ोंको अपनी ओर आते देख जंगलमें आग लगा दी। किन्तु इससे अंग्रेज़ ज़रा भी विचलित न हुए। वह बराबर वहाँ तक बढ़तेही गये। दोनों सेनाओं का सामना होतेही एकबार गहरी मुठभेड़ हो गयी। दनादन उभयपक्षीय तोपोंका घनघोर गर्जन आरम्भ हुआ। अंग्रेज़ो सेना बड़े साहस और हिम्मतके साथ बेतवा नदी पार कर गयी। उसके पार कर चुकने पर उसका उत्साह और भी चौगुना हो गया। वह भूखे शेरकी नाईं तात्याटोपीकी सेना पर टूट पड़ी। तात्याटोपी की विद्रोही सेना अंग्रेज़ों के आक्रमणको सम्हाल न सकी और भाग निकली। सर ह्यूरोज़ने अपने सैनिकोंके साथ प्रायः १६ मील तक उसका पीछा किया और उसकी सारी युद्धोपयोगी सामग्री छीन ली। तात्याटोपीकी सेनाके साथ आयी हुई बड़ी बड़ी तोपें वज़नमें भारी होनेके कारण उनके पहिये बेतवा नदीके किनारेकी रेतमें धुस गये जिसके कारण उसे उन्हें वहीं छोड़ जाना पड़ा। अंग्रेज़ोंको अनायास ही वह सब सामान मिल गया! नित्य विजयी तात्याटोपीकी सेनाने उस समय ऐसी पछाड़ खायी थी कि उसे भागते भागते सांस लेनेका भी अवकाश न मिला। उस युद्धमें वीरवर तात्याटोपीके प्रायः १५०० आदमी खेत रहे।

सर ह्यूरोज को इस विजयसे बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने इस

प्रसन्नतामें मनही मन झाँसीका किला लेनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि, २३ मार्चसे लेकर ३ अप्रेल तक अंग्रेजी सेनाने महारानी लक्ष्मीबाईसे जो युद्ध किया था, उसमें अंग्रेज़ोंको सारी हेंकड़ी भूल गयी थी। उस अवधि में महारानी ने जिस तरह सर ह्यू रोज़ एवम् उनकी अधीनस्थ सेनाके दांत खट्टे किये थे, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण सर ह्यू रोज़के मुँहसे निकले हुए इस वाक्यमें मिलता है:—

"The Ranee was the bravest and the best military leader of the rebels."

महारानी लक्ष्मीबाईने अपने मुट्ठी भर अशिक्षित, अनुभवहीन एवम् अनियन्त्रित सैनिकों को लेकर जिस वीरताके साथ लगातार ११ दिन तक झाँसीका क़िला बचाया था, तथा अंग्रेज़ोंकी सुविशाल सुनियन्त्रित एवम् सुशिक्षित सेनामें वह 'हाय तौबा' मचा दिया था कि यदि और कुछ दिनों तक महारानी लक्ष्मीबाई वैसीही बलवती बनी रहती तथा अंग्रेजोंकी तात्याटोपी पर विजय न होती तो निश्चय ही सर ह्यू रोज को महारानीके सन्मुख नतमस्तक होना पड़ता। तात्याटोपी की हार ही तात्कालीन मृतवत् अंग्रेजी सेना के लिये प्राणदात्री संजीवनी सिद्ध हुई। उनके हाथ अनायासही युद्धोपयोगी समान लगा। साथही साथ उनको निराश सेना में आशा और उत्साहकी बिजली भी दौड़ गयी।

किन्तु उधर तात्याटोपीकी हार सुनकर महारानी की सेनामें भीषण हाहाकार मच गया। उनके बचे बचाये सैनिकोंमें निराशा छा गयी। मि० रोज़ने आक्रमणके लिये यही अवसर अत्युत्कृष्ट समझा। उन्होंने लगे हाथ अपनी सेनाके तीन विभाग कर डाले। उनमेंसे पहिलेका नाय-

काव मेजर गालको, दूसरेका लेफ्टिनेण्ट कर्नल लिहेल, कप्तान राबिंन्सन तथा ब्रिगेडियर स्टुअर्डको तथा तीसरे का लेफ्टिनेण्ट कर्नल लोथ और मेजर स्टुअर्टको दे दिया। पश्चात् पहिले विभागको क़िलेके पश्चिमी तटसे दूसरेको दाहिनी ओरसे तथा तीसरेको बायीं ओर से आक्रमण करनेकी आज्ञा दे दी।

इस प्रकार सारा कार्यक्रम तयकर चुकने पर उस दिन प्रायः तीसरे पहर उक्त सेनाओंने क़िलेपर धावा बोल दिया। पहिले विभागकी सेना सीढ़ियों द्वारा क़िलेके भीतर प्रवेश करनेका प्रयत्न करने लगी। दूसरे विभागके सैनिक तलवार और बन्दूकें लेकर सामनेकी लड़ाई लड़ते हुए शहरके भीतर प्रवेश करनेका उद्योग करने लगे। किले के रक्षकों को यह समाचार ज्ञात होतेही उन्होंने भयसूचक भेरियाँ बजाकर प्रासादके अन्तर्गत सैनिकोंको सचेत कर दिया। वे इस आकस्मिक विपदाका समाचार पाकर अत्यन्त भयभीत हुए। उनके अधिकांश साथी १२ दिन के भयङ्कर युद्धमें धराशायी होकर वीरगतिको प्राप्त होगये थे। अंग्रेज़ों की गरनाली तोपोंकी मार, ११ दिन तक अहर्निश झेलते झेलते झाँसी का प्रासाद भी जीर्ण शीर्ण हो चला। उसकी सहनशक्ति अब थोड़े दिनकी मेहमान थी। महारानी के सैनिक एक तो योंही अनुभव-शून्य तथा थोड़े थे, दूसरेके उनके अधिकांश साथी भी समाप्त हो चुके थे, तीसरे क़िलेकी असमर्थता का भी उन्हें पता चल गया था, चौथे तात्याटोपीके पराजयका समाचारभी उन्हें ज्ञात होगया था। इन चारों महत्त्वपूर्ण कारणोंके कारण उनको अत्यधिक निराशा हुई! वह बिलकुल हताश हो गये। महारानी लक्ष्मीबाई उनके इन मनो-

विकारों को भली भांति जानती थीं । उनको भी अबतक कईबार क्षणिक निराशाका अनुभव हो चुका था । इसीलिये जब उन्होंने उक्त भयसूचक भेरियोंकी ध्वनि सुनी तब उन्होंने अपने सैनिकोंको बुलाकर उन्हें अत्यन्त गम्भीर शब्दों एवम् प्रभावशाली वाक्यों में उनके कर्त्त-व्याकर्त्तव्य एवम् मनुष्य मात्रके जीवन मरण सम्बन्धी महत्व की बातें समझा दीं । यह भी समझा दिया कि उन्होंने अंग्रेज़ोंसे जो युद्ध ठाना है, वह पेशवाकी सेनाके भरोसे अथवा अपने स्वार्थसाधनकी लालसासे नहीं, अपितु झाँसी प्रान्त की सारी प्रजाके स्वातन्त्र्य, स्वधर्म एवम् स्वाभिमान की रक्षाके लिये । उनके उस भाषणका प्रभाव उस सेनापर अच्छा पड़ा । वह महारानीके भाषण को सुनकर अत्यन्त प्रोत्साहित एवम् उत्तेजित हो उठी । महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने सेनानायकों को प्रसन्न करनेके हेतु उनमें स्वर्ण कङ्कण वितरण कर दिये । पश्चात उन्हें उनके कार्यक्रम बतलाकर वह स्वयम् हाथमें नङ्गी शमशेर लेकर युद्धस्थली की ओर पिल पड़ीं ।

गुलाम गौसखांने विकराल रूपसे अंग्रेजी सेनापर गोले दागना आरम्भ किया । कुँअर खुदाबख्श प्रभृति सेनानायक अपने अपने मोर्चों

रम उभयपक्षीय तोपोंकी गड़गड़ाहट, शमशेरोंकी
की पड़पड़ाहटसे सारा वायुमण्डल गूंज उठा ।
ठ गया । पन्द्रह पन्द्रह मिनिटोंपर हर हर
के नारे लगने लगे । घण्टोंतक उभय सेनायें
में एक दूसरेके विरुद्ध डटी रहीं ।
ा । सर ह्यूरोज़ने अपने

सब गोलन्दाज़ोंको एकही साथ सबकी सब तोपें दागनेकी आज्ञा दी। उनके मुखसे निकलनेवाले गरनालो गोले पर्वतको भी विदीर्ण कर देने वाले थे। अंग्रेजोंने तोपोंके अविरल मारसे किलेके जीर्णशीर्ण तटों में बड़े२ छेद कर दिये। भीतर राजमहलको भी उन गोलोंसे बड़ी हानि पहुँची। महलके भीतर 'श्रीगणेशका' एक नयन मनोहर मन्दिर था। उसे झाँसीका समाज * "आरसे महल" के नामसे सम्बोधन करता था। अंग्रेजोंके एक भयङ्कर गोलेके आघातसे वह चकनाचूर होगया। उसे गिरते देख तथा किलेके तट को प्रायः नामशेष होते देख झाँसी की सेना घबड़ा उठी। किन्तु इसी क्षण महारानी लक्ष्मीबाईने वहाँ पहुँचकर उन लोगोंको दिलासा देते हुए अपने गोलन्दाजों को सबकी सब तोपें एक साथ जिनमें भवानी शङ्कर, कड़क बिजली, घनगर्ज, महाकाली इत्यादि तोपें प्रमुख थीं, दागनेकी आज्ञा दी।

इसके एक ही क्षण पूर्व अंग्रेजी सेना विजयोन्मत्त होकर शहर के मुख्य फाटक पर आक्रमण करनेके हेतु आगे बढ़ी। उसी समय महारानी के उक्त आदेशानुसार किलेपरसे तोपों का विकराल अग्निवर्षा आरम्भ होगयी थी। ? उसमें पड़कर अंग्रेज़ों की जो दुर्गति हुई,

* "आरसे महल" का शुद्ध अर्थ है,–शीशा भ...
राजमहलमें जो गणेश मन्दिर था, उसमें अधि...
लगे थे। दीवार, मिनारें दरवाज़े इत्यादि सब...
प्रतिवर्ष भाद्रपद मास में चतुर्थीके दिन...
झाँसीकी सारी प्रजा सम्मिलित हो...

? No sooner...

उसका वास्तविक चित्र-चित्रण डाक्टर जो साहबने अपने ग्रन्थमें बड़ी ही उत्तमता के साथ किया है । उस समय झाँसोकी सेना अपने जी जानपर उतारू होकर अंग्रेजों से लड़ रही थी । उसके भीषण गोलीबारी को देख

---

towards the gate than the enamy's bungles sounded and a fire of indescribable fierceness opened upon us from the whole line of the wall and from tho lowers of the fort everlocking this site. For a time it appeared like a sheet of fire, out of which burst a storm of bullets, round shots and rockets, destined for our annihilation. We had upwards of two hundred yards to march through this friendish fire and we did it and the Sappers p'anted the ladders against the wall in three places for the stormers to ascend, but the fire of the enemy waxed stronger and amid the chaos of sounds of vallies of musketry and roaring of canon, and hissing and and bursting of rockets, stink-pots, infernal machines, huge stones, blocks of wood and trees, all hurled upon their devoted heads, the men wavered for a moment and sheltered themselves

कर अंग्रेजी सेना घबड़ा उठी। इसी समय ले० मेकलोजान, ले० बोनस, ले० फाक्स प्रभृति वीरोंने रङ्ग कुरङ्ग देखकर अपने प्राणोंका मोह छोड़ दिया और बड़ी वीरताके साथ हिम्मत बान्धकर सीढ़ोके सहारे शहरके तट पर चढ़ने के लिये आगे बढ़े। किन्तु उनकी यह चेष्टा 'वामन होकर चन्द्रको' हाथ लगानेकी चेष्टा करनेके सदृश्य थी। प्राणोंपर तुली हुई झाँसीकी सेनाने उन्हें इस उद्योगमें सफलता न मिलने दी। उसने उन्हें गाजर मूली की तरह काट गिराया और अपने शहर और किलेकी रक्षा की।

---

behind stones. But the ladders were there and there the sappers, animated by the heroism of their officers, Keeping firm hold until a wound or death struck them down beneath the walls, It seems as though pluto and the furies had been loosed upon us; and inside bungles were sounding and tomloms beating madly, while the Canon and the musket were booming and rattling, and carrying death among us fast. At this instant on our right three of the ladders broke under the weight of men, and a bungle sounded on our right for the Europeans to retire!" Centrl India. P. 254.

अपनी इस तरह हार होती हुई देखकर मि० ब्राकमम नामक एक सेनानायकको अत्यन्त क्रोध हो आया। वह बड़े त्वेष से आगे बढ़ा और महारानी की सेनामें घुसकर उसका ह्रास करने की चेष्टा करने लगा। दूसरी ओर ब्रिगेडियर स्टुअर्ट तथा कर्नल लोथ अपने २५ वें और ८६वें पैदल पथकोंको लेकर ओरछा दरवाजेकी ओर बढ़े और उसे अपने हस्तगत कर लिया। झाँसीशहर की सेना ओरछा दरवाज़े को हाथसे जाते देख अत्यन्त भयभीत हो उठी और हथेली पर सिर लेकर अंग्रेज़ों से भिड़ गयी। किन्तु उसकी संख्या अत्यन्त थोड़ी होने के कारण अंग्रेजी सेनासमुद्र उसके रोके न रुका। अंग्रेज़ी सैनिक बरसाती टिड्डी दल की तरह शहरमें घुसते ही चले गये। दक्षिण ओर की अंग्रेज़ी सेना को इस तरह विजय लाभ करते देख दाहिनी ओर के अंग्रेज सैनिकोंने हिम्मत बान्धी और वह पुनः सीढ़ियोंके सहारे क़िलेके तटपर चढ़नेकी चेष्टा करने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि, इस बार भी झाँसी के बुन्देले वीरोंने आक्रमणकारी अंग्रेजों को अच्छी तरह अपनी तलवार का जौहर दिखलाया, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अन्ततक क़िले की रक्षा न कर सके। * थोड़ेही अवकाशमें किलेके दक्षिण तट पर सहस्त्रों गोरे चढ़ गये।

उधर ओरछा दरवाज़ेके हाथमें आतेही सर ह्यू रोज़ने झाँसीकी सेना को वहाँसे मार भगाया और शहरकी ओर अग्रसर होते हुए झाँसी के राजमहल पर आक्रमण करनेका निश्चय किया।

---

* किलेके तट पर सीढ़ियोंके सहारे चढ़नेमें दूलाजी बुन्देला नामक एक विश्वासघाती सरदारने अंग्रेजोंकी बड़ी सहायता की थी। कहते हैं कि, इस उपकारके बदले अंग्रेजोंकी ओरसे उसे दो गाँव जागीर में मिले थे।

पलायन——अंग्रेज़ोंको क़िलेका तट पार करते तथा ओरछा दरवाज़ेसे झाँसी शहरके भीतर प्रवेश करते देख वीर शिरोमणि महारानी लक्ष्मीबाई के हृदयकी क्या दशा हुई होगी इसकी कल्पना करनाही मानो दुःखकी चरम सीमा तक पहुँच जाना है। इसमें सन्देह नहीं कि, जो वीर अबला, नहीं, नहीं, आर्य्यदेवी! अपने पतिदेवके पश्चात्, उनके नाम और कीर्तिकी रक्षाके हेतु सबला बन कर, न्यायोचित उपायों का आश्रय ले, अधिकार, शासन और शक्तिसे उन्मत्त हुए धूर्त-शिरोमणि आततायियोंसे बराबरी का और न्याय्य अधिकार जतलानेके हेतु लड़ी; जिसने अपनी अनुपम राजभक्ति, उत्तम सहिष्णुता और आदर्श प्रेम की पराकाष्ठा से संसारको सहनशीलताकी चरम सीमाके दर्शन करा दिये और दिखला दिया कि सासन और शक्तिसे उन्मत्त हुआ समाज किस प्रकार मनुष्यसे राक्षस बन जाता है एवम् अशक्त समाजकी नम्रता और सहिष्णुताकी ओर दुर्लक्ष कर उसे अपने दानवी पञ्जेमें दबा रखनेकी चेष्टा करता है। जिसने अपने उदाहरणसे सिद्ध कर दिया कि, उत्कट सहनशीलताही 'क्रान्ति' की जननि है, नारीके अनाड़ी हृदय में भी राज्य सूत्र संचालन करने की क्षमता है, अतिशय अत्याचारों से त्रस्त अबला प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर सबला बन सकती, उस अत्याचारप्रिय पशुको अपना भीषण पराक्रम दिखला कर नाकों चने चबवा सकती, उसकी विशाल सुशिक्षित, साहसी एवम् सुरक्षित सेनाके साथ अपने मुट्ठीभर अशिक्षित, कर्तव्य शून्य एवम् अरक्षित सैनिकों को लेकर १२ दिन तक अविरल रूपसे लड़ सकती तथा उसके एवम् उसके साथियों के छक्के छुड़ा सकती है, वही उस पर्वतप्राय दुःखको सह सकती है, जिसको महा-

रानी लक्ष्मीबाईने अंग्रेजोंके किलेमें प्रवेश करते समय झेला था। वह अपनी पराजय और अंग्रेजोंकी विजय देख, अत्यन्त दुःखी हुईं। किन्तु उनका वह दुख दुःख नहीं था, जो मनभर रो लेने से धुल जाता अथवा कालावधिके पश्चात विस्मृतिके बादलोंमें लोप हो जाता। उसकी चोट वह चोट थी जिसने उस वीर रमणीके हृदय को सदाके लिये चुटीला बना दिया। महारानीके हृदयमें लगी हुँई चोट सदाके लिये ताजी रहने वाली थी। उसकी दारुण वेदना ने क्षणभर के लिये उन्हें चेतनाशून्य बना दिया। वह निमेषमात्रके लिये किंकर्तव्य विमूढ़ होगयीं। उनके नेत्रोंकी चञ्चल पुत्तलिकायें फैलकर किसी एक विशिष्ट भावसे किलेके तटकी ओर दृढ़ रूपसे जम गयीं। चेहरा गम्भीर होगया। विशाल भालपर सिकुड़न पड़ गयी। नाकके नथुने धौंकनीकी तरह चलने लगे। श्वासोछ्वास जोरों से चलने लगे। हृदय नगाड़े की तरह धड़कने लगा। कानोंसे सहनाईकी तरह सॉंय सॉंय शब्द होने लगे। धमनियोंमें तीव्रवेग से रक्तसंचार होने लगा। होंठ ज़ोरोंसे फुर फुराने लगे। मुखमण्डलपर लाली छा गयी। वह चेतनाशून्य पत्थर की प्रतिमा बनकर शहरमें घुमनेवाले सहस्रों अंग्रेज़ सैनिकोंको टकटकी बाँधकर देखने लगीं। उन्हें देखते देखते अकस्मात् क्रोध चढ़ आया। उनकी शून्यवृत्ति प्रतिहिंसा के प्रलयङ्कर मनोभावों में परिवर्त्तित होगयी। उनके मुहसे अकस्मात् निकल पड़ा—

अन्तमें दुर्दैने मेरे सारे किये कराये खेलपर इस तरह पानी फेर ही दिया। वह पुनः रुक गयीं और बोलीं—'अस्तु, कोई चिन्ता नहीं, दैवसे बढ़कर कर्त्तव्य है। दैव भलेही मनुष्य को ठुकरा दे किन्तु कर्त्तव्य तो

नहीं ठुकरा सकता !' उन्होंने एक दीर्घ-श्वास लेकर कहा—ओह ! १२ दिनके भयङ्कर संग्रामके पश्चात् भी मेरे जीते जी झाँसी अंग्रेज़ोंकी हो जाये और मैं चुपचाप खड़ी खड़ी ताका करूं ? नहीं, यह कदापि नहीं होगा। मेरे जीते जी, जब तक मेरे हाथमें कृपाण है, मेरे तनमें प्राण है, मेरी झाँसी—मेरीही रहेगी।'

वह इन अन्तिम वाक्योंके उच्चारण के साथ साथ विलक्षण रूप से उत्तेजित हो उठीं। उनकी आंखों से क्रोध की चिनगारियां छूटने लगीं। भौहें तन गयीं। तलवार म्यानके बाहर हो गयी। उन्होंने एक बार पुनः अंग्रेज़ोंसे अन्तिम युद्ध करनेका निश्चय किया। वह भूखी सिंहनी की भांति तड़पकर तलवार चमकाती हुई अपने बचे हुए एवम् निज़ी अफ़गान सैनिकोंको साथ लेकर, जो प्रायः १॥ हज़ारकी संख्या में थे, क़िले के नीचे उतरीं और उसके सदर फाटकको पार करती हुई दक्षिणी फाटक की ओर बढ़ी। वहाँ पहुँचतेही उनकी भव्य मूर्ति ऐसी भयङ्कर प्रतीत होती थी, मानो रक्तबीज का संहार करनेके हेतु साक्षात् महाकाली महारानी लक्ष्मीबाईके रूपमें अवतीर्ण हुई हो ! उन्होंने तटको पारकर आये हुए गोरोंको, जो प्रायः एक हजारकी संख्यामें थे, इस भयंकरताके साथ अपनी तलवारका पानी पिलाया कि, उनमें से अधिकांश रणशार्दूल *'ज़ारडा' नदीका पानी पिये बिनाही अपने धर्म-पिता ईसामसीहकी पुनीत सेवा करनेके हेतु 'क्रिस्ट-लोक'में जा बसे। इसी समय उनके अन्य अफ़ग़ान

---

* जिस तरह हमारे हिन्दू धर्मशास्त्रमें भगवती भागीरथी परम पुनीत मानी जाती है, उसी तरह ईसाई लोग 'ज़ारडा'को मानते हैं।

सैनिक भी बचे बचाये अंग्रेज़ों पर पिल पड़े। दोनो दलोंमें खूब दाव-घात होने लगे। वीर अफ़गानियों ने अपनी ज़बर्दस्त शमशीरों के सामने अंग्रेज़ोंकी एक न चलने दी। वह उनपर खेतके भुट्टों की तरह हाथ साफ करने लगे।

गोरोंने जब देखा कि, खुली लड़ाई लड़कर देवी कात्यायनी स्वरूपिणी महारानी लक्ष्मीबाई एवम् उनके भूखे सिंहों के समान पराक्रमी अफ़गान सैनिकोंसे पार पाना केवल कठिनही नहीं असाध्य है, तब वह दो दो चार चार करके इधर-उधर भाग गये और घरोंकी आड़ लेकर स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाई एवम् उनके सैनिकों पर गोलियाँ चलाने लगे। इसी समय अंग्रेज़ोंकी कुछ और सेना महारानीके पीछे से शहरमें घुस आयी और उनके दल पर गोलियाँ चलाने लगी। महारानी लक्ष्मीबाई अपने दोनों ओरसे गोलियां चलते देख क्षण भरके लिये मन्त्रमुग्ध हो गयीं। इसी समय उनके दलमेंसे एक ७५ वर्षीय वृद्धने आगे बढ़कर महारानीको तरह तरहसे समझाया कि, इस समय क़िलेमें वापिस लौट जानाही उचित है। कारण अंग्रेज़ोंकी समुद्रकी तरह बढ़नेवाली सेनाके सामने, जो शहरके सभी दरवाज़ोंसे टिड्डीदलकी तरह भीतर घुस रही है और घरोंकी आड़ लेकर बन्दूकें चला रही है, महारानीके मुट्ठीभर सैनिक टिक नहीं सकते। उससे अच्छा तो यही है कि, क़िलेमें वापस लौटकर वहीं भावी प्रबन्धके सम्बन्धमें कुछ विचार किया जाय।" महारानीको उस वयोवृद्ध सरदारका यह विचार बहुत पसन्द आया और वह अपनी बची बचायी सेना लेकर क़िलेमें लौट गयीं।

उनके क़िलेमें लौटने पर कुछही अवकाशमें चारों ओरसे गोरे शहर

के भीतर घुस पड़े। उन्होंने वहाँ पहुँचतेही भीषणरूप से मारकाट मचा दी। वह मारकाट इतनी भयंकर थी कि, शायद् यमराजके दरवाजे पर भी उतनी भयंकर मारकाट न होती होगी। अंग्रेजों ने उस दिन दिन भर जिस तरह झाँसी शहरमें खूनकी वैतरणी बहायी थी, उसका चित्र चित्रण करना हम यहाँ पुस्तकके पन्ने रंगना समझते हैं। हाँ, उस सम्बन्धमें यहाँ इतनाही लिख देना पर्य्याप्त है कि, वह मार-काट, मार-काट नहीं, वरन् साक्षात् दानवों का मनुष्ययज्ञ था, जो उस दिन अंग्रेज सैनिकों ने झाँसी में कर दिखलाया। अस्तु,

झाँसी शहरमें अंग्रेज़ोंका शासन हो जानेपर, सर ह्यू रोज, कर्नल लोथ की ८६ वीं पल्टन साथ लिये झाँसीके राजमहलको हस्तगत करनेके हेतु आगे बढ़े। वहाँ पहुँचने पर महारानीके कुछ शूरवीर एवम् विश्वासी सैनिकोंने, जो राजमहल में रहते थे, बड़ी वीरताके साथ उनका मुक़ाबिला किया। उनका वह मुक़ाबिला करना, असम्भव को सम्भव बनानेकी चेष्टा करनेके सदृश था तथापि उन्होंने अपने कर्त्तव्य पालनकी दृष्टिसे वह किया अवश्य, और वह भी ऐसा किया कि अपने में से प्रत्येक के पीछे दस दस गोरे सैनिकों को लेकर ही पञ्चतत्व में मिले। गोरोंकी संख्या अधिक होने के कारण उन्हें विजय न मिल सकी। अंग्रेज़ोंने उनपर घरोंको आड़ लेकर गोलियां चलायीं और उनका नाम शेष कर दिया। पश्चात् महलको मनुष्यशून्य,—श्मशानतुल्य-बनाकर उसमें आग लगाकर, इतिहासके पन्नोंमें अपनी विचित्र वीरताका अमिट चित्र बना दिया।

Who

जिस समय उक्त राजमहल गगनचुम्बी अग्नि शिखाओंसे परिवेष्टित होकर पञ्चतत्वमें मिलनेकी तैयरी कर रहा था उससमय महारानी लक्ष्मी-बाई किलेके निजी दीवानखाने में बैठकर अपनी दारुण--दशापर विचार कर रही थीं। उससमय उनकी अन्तर्दृष्टिके सम्मुख अबतककी सारी जीवन गाथाओं का क्रमबद्ध स्मृतिचित्र अंकितहो होगया था और वह मनही मन उनका स्मरण करती हुई क्षण क्षणपर विभिन्न भावनाओं का अनुभव कर रही थीं। वह ज्यों ज्यों काल गव्हर में छिपी हुई बातोंका स्मरण करतीं तथा उनकी एक दूसरीसे तुलना करती जाती थीं त्यों त्यों उन्हें यही अनुभूत होता था कि, मनुष्यजीवन कभी एक समान नहीं रह सकता। जिस प्रकार समय परिवर्तनशील है उसी प्रकार मनुष्य जीवन भी परिवर्त्तनशील है। उसमें रद्दोबदल होना, सुखके पश्चात् दुःख और दुःखके पश्चात् सुख होना अनिवार्य है। वह इन सारी बातों का विचार करते करते घबड़ा उठीं। पतिवियोग के पश्चात् उनपर जो एक एक विपदा का पहाड़ टूटा उसका स्मरण होतेही उनका नारी-हृदय रो उठा। उनके नेत्रों ने भी एकान्त पाकर अपना बान्ध खोल दिया। वह खूब रोयीं यहाँ तक कि, अश्रुगङ्गा से सारा आँचल भींग गया। किन्तु कुछ शान्ति ? ऊंहू, उसका नाम भी न था। शान्ति की अपेक्षा जलन बढ़ गयी। अंग्रेजों के अत्याचारों की स्मृतियों ने उन्हें उन्मत्त बना दिया। वह अकस्मात् उठ खड़ी हुई और प्रबल वेगसे दीवान-खानेके छतपर चढ़नेके हेतु आ बढ़ी। नहीं मालूम उस समय उनके मनमें क्या था ! उनकी दशा उस समय ठीक एक जनसाधारण पागल की सी हो रही थी। वह झपटकर छत पर चढ़ ही गयीं।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक बार चारो ओर नज़र उठाकर देखा, ओह ! क्याही लोमहर्षपूर्ण काण्ड था। अंग्रेजोंने शहर भर में भीषण अग्निकाण्ड मचा रखा था। चारों ओर मार मार काट काट की आवाजें लग रही थीं। स्थान स्थानपर कितनेहो आबाल-वृद्ध स्त्री पुरुषों के शव पड़े थे। दशो दिशाओंसे करुण चीत्करें आरही थीं। यत्र तत्र-सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था। सारे शहरका वातावरण रोने गाने की ध्वनि से गूंज उठा था। महारानीसे प्रजाजनों की यह दारुण दशा देखी न गयी। उनका अन्तःकरण दुःखसे भर आया। वह निस्तब्ध होकर प्रायः आध घण्टे तक वहाँ खड़ी खड़ी अपनी प्रजा की दयनीय दशा पर आँसू बहाती रहीं। इसी समय उन्हें किलेके प्रधान फाटकके मुख्य संरक्षक कुँअर खुदाबक्स एवम् तोपखानेके प्रधान अधिकारी गुलाम गोष खाँ की मृत्युका समाचार विदित हुआ। इस शोक सम्वादको सुन-कर महारानीकी रही सही आशाओंपर भी पानी फिर गया। वह हताश हो गयीं। उन्होंने अन्य कोई उपाय न देखकर अपनी सेना के समस्त सरदारोंको अपने पास बुलवाया और उन्हें तमाम वास्तविक स्थिति समझा कर, उनकी राजभक्ति एवम् कर्तव्यनिष्ठा की सराहना करते हुए उन्हें झाँसीसे जैसे भी हो सके, प्राण बचाकर निकल जानेकी आज्ञा दी। अपने सम्बन्धमें उन्होंने केवल इतनाही कहा कि, वह 'गोला-बारूद' से भरी हुई कोठरीमें जाकर उसमें आग लगा देगी तथा अपने जीतेजी अपने शरीर को कभी भी गोरों का हस्तस्पर्श न होने देगी।

उनके इस विचारको सुनकर सरदारगण रो पड़े। उन्होंने-उन्हें मनुष्यके कर्तव्याकर्तव्य पूर्व संचित भाग्यकी क्षणिकता एवम् आत्म-

हत्याका पाप इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों का मर्म्म समझाते हुए उनके निश्चित विचारको छोड़नेके लिये बाधित किया। उन्होंने उन्हें यह सलाह दी कि, वह उस दिन रातको क़िलेके बाहर होकर शत्रुओं का घेरा तोड़ती हुई निकल भागें और कालपी में पड़ाव डालकर बैठी हुई पेशवाकी सेनासे जा मिलें।

निदान बहुत कुछ विचार करनेके उपरान्त महारानी को यह विचार पसन्द हुआ। उन्होंने मनही मन इस बातका संकल्प कर लिया कि, चाहे जो भी हो, वह अपनी नश्वर देहको अंग्रेज़ोंके साथ युद्ध करते हुये ही छोड़ेंगीं।

कुछ क्षण के उपरांत अर्थात् सन्ध्याकाल के समय उन्होंने अपना भविष्य कार्यक्रम स्थिर करते हुए अपने सब सेवकों को बुलाकर उन्हें यथायोग्य पुरस्कार दिये तथा उन्हें किलेके बाहर निकलने का गुप्तमार्ग बतला दिया। उनमें से कितनेही सज्जन एवम् नारी समूह महारानी की दारुण दशा पर बहुत रोया और उन्होंने उस दशामें भी महारानीसे उनके साथ रहनेकी अनुमति मांगी। महारानी ने घण्टों की 'हां-नहीं' करने के पश्चात् उन्हें अपने साथ ले लिया।

इस तरह अपने कतिपय विश्वासी सेवकोंको, जिनकी संख्या प्रायः २०० के करीब थी, साथ लेकर महारानी लक्ष्मीबाई मर्दाने वेश में किले के बाहर होनेको उद्यत हुईं। इस समय उनके साथ उनके पिताजी भी थे जिन्होंने मार्ग व्ययके लिये खज़ानेसे रुपयों की थैलियाँ निकाल कर अपने साथियोंमें बांट दीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने साथ एक हाथी लेकर उस पर चढ़े हुए हौदे में बहुतसा द्रव्य एवम् रत्न भी भर

लिये। यह हाथी उस छोटीसी सेनाके मध्यमें किया गया। महारानी लक्ष्मीबाई वीरवेशमें अपने शुभ्र अश्व पर आरूढ़ होगयीं। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र दामोदर रावको एक चादरमें लपेट कर अपनी पीठसे बान्ध लिया तथा घोड़ा दौड़ाकर जयशङ्कर-हर-हर महादेवकी प्रचण्ड ध्वनि करती हुई अपनी सेना सहित किलेके बाहर होगयीं।

क़िलेसे निकलनेके पूर्व उन्होंने अंग्रेज़ी सेनाके बलाबल का पूरा निर्णय कर लिया था। वह समझ चुकीं थी कि, केवल उत्तरी दरवाज़े के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर अंग्रेज़ोंका व्यूह अभेद्य है। अतः उन्होंने अन्य किसी ओर न बढ़कर उत्तरी दरवाजेसे ही कालपी जानेका निश्चय किया। जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई अपनी प्राणप्रिय राजधानीको अन्तिम नमस्कार कर झञ्झावतकी तरह प्रबल वेगसे घोड़ा दौड़ाती हुई भागी जा रही थीं उस समयका दृश्य देखने योग्य था। सहस्त्रों नागरिकोंने सड़कों पर खड़े होकर उस वीर बालाके अन्तिम दर्शन किये। महारानी लक्ष्मीबाई प्रसन्न अन्तःकरणसे उनसे विदा लेती हुई उत्तरी दरवाजेको पार कर गयीं। जिस समय वह उस दरवाजेके पास पहुँची थीं उस समय वहाँ अंग्रेज़ी सेना पहरा दे रही थी। उसके सेना नायक के पूछने पर महारानीने उत्तर दिया था कि, 'यह टेहरी की सेना है जो सर ह्यूरोज़की सहायताके निमित्त जारही है, वह उत्तर देते समय वहाँ ज़राभी नहीं रुकी अपरञ्च बराबर घोड़ा दौड़ाती हुई आगे निकल गयीं। अंग्रेज़ी सेनाने सशङ्कित होकर उनका पीछा किया। किन्तु क्या उप-योग?—जब चिड़िया उड़ गयी जालसे?

दरवाजेको पार करतेही महारानी लक्ष्मीबाईकी शान्त मुद्रा प्रशान्त

सागरमें उठे हुए प्रलयंकर तूफानकी तरह भयंकर बन गयी। उसके नेत्रों से क्रोधकी चिनगारियाँ छूटने लगीं। कोमल करकमल कालका कठोर भुजदण्ड बन गया। वह अपने पीछे आनेवाले एक एक अंग्रेजी सैनिक को अपनी कृपाणका पानी पिलाकर उसे सीधे यमपुरका मार्ग दिखलाती हुई आगे निकल गयीं। उस समय उनके साथ केवल १०।१२ सवार एक सईस और एक दासी मात्र थी। शेष सेना महारानी की तरह प्रबल वेगसे दौड़नेमें असमर्थ होकर पीछे छूट गयी थी। उसे अंग्रेजी सेनासे युद्ध करना पड़ा। अस्तु,

* अंग्रेजी सेनानायक सर ह्यूरोज़को महारानी लक्ष्मीबाईके भाग निकलनेका समाचार विदित होतेही वह आश्चर्यके कारण स्तम्भित हो रहे तथा आँखें विस्फारित कर बार बार अपने आश्रितोंका मुँह देखने लगे, मानों उनका उस समाचार पर किञ्चित् भी विश्वास नहीं है। किन्तु जब बार बार पूछने पर भी उन्हें उस समाचारका समर्थन करने वालाही उत्तर मिला तब तो वह माथा थामकर बैठ गये। उन्होंने तत्क्षण दाँतों तले उँगली दबायी। उनके मुँहसे सहज ही में निकल पड़ा "Indeed ! she is the only bravest and best military leader." वह गम्भीर बन गये। किन्तु तुरतही अपनेको सम्हालकर लेफ्टिनेण्ट वाकर को महारानी का पीछा करने की आज्ञा दी।

---

* महारानी लक्ष्मीबाई जिस वीरता साहस और चातुर्य्यके साथ अंग्रेज़ोंकी आखोंमें धूल झोंककर उनके देखते देखते हवा होगयीं, उसका चित्र चित्रण अंग्रेज़ इतिहासज्ञ कर्नल मेडोज़ टेलर ने इस प्रकार किया हैः—

लेफ्टिनेण्ट वाकर अपने साथ निजाम सरकारकी सेना का एक अश्वारोही पथक लेकर महारानीकी खोजमें निकल पड़ा। उसने २१ मील तक महारानीका पीछा किया। किन्तु व्यर्थ, अन्तमें उसकी यह चेष्टा विफलही प्रकट हुई।

"Atlast while yet much of night remained, one of the gates in a secluded part of the fortifications was opened and a sad procession issued forth. The Ranee and her sister or Companion dressed like men with a few of her chosen retainers, rode silently, from the portal into the gloom beyond... ... ... no one spoke except in whispers and the gate was closed and barred as the last man passed out. It was to be a ride for life that night; for the English cavelary petrols of the 14 th Dragoon, and the Hydrabad Contingent, were every where vigilant and to meet any of them was to insure certain death. How these men were evaded was never ascertained but the Ranee had perfect guides; she was a fearless rider and she pressed on at a rapid pace into the rough gungly country in which her best safety lay !"

महारानी लक्ष्मीबाईके क़िला छोड़कर चले जानेके दूसरे दिन अर्थात् ईस्वी सन् १८५७ की ५ वीं अप्रिलके प्रातःकालके समय लेफ्टिनेण्ट ब्रेगीने किले पर धावा बोल दिया। किन्तु किलेमें कोई हो तब तो?—वहाँ तो पहिलेहीसे यत्र तत्र सर्वत्र श्मशानकी तरह सन्नाटा छाया हुआ था। मि० ब्रेगी अपनी सेनाको लेकर जिस समय क़िलेमें पहुँचे उस उस समय वह ऐसा जनशून्य था कि खोजने पर भी उन्हें एक आदमी के दर्शन न हुए। किला बिना किसी लड़ाई भिड़ाईके अंग्रेज़ोंके हाथ लग गया। अंग्रेजी सेना इस विरोध रहित विजयसे बड़ी प्रसन्न हो उठी। मि० ब्रेगीने तुरत वहाँ विजयका झण्डा खड़ा कर दिया। अस्तु,

गत दिवस जो सेना महारानी लक्ष्मीबाई के साथ क़िलेसे नीचे उतरी थी तथा जो उनके साथ नगर पार न कर सकी, उसे गोरे बहादुरोंने बड़ी निर्दयताके साथ मार डाला। वह लोग भी अपनी शक्ति भर अंग्रेज़ोंसे टक्कर ले रहे थे। किन्तु एक विशाल सेना समुद्र के सम्मुख भला वह कहाँ तक टिक सकते थे? बेचारोंकी वही दशा हुई जो सागर के सम्मुख नदीकी हुआ करती है। रक्तपिपासातुर अंग्रेजी सेनासमुद्र के भीषण गह्वरमें मुट्ठीभर बुन्देले एवम् अफगान वीरोंकी प्राणगङ्गा अन्तर्धान हो गयी।

महारानीके पिता मोरोपन्त ताम्बे अपने साथ अतुल सम्पत्ति लिये महारानीके पीछे-पीछे भाग रहे थे। उन्होंने वह सारी सम्पत्ति हाथीपर लादी थी और उसे अपने मुट्ठीभर सैनिकोंके मध्य में कर आगे बढ़ रहे थे। उनका यह कार्य कहाँ तक उचित था, यह बुद्धिमान् पाठक स्वयम् समझ सकते हैं। संसारमें सम्पत्ति ही एक ऐसी वस्तु है, जिसका मोह

कोई संवरण नहीं कर सकता। इसीके पीछे आप्त-इष्ट-मित्र-कुटुम्बी जन एवम् राष्ट्र मर मिटते हैं। इसीके कारण संसारमें भयङ्करसे भयंकर परिवर्तन होते हैं। इसका नशा वह नशा है जो अपने आश्रयदाता को मिट्टीमें मिलाये बगैर चैन नहीं लेता। इसको देखकर कैसाही नीतिवान् और धर्म्मात्मा पुरुष क्यों न हो, अपना हृदय काबूमें नहीं रख सकता। विपत्ति के समय इसको अपने साथ रखनाही मानो विनाशकी जड़ है। जो इससे दूर है वही अमर है और उसीकी विजय है।

किन्तु हाय! कालचक्रके फेरमें फंसे हुए मोरोपन्तको इन बातोंका ध्यानही न रहा। जिस धनको वह अपने शेष जीवनके सुखों का साधन समझे थे, वही धन उनके मरणका कारण बन गया। वह जिस समय इस द्रव्य-कोषको लेकर भागे जा रहे थे, उसी समय किसी द्रव्य लोलुप नीचने उनकी जांघपर तलवार चला दी। उससे उन्हें दारुण वेदना हुई किन्तु वह उस ओर ध्यान न देकर धीरता पूर्वक भागतेही चले गये।

प्रातःकाल होते होते उन्होंने दतिया राज्यमें प्रवेश किया और एक तमोलीके यहाँ टिके रहे। किन्तु हाय! मनुष्य कितनाही भागे, कालकी क्रूर दृष्टिसे उसका लोप होना नितान्त असम्भव है। इसी ईश्वरीय नियमके अनुसार वह यहाँ भी सुखपूर्वक न टिक सके। पाषाण हृदय दतिया नरेशने समाचार पाकर उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली और उन्हें अंग्रेज़सरकारके सुपुर्द कर दिया।

झाँसी विजयसे उन्मत्त हुए सर ह्यू रोज एवम् राबर्ट हैमिल्टन उनको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दूसरे दिन दोपहरके दो बजे राजमहल के सम्मुख मोरोपन्तको फाँसी देदी।

बस, पाठकगण ! लार्ड डलहौसी की कामना पूरी हुई। झाँसी प्रान्त का मानचित्र लाल रङ्गसे रङ्ग गया। झाँसीका राजमहल महारानी लक्ष्मीबाईके पिताके रक्तमें स्नानकर सर्वदा के लिये अंग्रेज़ोंके आधीन होगयी।

*　　*　　*　　*

हत्याकाण्ड—महारानी लक्ष्मीबाईके झाँसीसे निकल जाने पर विजयी अंग्रेज़ी सेनाने झाँसीमें जो हत्याकाण्ड मचा रखा था उसका चित्र-चित्रण महाराष्ट्रके प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्रीयुत् चिन्तामणि विनायक वैद्य लिखित 'माझा प्रवास' नामक ग्रन्थमें बहुत ही उत्तमतासे और सत्यताकी कसौटी पर तौल कर लिखा है। उनका यह लेख केवल कल्पना एवम् विभिन्न परस्परविरोधी इतिहासोंके आश्रय पर ही निर्भर नहीं है अपितु आपने स्वयम् उन इतिहास प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा कर जो विश्वसनीय प्रमाण संग्रह किये हैं उन्हींके आधारपर वह लिखा गया है। झाँसीपतनके समय अर्थात् झाँसी में क्रान्ति होनेके आरम्भसे लेकर उसकी इतिश्री होने तक वहाँ श्री० गोड़से भट्ट नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते थे, जिन्होंने इस सम्बन्धमें अपनी आँखोंदेखी बातें लिखी हैं। उन्हीं बातोंका संग्रह उक्त लेखक महोदय की पुस्तकमें इस तरह मिलता है:—

"इधर गोरे सैनिक टिड्डीदलकी तरह चारो दरवाजोंसे झाँसी शहर में पिल पड़े और जो कोई भी सामने आया उसपर गोली चलाते हुए आगे बढ़े। उससमय उनकी रक्तकी प्यास इतनी बड़ी चढ़ी थी कि उन्होंने ८० वर्ष के वृद्ध एवम् ४ वर्षीय शिशु तक को न छोड़ा। आगे बढ़कर उन्होंने एक

ओर से नगरमें आग लगादी। पहिले पहल उनका अग्निकाण्ड आरम्भ हुआ हलवाईपुरे से। उस समय नगर में जो हाहाकार मचा था एवम् चारों ओर से जो मर्म्मभेदी करुण चीत्कारें उठी थीं उसका चित्रचित्रण करना असम्भव और इस क्षीण लेखनीके लिये सर्व्वथा असम्भव है। उस समय झाँसी नगरके निवासियोंकी दशा ठीक वैसीही थी, जैसी बकरियों के झुंडमें भेड़िया टूट पड़नेसे बेचारियोंकी हुआ करती है। जिधर देखो उधर ही भीषण भगदड़ मची थी। कितनेही लोग अपने प्राणोंके भयसे किसी गली कूचेमें, कितनेही सूखे कुओंमें, कितनेही पैखानोंमें, कितनेही खेतोंमें तो कितनेही अपनी मुछें मुड़ाकर स्त्रियोंके वेशमें छिपे थे। कितने लोग तो मारे भयके भागते भागते यमपुरकी ड्योढ़ीके उसपार पहुँच चुके थे।

नगरके मध्य में 'भिड़े' साहब नामक किसी सम्भ्रान्त महाराष्ट्रीय सरदार का एक बाग था। उसमें कितनेही लोग अपने प्राण बचाकर जा छिपे। कुछही देरमें वहाँ भी अंग्रेज़ी यमदूत अपना कर्त्तव्य पालन करने जा पहुँचे। उन्हें सामने प्रस्तुत देखकर उन छिपे हुए भीरुओंके हृदय काँप उठे और वह दीन होकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अंग्रेजी सेनाकी ओर देखते हुए उससे क्षमादान की प्रार्थना करने लगे। उस समय उनके कण्ठसे बोली बन्द होगयी थी। भयके कारण वह गूंगे बन गये और गिड़गिड़ाते हुए गोरों के पदकमल चूमने लगे।

उनकी यह दशा देखकर अंग्रेज़ी सेना के एक सेनापति को दया हो आयी। इसमें सन्देह नहीं कि, वह सेनापति मनुष्य था, वीर था, वीर के कर्त्तव्यको पहिचानता था, इसीलिये उसने वीर धर्म्मका पालन करते हुए उन शरणागत नगरवासियोंको अभयदान दिया और अपनी

अमर कीर्ति सर्वदा के लिये इतिहास में स्थायी बना रखी। उसने उसी क्षण उस बगीचेके समस्त फाटकोंमें ताले भरवा दिये और वहाँ कुछ सशस्त्र सैनिकोंका पहरा बैठाकर उन्हें ताकीद करदी कि, भीतरके भय-भीत जनों के बाल को भी धक्का न लगने पाये और न कोई भीतरका मनुष्य बाहर और बाहरका भीतरही जाने पाये। इस अमरनाम वीर सेनापति ने उस समय अपने इस अपूर्व कार्य से प्राय: २० हजार मनुष्यों को प्राणदान दिया था। धन्य है वह वीर और धन्य है उसकी जननी ! जिसने ऐसा वीर रत्न पैदा किया हो ! हम भारतीय सदा ऐसे वीरोंके उपासक हैं ! अस्तु,—

दूसरी ओर दानवी लालसासे उन्मत्त हुए यमदूत अपने उन्माद में मस्त होकर अन्धाधुन्ध लूटमार कर रहे थे। उनलोगों ने सोना, चाँदी, अलङ्कार, आभूषण, जवाहिरात इत्यादि लाखों रुपयेका धन लूट लिया। जो लोग उनको इस डकैतीका विरोध करते वे वहीं बन्दूकका शिकार बना दिये जाते थे और जो चुपचाप अपना सर्वस्व सौंप देते थे, उनकी बहुत कुछ गिड़गिड़ाने पर रक्षा हो जाती थी। किसी घरमें द्रव्य न मिलनेसे पर द्रव्यलोलुप उस घरवालेको भयङ्कर रूपसे खेला-खेला कर मारते थे। कितने ही लोगों के गलेमें धोतियोंके फन्दे डालकर उन्हें मूक पशुकी तरह घरके बाहर घसीटकर निकाला जाता और पीटा जाता था। उनके घर और दिवालें खोद दी जातीं और उसमें धन मिलते ही उनपर गोलियां चला दी जाती थीं। जो मनुष्य एक बार किसी अंग्रेज़ सैनिकसे लूटा जाकर पुनः दूसरे किसी सैनिक के नज़र पड़ जाता तो वह वहीं गोली से मार डाला जाता था। यह सच है कि, उस समय किसी

भी अंग्रेज़ सैनिकने किसी भी अबलापर जान बूझकर हाथ नहीं उठाया किन्तु कुछ कुलीन आर्य ललनायें अपनी बेइज्जतीके भयसे अपने आपही अंग्रेज़ सैनिकोंको दरवाजेपर पहुँचे देख, घरके पिछले हिस्सेमें बने हुए कुंओंमें कूदकर जान दे देती थीं। कहीं कहीं ऐसा भी हुआ कि, सैनिकों के घरमें घुसतेही उस गृहकी गृहलक्ष्मी अपने पतिदेव की ओर सैनिकोंकी बन्दूकोंका रुख हुआ देख चट उसके बदनसे लिपट गयीं और स्वयम् गोली खाकर सौभाग्य कुंकुम लूटती हुई सुरधाम पहुँच गयीं। गोरा सैनिक उस अबलाको गोली लगी देख, दुबारा गोली चलाता और उसके पतिदेवके प्राण हरण करता था। इस तरह कितनीही दृढ़ व्रतधारिणी आर्यकन्याएं अपने सौभाग्यकी लाज रखती हुईं सुरधाम पहुँच गयीं। किन्तु यदि न्यायकी दृष्टिसे लिखा जाय तो हम यही लिखेंगे कि उस समय किसी भी गोरे सैनिकने जानबूझकर किसी आर्य तरुणीका अपमान या हत्या नहीं की।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी इस पंक्ति को पढ़कर बहुतेरे पाठकों के मनमें सहसा यह प्रश्न उठ सकता है कि, जब उस समय के मदान्ध गोरे सैनिक, इतने पशुतुल्य बन गये थे कि, उन्होंने ५ वर्ष के अबोध शिशु एवम् ८० वर्षके वयोवृद्धों तकको अपनी दानवी तलवारके घाट उतारा तब वे क्योंकर और कैसे तत्कालीन विपद्ग्रस्त अबलाओं के प्रति ऐसी उदारता का व्यवहार कर सकते हैं! यद्यपि तर्कशास्त्र की दृष्टि से पाठकों का यह तर्क असंगत नहीं है तथापि ऐतिहासिक आधार से वह निर्मूल सिद्ध हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

इस सम्बन्ध में सत्य बात तो यह है कि, उस समय अंग्रेज़ सरकारने

अपने पशुतुल्य गोरे सैनिकोंको दबावमें रखनेके हेतु प्रत्येक सैनिकके साथ दो दो काले सैनिक दे दिये थे और उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें यह आज्ञा दे रखी थी कि यदि कोई गोरा सैनिक किसी तरह किसी अबला का अपमान अथवा हत्या करने पर उतारू हो जाय तो वहीं बिना कुछ कहे सुने गोली का शिकार बना दिया जाय। अंग्रेज़ सरकार की इस दूरदर्शिता एवम् न्याय व्यवस्थाके कारण अबलाओं को प्रायः कोई कष्ट न उठाना पड़ा। गोरे सैनिक घर में घुसकर यदि किसी आर्य्यमहिला को सामने देखते तो तुरंत ही दूर हटकर किनारे खड़े हो जाते और उससे माँगकर ही आभूषण इत्यादि लेते एवम् युक्तिप्रयुक्ति से उसे मीठे भाषणके चक्कर में फाँसकर उस घरकी अन्यत्र छिपी हुई सम्पत्तिके विषय में पूछताछ कर उसे ढोकर ले जाते थे। इस तरह सायङ्काल तक उन लोगों ने लूट खसोट और विजन में समय बिताया तथा रात होने पर वह पाशविक लीला समाप्त कर अपने अड्डेमें चले गये।

दूसरे दिन पुनः गोरे सैनिकों का पैशाचिक कार्यक्रम आरम्भ हुआ। आजके दिन उन्होंने पहिले से भी भयंकर मार काट मचा दी। बेचारे नागरिक प्राणोंके भयसे घासके ढेरोंमें जा छिपे। किन्तु अंग्रेज़ोंने उनका पता पाकर, उनमें आग लगा दी। बेचारे जीवित दशा में ही जलकर राख हो गये। कितने ही लोग अंग्रेजों के आगमनका समाचार सुनकर कुएं में कूद पड़ते थे। किन्तु वहाँ भी अंग्रेज़ोंकी गृद्धदृष्टि पहुँचे बिना न रहती थी और वह गोलियोंकी मारसे वहीं समाप्त कर दिये जाते थे। जो लोग पाखाने में छिपे थे उन्हें सदा के लिये वहीं अपना निवासस्थान बनाना पड़ा। अर्थात् वह वहींके वहीं गोरों द्वारा मार डाले गये। जो

लोग मार्गमें गोरोंको देखकर भागते उन्हें कड़ावीनकी गोलियाँ चलाकर मार डाला जाता था। इस तरह उस दिन भी सूर्यास्त होने तक खूब लूट-मार, मार काट और हत्याएं हो रही थीं। सड़कों और घरोंमें जिधर देखो उधर मुर्दे ही मुर्दे पड़े हुए थे।

तीसरे दिन तड़के भिड़े साहब के बगीचे में अंग्रेज़ी आश्रय में रहे हुए नागरिकों को घरसे खाद्य सामग्री लाने की आज्ञा दे दी गयी। वह लोग दो दिन से बिल्कुल ही निराहार थे। बेचारे आज्ञा सुनकर दौड़ते घर गये और जो कुछ भी था लेकर वापिस लौटे। इस समय उनके साथ कितने ही नवीन लोग भी गये थे, जिनकी तीसरे दिनके विजनमें पूर्ण रक्षा हुई।

इसके उपरान्त गोरों का पुनः वही 'खूनी-खेल' का खेलना आरम्भ हुआ। प्रथम दो दिनकी लूट में करोड़ों रुपये का धन,—सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना, मोती, पोखराज, नीलम ,मूंगा, इत्यादि० अंग्रेज़ोंके हाथ लगे थे। किन्तु इतने से उनकी दानवी तृष्णा तृप्त न हुई। उन्होंने आज झाँसीके राजमहल की ओर अपना मोर्चा घुमाया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस राजमहल में कितने की सम्पत्ति थी। यह तो पाठक गण स्वयम् समझ सकते हैं कि जो राज्य पीढ़ियों से चला आरहा था और जिसकी कभी हार न हुई उसके राजमहल में कितनी सम्पत्ति रह सकती है! स्पष्ट तो यह है कि, पेशवाओं के समय से—बुन्देलखण्डके राजाओं से प्राप्त हुए अनेक बहुमूल्य रत्न इस राजमहलमें भरे पड़े थे। इसके अतिरिक्त पन्नेकी खानसे निकले हुए बहुमूल्य हीरों

की भी यहाँ सम्मृद्धि थी, ऐसी दशा में यदि वहाँ की सम्पत्तिका मूल्य करोड़ोंकी संख्यामें आँका जाय तो भी असम्भव नहीं है। अस्तु,

* अंग्रेज़ी सेना ने महल में घुसकर वह सारी सम्पत्ति लूट ली और शेष वस्तुओंको नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इस डकैती में अंग्रेजोंका जो सब से भयङ्कर और पाशविक कार्य था, वह था-झाँसी के प्राचीन पुस्तकालय को नष्ट-भ्रष्ट करना। संसार के अन्य आमोद-प्रमोद एवम् ऐश्वर्य के साधन भले ही एक बार लुट जाने पर दुबारा मिल सकते हैं किन्तु वह हस्तलिखित-सारगर्भित एवम् मार्मिक पुस्तकें जो वर्षों के अविरल परिश्रम, अथक उद्योग एवम् पीढ़ी दर पीढ़ी के अध्ययन के पश्चात

---

* इस लूट का कुछ वर्णन डा० लो साहब ने Central india नामक ग्रन्थके २६४वें पृष्ठमें किया है। बहुतेरे अंग्रेज इतिहासज्ञ इस घटनाको समूल डकार गये हैं। मि० हेनरी सिल्वेस्टरने अपने ग्रन्थमें जो कुछ लिखा है, उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

So soon as the fighting had ceased, officers and men began to look about them with that sprit of curiosity ... ... They divided into every house and searched its dark corners, they pulled down walls, all in this self-same spirit of curiosity-not to loot ... ... One class of articles, however seemed to me to be looked on as fair loot by even the most scrupulous-these were the Gods found in the Temples.

संगृहीत होती हैं—कदापि नहीं प्राप्त हो सकतीं। समझ में नहीं आता कि जो लोग मुसलमानों को हिन्दुओं की प्राचीन मूर्तियां नष्ट करने एवम् उनके पुस्तकालय जला डालने के कारण उन्हें संकीर्ण हृदयी एवम् नीचता के भाजन बतलाते हैं वह स्वयम् अपनी इस कृतिकी गणना किस कोटिमें करते हैं?

उस समय झाँसी के पुस्तकालय में झाँसी के प्रथम सूबेदार रघुनाथ राव के शासनकालसे लेकर झांसीके अन्तिम नरेश महाराज गङ्गाधररावके राजत्व तकके सभी राजपुरुषों ने अपना अमूल्य समय और सम्पत्ति व्यय कर वे सुविस्तृत एवम् प्रसिद्ध पुस्तकें संग्रह की थीं। उसमें चारो वेद उनके भाष्य, समस्त शाखाओं के सभाष्य सूत्र उनके परिशिष्ट, श्रुति स्मृतियां, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादि शास्त्रों के ग्रन्थ, पुराण एवम् अन्यान्य संसार-दुर्लभ ग्रन्थ वर्त्तमान थे। यदि झाँसी से ४। ५ सौ कोस पर भी किसी प्राचीन या नवीन ग्रन्थका समाचार मिलता था तो तुरंत ही झाँसी दरबार की ओर से वहां नक़लनवीस भेज दिया जाता था जो अपने हाथ से उस ग्रन्थ की नकलकर दरबारमें प्रविष्ट कर देता था। समयानुसार भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान् ग्रन्थावलोकन करने के निमित्त झाँसीमें पहुँचते थे। इसीसे यह स्पष्ट होता है कि झाँसी का यह पुस्तकालय कितना अपूर्व था और इसकी समृद्धि में कैसे परिश्रम किये गये थे। किन्तु विजन के समय अधिकारोन्माद से उन्मत्त हुये अंग्रेज़ सैनिकोंने कुछही देर में उन सारे कठिन परिश्रमों पर पानी फेर दिया तथा वहां की सारी पुस्तकें नष्ट-भ्रष्ट कर डालीं तथा जला डालीं।

पश्चात् इस काम से छुट्टी पाकर वे लोग महालक्ष्मी के मन्दिर की

ओर बढ़े और वहां की सारी सम्पत्ति यहां तक कि महिमामयी-महा माया-महालक्ष्मी के वस्त्राभूषण तक लूट लिये। सरकारी आज्ञानुसार दूसरे दिन बिजन की इतिश्री होनेवाली थी। यही सोचकर उन गोरे अंग्रेज़ोंने आजके दिन मनमाना रूपसे अपनी मुराद पूरी कर डाली। मन्दिरों और कोष्टीपुरामें तो उन्होंने ऐसी हत्याएं की कि कुछही घण्टों में वहाँ मुर्दोंके ढेर लग गये। सड़कोंमें खूनकी नालियाँ बह निकलीं। घरकी दीवालें मनुष्यके जिवित रक्तसे रङ्ग गयीं। अनन्तर रात्रिको पूर्ववत् सन्नाटा ही रहा।

इस तरह लगातार सात दिन तक झाँसी नगरमें लूट एवम् हत्यायें होती रहीं। आठवें दिन तड़केही अंग्रेज़ सरकारकी ओरसे नगर भरमें अभयदानका ढिंढोरा पिटवाया गया। झाँसीकी बची-खुची प्रजा इस ढिंढोरको सुनकर मानो फिर एकबार जी उठी। इस सप्ताह भरकी अवधि में झाँसीमें जो नारकीय काण्ड चरितार्थ हुआ था तथा जिसके प्रमाण स्वरूप झाँसी शहर यमराजके नर्कलोकका जीता-जागता चित्र बन गया था, उसकी स्मृति भुलानेके लिये अंग्रेज़ सरकारने सबसे पहिले नगरकी सफ़ाई करवाई तथा जो लोग बिजनमें मारे गये थे, उनकी अन्तिम क्रिया करनेकी आज्ञा घोषित की। लावारिस शव सरकारकी ओरसे फुंकवाये गये तथा घोड़े-ऊंट-हाथी, गाय इत्यादि मरे हुए पशुओंको नगरके बाहर एक बड़ासा खन्दक खुदवाकर गड़वा दिये गये। इसतरह उसदिन दिनभर अंग्रेज सैनिक अपने कृतकाले-कारनामोंके प्रमाण को छिपानेका प्रयत्न कर रहे थे। शाम होते-होते सारा शहर साफ़ एवम् शुद्ध होगया।

शान्तिकी घोषणा होनेके दूसरे दिन झाँसी राजमहलके सामनेवाले

मैदानमें एक बज़ार लगाया गया। जहाँसे जीवनोपयोगी पदार्थ लेकर झाँसीकी बची-खुची प्रजाने फिर कुछ दिन तक इस क्षणिक संसारमें रहने की तैयारीकी।

* नगरके बाहर नित्य अंग्रेजी छावनीमें लूटा हुआ माल नीलाम किया जाता था। इसमें जो युद्धोपयोगी सामान एवम् हाथी-घोड़े इत्यादि थे, वह सब सिन्धिया नरेशने खरीद लिये। अन्यान्य सामान और दो नरेशों एवम् धनिकोंने अपनी अपनी आवश्यकतानुसार नीलाम का भाव देकर ले लिये। इस तरह झाँसीका अतुल वैभव इधर-उधर छितरा गया और उसका अधिकांश भाग अंग्रेज़ोंके सुदीर्घ वृकोदरमें चला गया। अस्तु,

झाँसी विजयके पश्चात् सर ह्यू रोज़ने २५ वें सैनिक पथकके सेनापति मेजर रावर्टसनके अधिकारमें वहाँका क़िला देकर नगरका यथोचित प्रबन्ध किया। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रबन्ध बड़ोही सुयोग्यतासे किया गया

---

* इस सम्बन्धमें डाक्टरलोने अपने लेखमें यों लिखा है:—

"The Prize agents were busily engaged daily in taking stock of the money, Jewels and other valuables, found in the palace and town and sales were going on daily in the camp for the disposl of prize goods and the property that once belonged to the officers who had died in action.

—Central India P. 265

था और इसका पूरा यत्न किया गया था कि, शीघ्रही झाँसी की प्रजा गोरों द्वारा उनपर किये गये अत्याचारोंको भूल जाये और नगर में पूर्ण-शान्ति बनी रहे। उन्होंने अपनी सेनाके घायल वीरोंकी सेवा सुश्रूषाके लिये वहाँ एक रुग्णालय खुलवा दिया। युद्धमें मरे हुए लेफ्टिनेण्ट डिक, लेफ्टिनेण्ट मेकलीजान, लेफ्टिनेण्ट सिन्क्लेयर, ले० सिमन्सन प्रभृति वीरपुङ्गवोंके मृत शरीरका आङ्गल पद्धतिके अनुसार अन्तिम संस्कार किया गया तथा उनकी वीर आत्माको शान्तिप्रदान करनेके हेतु करुणामय करुणेशसे करवद्ध होकर प्रार्थनाकी गयी।

झाँसीके इस घनघोर संग्राम और महाप्रलयके समय उभयपक्षके कितने लोग काल कवलित हुए इस सम्बन्धमें इतिहासज्ञोंमें भारी मत-भेद है। अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंके लेखोंसे यह विदित होता है कि, इस अवसर पर अंग्रेजोंकी ओरके ३६ सेनापति एवम् ३०७ सैनिक मरे और आहत हुए तथा झाँसीके ५००० मनुष्य काल कवलित हुए। मैलि-सन साहबके लेखसे भी ठीक यही बात टपकती है। किन्तु देशी इति-हासज्ञ इस सम्बन्धमें बिल्कुलही विपरीत लिखते हैं। उनके लेखोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस समय केवल 'विजन' में ही गोरे सैनिकों-द्वारा प्रायः २० हजारसे ऊपर झाँसीके नागरिक मारे गये थे तथा जो लूट हुई थी उसका औसत मूल्य आँकना दुःसाध्यही नहीं, असम्भव है।

अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंने अपने लेखमें इस बातका कहीं भी स्पष्टीकरण नहीं किया है कि उस समय झाँसीके संग्राममें झाँसीके कितने लोग मरे और संग्रामके पश्चात् गोरोंद्वारा किये हुए हत्याकाण्डमें कितने लोग उनकी गोली एवम् तलवारके शिकार हुए। डाक्टर लो साहबने अपने

लेखमें जो कुछ लिखा है, उससे तो यही ध्वनि निकलती है, कि संग्राम के पश्चात् गोरोंने जो हत्याकाण्ड मचा रखा था, उसीमें झाँसीके अधिकांश नागरिक मारे गये। आपने अपने लेखमें स्पष्ट लिखा है:—

"In Jhansi we burnt and burried upwards of a thousand bodies and if we take into account the constant fighting carried since investment, and the battle of the Betwa. I fancy, I am not far wrong when I say I believe we must have slain 3000 of the enemy.

इसके अतिरिक्त उक्त दलीलका पुष्टीकरण मि० मार्टिनके लेखमें भी इस तरह मिलता है।

On the 4 th of April the fort and remainder of the city were taken possession of by the troops and they committed fearful slaughter. No less than 5,000 persons are stated to have perished at Jhansi or to have been cut down by the flying cap. The plunder obtained is said to have been very great."

महारानी लक्ष्मीबाई झाँसीके किलेसे निकल कर वहाँसे जो घोड़ा दौड़ाती हुई आगे बढ़ीं तो ठीक दूसरे दिन अर्थात् तारीख ५ को ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत भाण्डेर नामक ग्राममें जा रुकीं। वहाँ अपने नित्य नैमित्तिक कार्योंसे निपट कर उन्होंने अपने दत्तक पुत्र दामोदररावको

खिलाया पिलाया। पश्चात् पुनः आगेको यात्राके निमित्त ज्योंही उन्होंने घोड़ेकी रकाबमें पैर रखा त्योंही लेफ्टिनेण्ट वाकर अपने दल बल सहित उनकी ओर बढ़ता हुआ दिखलायी दिया। वह एकही छलाङ्गमें कूदकर घोड़े पर बैठ गयीं और अपने पुत्रको पीठसे बाँध कर घोड़ेको एँड़ लगा दी। घोड़ा हवासे बातें करता हुआ कालपीकी ओर बढ़ा। महारानी लक्ष्मीबाई उस समय ऐसी निःसहाय अवस्थामें थीं कि सिवाय उनके हाथके कृपाण एवम् घोड़े के दूसरा कोई सहायक उनके पास नहीं था। उन्होंने लेफ्टिनेण्ट वाकरको दलबल सहित अपना पीछा करते देख अपनी तलवार म्यानके बाहरकी और हाथ ऊँचा कर उसे सूर्यरश्मियोंमें चमकाते हुए, घोड़ा भगातीं एवम् क्षण क्षण पर पीछे घूमकर पीछा करने वाले शत्रुओंका सफाया करती हुई आगे बढ़ती गयीं। इस समय उनकी सूरत ठीक महिषासुरमर्दिनी महिमामयी महामाया दुर्गाकी-सी बोध हो रही थी, जिन्होंने अपने कठोर कृपाणसे सहस्र-सहस्र रक्तबीज दानवों का अकेलेही सफाया किया था। उस समय कहाँ लेफ्टिनेण्ट वाकरके चुनिन्दा वीरोंका पीछा करनेवाला पथक और कहाँ अकेली महारानी लक्ष्मीबाई! किन्तु वाहरे वीराङ्गना! उन्होंने उन्हें अपनी तलवारका वह पानी पिलाया कि, उनमेंसे कितनेही 'हाय,पानी! हाय पानी!' चिल्लाते हुए ठीक ईसामसीहके नेक कदमोंका बोसा लेनेको क्राइस्टलोकमें जा बसे और कितनेही कृपाणकी भयंकर मारसे आहत होकर धूलिका वन्दन करने लगे। लेफ्टिनेण्ट वाकर जैसा मर्दाना वीर भी महारानीके कठोर कृपाणसे आहत होकर धूल सूंघने लगा। बस, फिर क्या था, अंग्रेज़ वीरोंकी वीरताका पानी सूख गया। वह ठण्ढे पड़

गये। महारानी लक्ष्मीबाई अवसर पाते ही द्विगुणित वेगसे कालपीकी ओर बढ़ीं। *लेफ्टिनेण्ट बाकरके बचे खुचे सैनिक अपने सेनापतिको लेकर झाँसीकी ओर वापिस लौटे। आजके दिन महारानीने वह लम्बी दौड़ मारी थी कि, शायद जीवन भर उन्हें पहिले कभी ऐसी दौड़ न मारनी पड़ी थी। उस दिन वह २४ घण्टे तक बराबर घोड़ा दौड़ाती रहीं और प्राय: रातके १२ बजे १०२ मीलका मार्ग पार करती हुई कालपी पहुँची। मार्गमें उन्हें कितनेही प्राकृतिक पर्वत, चट्टान, नदी, गड़हे इत्यादिसे कष्ट उठाने पड़े। किन्तु भला वह सामान्य कष्ट महारानी जैसी मनोनिग्रही, दृढ़ प्रतिज्ञ एवम् साहसी वीराङ्गनाको कब उसके

---

* अंग्रेज़ इतिहासज्ञोंने इस युद्धका वर्णन अपने लेखोंमें अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे किया है। इस सम्बन्धमें मार्टिन साहब लिखित ब्रिटिश इण्डिया नामके पुस्तकमें इसप्रकार लिखा है:—

"She was pursued, and nearly overtaken, Lieutenant Bowker, with a party of cavalary, followed her to Bhander, twenty one miles from Jhansi, and there saw a tent, in which was spred an unfinished breakfast, pressing on, he came in sight of the Ranee, who was escaping on a grey horse, with 4 attendents but at this point he was severely wounded and compelled to relinquish the persuit.

उद्देश्यसे च्युत कर सकते थे ? वह बेधड़क उनसे टक्कर लेती हुई अपने इष्ट स्थान पर पहुँचही गयीं।

*　　*　　*　　*

भ्रातृ-मिलन—उत्ताल तरङ्गा-नीलाम्बरा यमुना नदीके तट पर काल्पी नामक एक नगर है। इसके पश्चिमी तट पर एक सुदृढ़ प्रासाद बना हुआ है। यह प्रासाद ठीक यमुना नदी के किनारे बना है, जिसकी एक दिशाका संरक्षण स्वयम् कल-कल-निनादिनी यमुना करती हैं। अन्य तीन दिशाओंसे शत्रुओंका आक्रमण रोकनेके हेतु प्रासादको घेर कर सुदृढ़ 'कोट' (दीवालें) खड़ा कर दिया गया है। वहांसे थोड़ेही दूर पश्चिमकी ओर एक विशाल भूमिखण्ड है, जिसकी सीमासे सट करही कालपी नगर बसा हुआ है। यह नगर बहुत प्राचीन है और यहाँ बड़े-बड़े धनी-व्यवसायी रहते हैं। मुसलमानोंके शासन-कालमें यह नगर अत्यन्त इतिहास-प्रसिद्ध रहा है। कारण उस समय यहाँ कई बार भीषण युद्ध हो गये हैं, जिनके स्मृतिचिन्ह अब भी वहाँ पर कब्रिस्तान के रूपमें खड़े दिखलायी देते हैं। मुसल-मानी शासन कालमें वहाँ की युद्धभूमि पर जो भी धनी-मानी एवम् वीर यवन-सेनापति मारे गये उन सभोंकी कबरें वहाँ बनी हैं जो अब तक अपने धनियोंकी वीरताका प्रमाण देनेके हेतु उसी अवस्थामें खड़ी हैं जैसी वह पहिले थीं। प्रासादके निकटवर्तीय मैदानसे उन कबरोंमें बने हुए गगनचुम्बी गुम्बज बड़े स्पष्ट और मनोहर मालूम होते हैं। सर्व्व सामान्य की दृष्टिसे वहाँ उनकी संख्या ८४ तक होती है। इसी कारण

उस मैदानका नामही 'चोरासी गुम्बजका मैदान' पड़ा है। प्राचीन समयमें इस इतिहास-प्रसिद्ध नगरमें चीनीका व्यवसाय बड़े धड़ल्ले से होता था। किन्तु आज हमारे गोरे महाप्रभुओं की कृपासे वह व्यवसाय वहाँसे उठकर 'जावा-बोर्नियो और मोरिशस' इत्यादि स्थानों में चला गया है और मनमाने रूपसे अंग्रेजोंकी जेबें गरम कर रहा है। अस्तु

ऐतिहासिक दृष्टिसे इस नगरका परंपरागत इतिहास इस प्रकार है। सबसे पूर्व यह नगर गोविन्द पन्त बुन्देलेके आधीन रहा। पश्चात् कुछ दिनके लिये, उन्हींके वंशज एवम् जालोनके जागीरदार नाना साहेब गोविन्दरावकी आधीनतामें इसकी सारी व्यवस्था होती रही। किन्तु ईस्वी सन् १८०६ में अंग्रेजोंने जिस समय जालौनके साथ सन्धिकी उस समय जालौन राज्यकी ओरसे इसके सारे शासनसूत्र अंग्रेजोंके हाथ चले गये। तबसे अभ तक यह बराबर अंग्रेजों केही अधिकारमें है। इस बीच एक बार ईस्वी सन् १८३८ से नाना पण्डितने विद्रोह करके इसे अवश्य अपने अधिकारमें कर लिया था। किन्तु शीघ्रही अंग्रेजोंने झाँसीके तात्कालीन सूबेदार रामचन्द्ररावकी सहायतासे इसे पुनः जीत लिया। इसके अनन्तर ईस्वी सन् १८५७की १२ जूनको जब कि झाँसी एवम् कानपुरके क्रान्तिकारी यहाँ पहुँचे तब एकबार पुनः यहाँ स्वतन्त्रताकी ज्वाला सुलग गयी। यहाँकी विप्लवकारी सेनाने मुंशी शिवप्रसाद नामक कलेक्टरकी उस ज्वालामें पूर्णाहुति दे दी। तबसे अब तक, अर्थात् झाँसीका पतन होकर उसकी अधिष्ठात्री देवीका यहाँ पदार्पण होने तक यहाँसे अंग्रेजों की राजसत्ता बिल्कुल उठ गयी थी और यहाँ विप्लवकारियोंका पूरा दमदमा रहा। पाठकोंको ज्ञात ही है कि उन विप्लवकारियोंके प्रधान

शाली नेता यदि उस समय कोई थे, तो वह एकमात्र नानासाहब पेशवा ही थे। हमारे जिन प्रेमी पाठकोंको ईस्वी सन् १८५७ के भारत विप्लवका सच्चा इतिहास पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह भलीभाँति इस बातको समझ सकते हैं कि, तत्कालीन विप्लवकारियोंमें नाना-साहब ही एक ऐसे ज़बर्दस्त एवम् शूरवीर व्यक्ति थे, जिन्होंने उस समय अंग्रेज़ी शासनसे गहरी टक्कर ली तथा जगह जगह अपना अद्भुत पराक्रम दिखला कर शत्रुओंके दाँत खट्टे किये। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इस महापुरुषके साथ, इसीकी तरह कुछ और साहसी, सुचतुर युद्धकला निपुण एवम् धीर वीर सज्जन होते तो आज हमें यहाँ से अपनी लेखनी का धाराप्रवाह किसी अन्य दिशाको ले जाना पड़ता। किन्तु खेद है कि वह घड़ीही ऐसी घड़ी थी, जो हर तरहसे भारतवर्षको अवनति की ओर ले जानेपर तुली थी। निदान उसका परिणाम भी वही हुआ जो इष्ट था।

वीरवर नाना साहब पेशवा अंग्रेज़ोंसे किस कारणवश चिढ़े थे, इसका ज़िक्र अन्यत्र इसी पुस्तकमें आया है। अतः हम उसकी यहाँ पुनरावृत्ति करना अनावश्यक समझते हैं। यहाँ हम उनके सम्बन्ध में केवल इतना ही दर्शाना चाहते हैं, कि नाना साहब द्वितीय बाजीराव पेशवाके दत्तक पुत्र थे। द्वितीय बाजीरावको कोई औरस पुत्र नहीं था। नाना साहबके यह धर्म्म पिता बड़े आचरण भ्रष्ट और ऐयाश पुरुष थे। वह राज्य कार्य देखनेमें सर्वथा अयोग्य थे। इसी कारण उनके हाथ के सारे राज्यसूत्र धीरे धीरे अंग्रेज़ोंके हाथमें चले गये थे। अंग्रेज़ोंने उनसे सन्धि कर ली थी, और वह नाम मात्रके राजा थे। जिस समय

अंग्रेज़ोंने उनसे यह सन्धि की थी, उस समय अंग्रेज़ सरकारने उस सन्धिमें यह स्पष्ट लिख दिया था कि 'जबतक आकाशमें चन्द्रसूर्य स्थित हैं, तब तक बाजीराव, उनके औरस पुत्र अथवा उनके अभाव में दत्तक पुत्र और उनके द्वारा उनके पश्चात् जो वारिस नियुक्त हों उन्हें ८ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन मिलेगी।' किन्तु, इस सन्धिपत्रको तत्काजीन अंग्रेज़ सरकारने किस तरह हवामें उड़ा दिया था, इसका प्रमाण हमें मि० टारेन्स लिखित Empire in Asia नामक पुस्तक में छपे हुए तत्कालीन गवर्नर जनरलके अपने हाथसे लिखे हुए सन्धिपत्रके पढ़नेसे स्पष्टतया अवगत हो जाता है। अस्तु,

सन्धि होनेके पश्चात् द्वितीय बाजीराव पेशवा अंग्रेज़ोंकी आज्ञानुसार ब्रह्मावर्तमें रहकर अपना शेष जीवन यापन कर रहे थे। वहीं उन्होंने नाना साहब पेशवाको गोद लिया था। पेशवाके देहान्तके पश्चात् अंग्रेज़ सरकारने नाना साहबको पेन्शनके लिये अनधिकारी घोषित किया, जिसके कारण नाना साहब क्रुद्ध होकर क्रान्तिकारी बन गये। उन्होंने ब्रह्मावर्तसे डेरा डण्डा हटाकर कानपुरकी ओर कूच किया और विप्लवमें शामिल हो गये।

* इसी समय नाना साहबके दूसरे भाई राव साहब भी विप्लववादी बनकर कालपी पहुँच गये। कालपी नगर उस समय किस तरह विप्लवकारियोंका केन्द्र हो रहा था, इसका ज़िक्र हम ऊपर कर ही चुके हैं। राव साहबने अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रमके निमित्त इसी स्थानको

---

* द्वितीय बाजीराव पेशवाको कोई औरस पुत्र नहीं था। केवल २ कन्यायें थी। इसी कारण उन्होंने अपने वंशको स्थायी रखनेके निमित्त

सर्वोत्तम समझा। वह जानते थे कि कालपीमें एक तो योंही विप्लव-कारियोंका विशेष ज़ोर है। दूसरे वह स्थित भी है ठीक बुन्देलखण्डके मध्यमें। तीसरे वहाँका क़िला भी सुदृढ़ एवम् प्रकृतिकी सहायताके कारण विशेष रूपसे युद्धोपयोगी है। इन्हीं सब कारणोंसे उन्होंने वहाँ अपना प्रभुत्व जमाकर अपने अन्य सहयोगी विप्लवकारियोंकी सहायता से युद्धके निमित्त पर्य्याप्त तैय्यारी कर रखी थी। उनकी इस तैय्यारीका समाचार महारानी लक्ष्मीबाईको पूर्णरूपसे ज्ञात था और इसी हेतु वह अपनी रक्षाके निमित्त झाँसीके वस्तुतः अधिकारी पेशवा रावसाहबकी शरणमें गयी थीं।

उनके कालपीके निकट आनेका समाचार मिलते ही रावसाहब पेशवाने वीरवर तात्याटोपीको उन्हें लिवा लानेके लिये आगे भेज दिया। वह उन्हें कालपी लिवा ले गये, जहाँ पेशवाकी ओरसे उनके रहने आदि का उत्तम प्रबन्ध हो गया। दूसरे दिन महारानी लक्ष्मीबाई पेशवा दर-बारमें जा उपस्थित हुईं। राव साहबसे साक्षात् होते ही उनके नेत्र आँसुओंसे भर आये। चेहरे पर लाली दौड़ गयी। वह क्षणमात्रके लिये चेतनाशून्य होकर निर्जीव प्रतिमाकी तरह जहाँकी तहाँ खड़ी हो गयीं। उनके मनःचक्षुओंके सम्मुख बाल्यकालीन जीवनका वह चित्र नाचने लगा, जिस चित्रमें वह अपने परम पूज्य पिता के साथ ब्रह्मावर्त में द्वितीय

नाना साहब, दादा उर्फ राव साहब एवम् बाला साहब नामक ३ लड़के दत्तक लिये। यह तीन लड़के इसलिये दत्तक लिये थे कि यदि दुर्भाग्यवश इन तीनों मेंसे दो भी काल कवलित हो जांय तो भी एक शेष बचे और उनका वंश स्थाही रह सके।

बाजीराव पेशवाके आश्रयमें भ्रातातुल्य नाना साहब, रावसाहब तथा बालासाहबके सहवासमें अपना पाप ताप और विकार रहित परम सात्विक, निर्भीक एवम् निरपेक्ष शैशव जीवन यापन कर रही थीं। उस समय उनकी क्या दशा थी, उनके अन्तःकरणमें कैसी खलबली थी, उनके नेत्रोंमें क्या भाव थे एवम् मस्तिष्कमें कौनसे विचार चक्कर लगा रहे थे, इसका अनुभव वही कर सकता है जो अपनी प्रियप्राणा भगिनीसे बहुत दिन तक बिछुड़ा रहा हो और जिसे कालावधि तक विरह यातना भोगनेके पश्चात् उसके मिलनका आनन्द अनुभूत हुआ है। महारानी लक्ष्मीबाई को सामने देखकर वीरवर रावसाहबकी भी वही दशा हुई थी जिसका अनुभव उनकी धर्म्म भगिनी महारानी लक्ष्मीबाई ले रही थीं। अहा! धन्य था वह समय जिस समय इस बन्धु-भगिनीका अपूर्व मिलन हुआ। उस समय दोनोंहीके नेत्रोंसे स्नेहकी विमल धारा अश्रुओंके रूपमें उमड़ पड़ी थी। हृदयमें प्रेमकी पयोष्णी अठखेलियाँ खेल रही थी, होंठ अपना प्रेम प्रकाश करनेके निमित्त चञ्चल होकर फुरफुरा रहे थे। और मस्तिष्क?—वह था, एक दूसरेके स्कन्ध प्रदेशका सहारा लेनेको उतारू! दोनोंही क्षणमात्रके लिये स्तब्ध थे, लुब्ध थे, गम्भीर थे।

आनन्दका प्रथमावेग समाप्त होनेपर महारानी लक्ष्मीबाईने बड़े कष्ट से अपना मुंह खोला और अत्यन्त नम्र बनकर रावसाहब पेशवाके पास अपनी तलवार रखती हुए बोलीं,—'श्रीमान्! यह तलवार जो अब तक मुझ सरीखी नादान अबलाके हाथमें थी अब आपके पद कमलोंपर समर्पित है, आपके पूर्वजोंने कृपा-प्रसाद एवम् अपने प्रतिनिधि स्वरूप हमें दी थीं। उसका उपयोग हम तथा हमारे पूर्वजोंने आपलोगों के

पुण्यप्रतापसे अबतक न्यायोचित रूपसेही किया है। किन्तु अब श्रीमान् की हमपर न तो वह कृपाही है न हमें श्रीमान्‌से कोई सहायताही मिलती है। ऐसी परिस्थितिमें, आपका यह कृपाणरूपी प्रतिनिधि, नहीं, नहीं श्रीमान् द्वारा हमें प्राप्त हुआ कृपा–प्रसाद श्रीमान्‌को वापिस ले लेनाही उचित है।

जिस समय महारानीने उपरोक्त भाषण किया था उस समय दुःखा-वेगके कारण उनका गला रुँध गया था, आँखें डबडबा आयी थीं और चेहरा गंभीर बन गया था। उनके इस चातुर्यपूर्ण एवम् मर्मस्पर्शी प्रस्ताव को सुनकर रावसाहब पानी-पानी हो गये। उनके नेत्रों से आँसु-ओंकी अविरल धारा बह निकली। वह बड़े कष्टसे बोल उठे—

"नहीं, नहीं बहिन! तू सच्ची आर्यरमणी है। तूने वह कार्य किया है जो बड़े-बड़े रणपण्डित, सुचतुर सैनिक, एवम् धीर-वीर सेनापति तक नहीं कर सकते। इसमें सन्देह नहीं कि, तेरा वह पराक्रम है, जो संसार अनन्तकाल तक नहीं भूल सकता। तेरी प्रतिभा, वह प्रतिभा है जो शत्रुओं तकसे तेरा लोहा मनायेगी। तैंने अपनी कूटनीति एवम् बुद्धिमत्ता से आज सारे भूमण्डलको चकित कर दिया है। तेरा स्वदेश-प्रेम और स्वराज्य प्राप्तिकी लगन—वह लगन है जो सारे विश्वके लिये अनन्त कालतक उदाहरण बन जायगी। बहिन! मैं सच कहता हूँ,—यह न समझना कि, तुझे प्रसन्न करने के हेतु अथवा अपनेपनसे केवल प्रेमके वशीभूत होकर मैं तेरी वृथा स्तुति कर रहा हूँ, किन्तु वास्तवमें, मेरे मुंह से तेरे प्रति जो भी प्रशंसास्पद वाक्य निकल रहे हैं, वह नितान्त कठोर सत्य और मेरे शुद्धान्तःकरणसे ध्वनित होनेवाले सच्चे उद्‌गार हैं। तैंने

आज स्वतन्त्रता प्रेमी महाराष्ट्रीय रमणियोंकी नाक रख ली है ! अपनी अनुपम वीरता और स्वातन्त्र्य प्रेम दिखलाकर कतिपय मर्द कहलानेवाले मर्दोंको मूंछें मुड़वाने और चूड़ियाँ पहिननेको वाधित किया है। तू वह स्वातन्त्र्य लक्ष्मी है, जिसके अमर कृत्योंसे भारत माताका मुख उज्वल हुआ है। इसमें सन्देह नहीं, कि आज दिन यदि तेरे पास २।४ और तेरेही जैसे प्रतापी सरदार होते तो तू निश्चयही विजयलाभ कर लेती। किन्तु देशके दुर्दैवसे वैसा कोई वीर सरदार तेरे पास नहीं था न इस समय हमारे पासही है। तिसपर भी तुझ जैसी असाधारण अबलाने जिस तरह युद्ध विद्या विशारद अंग्रेज़ ज़वांमर्दोंको अपनी तलवारका पानी पिलाया है, वह पानी उनके भविष्य परिवारोंको भी सदाके लिये तेरी विमल कीर्तिकी चाह करायेगी। इस समय सारे भारतवर्षमें तेरही शौर्य्य-वीर्य-साहस बुद्धिमत्ता एवम् पराक्रमकी प्रशंसाहो रही है। बहिन! यदि इस समय तेरे जैसी स्वाभिमानिनी अबला स्वातन्त्र्य लक्ष्मीका सहयोग हमें मिल जाय, यदि हमारी सेनाका नेतृत्व स्वीकार करो तो मैं इसे अपना अहोभाग्य समझूंगा और विश्वास कर लूंगा कि हमारा उद्देश्य सिद्ध होना असम्भव नहीं,—अनिवार्य है। हमारे पूर्वजोंके समयमें सिन्धिया, बुन्देले, गायकवाड़ होलकर आदि समस्त महाराष्ट्रीय सरदार देशके संरक्षणार्थ अपने जीवन सर्वस्वको तिलाञ्जलि देनेको तैयार रहते थे। महाराष्ट्र साम्राज्यके विरुद्ध किसी के आँख उठातेही सारी महाराष्ट्रीय शक्ति एक हो जाती थी और सबके सब महाराष्ट्र वीर सामुहिक रूपमें एकत्रित होकर शत्रु पक्षपर टूट पड़ते और उसे मार खदेड़ते थे। यही कारण था कि, एक समय महाराष्ट्रियोंने वह

भी देखा जब उनका राष्ट्रीय झण्डा कटक तक जा फहराया। किन्तु आज वही प्रबल महाराष्ट्र साम्राज्य पारम्परिक द्वेष एवम् भोग-विलासिताके कारण किस तरह अवनति की ओर अग्रसर हो रहा है, इसे तू प्रत्यक्ष देख रही है। बहिन! यदि इस समय हमलोग सचेत न होंगे, आपसके मनोमालिन्यको न भूलेंगे तो यह निश्चय है कि अल्पही कालमें हमारा यह साम्राज्य परदेशियोंके दीर्घ वृकोदरमें समा जायगा और कुछ कालके पश्चात् हमें उसका अवशेष भागभी देखना नसीब न होगा। * मुझे इस बातका परम खेद है कि तेरी विपद्ग्रस्त दशा में मेरी सेना तेरी कुछभी सहायता न कर सकी। मैंने अपनी ओरसे उसे भेजा था अवश्य, किन्तु उसके पास पर्याप्त सुचतुर सेना नायक न होनेके कारण एवम् वह स्वयम् अशिक्षित होनेके कारण अपने प्रयत्नों में असफल होकर वापिस चली आयी। किन्तु इस समय यदि तू उसका नायकत्व स्वीकार करले, तो निश्चयही हमारा उद्देश्य सफल हो जायगा और तेरी प्राणप्यारी झाँसी तुझे पुनः प्राप्त हो जायगी।

---

* झाँसीके युद्धके समय पेशवाकी ओरसे तात्या टोपीके नायकत्वमें महारानीकी सहायताके हेतु जो सेना भेजी गयी थी, उसका विवरण पाठक अन्यत्र पढ़ही चुके हैं। किन्तु उस सम्बन्धमें प्रश्न यह रह जाता है कि, उससमय उतनी बड़ी विशाल सेनासे महारानीको सहायता क्यों न पहुँच सकी? जिससमय अंग्रेजोंकी सेनाने पेशवाकी सेनापर आक्रमण किया उस समय झाँसीके क़िलेकी तोपें बन्द क्यों रहीं? यदि वह चलती रहतीं तो अंग्रेजोंको पेशवाकी सेनापर आक्रमण करनेका न तो अवसरही मिलता न वह हारकर भागनेही पाती। इस सम्बन्धमें गिलि-

महारानी लक्ष्मीबाईने रावसाहब पेशवाकी सारगर्भित एवम् मार्मिक बातें सुनकर चुपचाप अपनी तलवार वापिस लेकर म्यानमें रखली। कुछ देर तक बन्धु-भगिनी दोनों चुप रहे। दरबार में पूर्ण सन्नाटा छाया रहा। क्षणभरके पश्चात् महारानीके कण्ठसे कम्पित स्वरमें निकल

यन नामक अंग्रेज़ विद्वान् लिखित "The Ranee" नामक पुस्तकके ६० वें पृष्ठमें तात्याटोपी और महारानी लक्ष्मीबाईके प्रश्नोत्तरके रूपमें जो कुछ लिखा है, उसका सारांश यह है कि जिस समय पेशवाकी सेना महारानीकी सहायताके हेतु झाँसी पहुँची उस समय 'लालतावादी' नामक एक ब्राह्मण हवलदारने यह कहकर झाँसीके क़िले की तोपें रुकवा दीं कि पेशवाकी सेनाभी अंग्रेज़ोंकी ही सेना है। पेशवा अंग्रेज़ों के सहायक हैं और वह इसलिये तोपें दाग रहे हैं जिसमें क़िलेके लोग बाहर निकल आयें।' इससे यह प्रतीत होता है कि या तो उससमय क़िलेमें भयङ्कर विश्वासघात किया जारहा था या भ्रमवश भारी मूर्खता की जारही थी।

इसी तरहका एक प्रमाण अंग्रेजोंके तात्कालीन सेनापति सर ह्यूरोज़ के स्नेही एवम् असिस्टेन्ट सर्जन डाक्टर सिल्वेस्टर लिखित The Campaign in Central India नामक पुस्तकके १०१-१०२ पृष्ठकी इन पंक्तियोंमें मिलता है:—

"Why the garrison did not make a sortie, and destroy our batteries, while the Peshawa's army was attempting their rescue form without, <u>it is impossible to imagine.</u> Their overpowe-

पड़ा 'ठीक है' जब तक इस नश्वर देहमें प्राण है, मस्तिष्कमें विचार-शक्ति है, धमनियों में रक्त है, हृदयमें सुख-दुखके अनुभवका ज्ञान है एवम् स्वभावमें स्वाभिमान है तवतक यह कृपाण, रिपुदल विनाश और महाराष्ट्र की मर्य्यादा रखनेमें कदापि न चूकेगी।'

उनके इस वीरतापूर्ण उत्तरसे रावसाहब पेशवा प्रेमसे गद्गद् हो गये। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी गङ्गा-यमुना वह निकलीं। सिंहासनसे उठकर नीचे उतर पड़े और आगे बढ़कर अपनी धर्म्मभगिनी लक्ष्मीबाईको गले लगा लिया।

महारानी लक्ष्मीबाई भी प्रेमपुलकित होकर अपने वन्धुराज राव साहबके गलेसे लिपट गयीं। उनका सिर, रावसाहबके वक्षस्थलपर आरूढ़ था! उनके नेत्र, सहोदरतुल्य पेशवाके विशाल वक्षस्थलको अश्रुओंसे तर कर रहे थे! और रावसाहब?—रावसाहब आनन्दातिरेकके कारण चेतनाशून्य वन गये थे! उनके नेत्र?—वे कर रहे थे, स्वातन्त्र्य लक्ष्मी स्वभगिनीके शिर कमल पर प्रेमाश्रुओंकी गङ्गाका रुद्राभिषेक!!

अहा! क्याही अपूर्व दृश्य था! कैसा अघटित अवसर था!! और और क्या था? बन्धु-भगिनीका कलहान्तके पश्चात् का अपूर्व, अद्भुत, एवम् अविकारी मधुर-मिलन!!!

* * * *

---

ring, numbers must have been successful, however well our infantry and gunners might have stood to their guns."

कालपीकी हार—महारानी लक्ष्मीबाई राव साहब पेशवाके प्रतिज्ञाबद्ध होने एवम् उनकी सेनाका प्रबन्ध देखना स्वीकार करनेका समाचार बातकी बातमें सारे विद्रोही दलोंमें पहुँच गया। उसे सुनते ही बाणपुर के राजा, बाँदा के नवाब एवम् अन्य प्रमुख-विद्रोही जमीदारों ने अपनी अपनी सेनायें कालपी भेज दीं। रावसाहब उस सेना समूह को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने एक बार व्यक्तिगत रूपसे उन सेनाओंका निरीक्षण किया। पश्चात् सारी सेनायें अपने शूर-वीर सर्दार तात्या टोपी एवम् स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाईको सौंप दी गईं।

धूर्त्तशिरोमणि अंग्रेज़ोंको यह समाचार ज्ञात होते देर न लगी। बातकी बातमें विद्रोहियोंके कालपीमें एकत्रित होनेका समाचार अंग्रेज़ों के सुदक्ष सेनापति सर ह्यू रोज़को लग गया। उन्होंने तुरंतही कालपीपर आक्रमण करनेका मनसूबा बांधा। वह इस बातको भली भाँति जानते थे कि विद्रोहियोंके संगठित होनेके प्रथमावस्थामें ही यदि उन्हें परास्त करनेका प्रयत्न न किया जायगा तो शीघ्रही उनका दल सुरक्षित-सुशिक्षित एवम् सुसंगठित हो जायगा। उन्हें महारानीके युद्धचातुर्यका पूर्ण ज्ञान था और वह अच्छी तरह से महारानीकी वीरताके कायल हो चुके थे। तात्या टोपीके सम्बन्धमें तो सारी अंग्रेज़ जातिमें यह बात प्रसिद्ध थी ही कि वह मनुष्य नहीं परञ्च मनुष्यके रूपमें चलता-बोलता जादू है। यही कारण था कि उन्होंने इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करने में आलस्यको स्थान ही न दिया। वह अपनी सेनाका निरीक्षण एवम् संगठन कर आक्रमणका कार्यक्रम निर्धारित करनेमें तन्मय हो गये।

ईस्वी सन १८५७ की २४ वीं अप्रेल तक उन्होंने सम्पूर्ण रूपसे अपना कार्यक्रम निर्धारित कर उसके ठीक दूसरे दिन अर्थात् तारीख २५ को अपनी सेना कालपीकी ओर बढ़ायी। इसी समय उन्हें यह साचार मिला कि महारानी लक्ष्मीबाई पेशवाकी सहायता लेकर पुनः झाँसी विजय करनेके हेतु आगे बढ़ी हैं। इस बार उनके साथ तात्या टोपी बाणपुरके राजा एवम् बान्दाके नबावकी सेनायें भी हैं। वे लोग बड़े धूम-धड़ल्लेसे कोंच गाँव तक पहुँच गये हैं। इस समाचारको सुनकर सर ह्यूरोज़ आश्चर्य चकित हो गये। दूसरे क्षण वह आश्चर्य, चिन्तामें परिवर्तित हो गया। तीसरे क्षण वह गम्भीर बनकर विचार करने लगे। कुछ देरके गहन विचारके उपरान्त उनके उर्वर मस्तिकमें एक नवीन कल्पना प्रादुर्भूत हुई। उन्होंने उसे कार्यरूपमें परिणत करते हुए अपनी सेनामें से २५ वें एवम् तीसरे सैनिक पथकमें से कुछ चुनिन्दा सैनिक मेजर गालके आधिपत्यमें देकर 'कोंच'गाँवकी ओर भेज दिये। उस समय वहाँ प्रायः ५०० विद्रोही थे। उनमें और अंग्रेज़ी सेनामें एक बार खूब संग्राम हुआ। किन्तु तुरतही वह हार गये। भयंकर हत्या काण्डके पश्चात् वहाँ का किला अंग्रेज़ोंके हाथ आ गया।

इस प्रकार उस किलेको जीतकर अंग्रेजी सेनाके बेतवा पार पहुँचते पहुँचते उससे मेजर 'आर'की सेनासे भेंट होगयी। उससे उसको समाचार मिला कि बाणपुर एवम् शाहगढ़ के नरेश अपनी अपनी सेनाओंको लेकर विद्रोहियोंकी सहायता के निमित्त 'कोंच' की ओर जारहे हैं। इस समाचारको पातेही मेजर गालका माथा ठनका। उन्होंने शत्रुओंकी सेना को रोकने के हेतु हर प्रकारसे अपनी एड़ी और चोटीका पसीना एक किया,

किन्तु वह उनकी द्रुतगति एवम् विशाल शक्तिको संभाल न सके। 'कोटरा' गाँवके समीप उभय सेनाओंका भयङ्कर युद्ध हुआ। किन्तु अकस्मात् निकटस्थ 'ज़िगनी' नरेशके विद्रोहियोंकी सहायता करनेके कारण अंग्रेज़ोंके पैर उखड़ गये। विद्रोही उन्हें मनमाना रूपसे रौन्दते हुए 'कोंच' गाँवकी ओर बढ़े और तात्याटोपीकी सेनासे मिल गये। मेजर गाल़ने भी अन्य कोई चारा न देखकर अपने सहयोगी मेजर 'आर' सहित अपनी सेनाका रुख़ 'कोंच' गाँवकी ओर घुमाया और वह भी अपनी अंग्रेजी सेनासे जा मिले।

इधर ५ मईके दिन अंग्रेजोंकी ओरसे ७१ वीं सेना एवम् दूसरी ब्रिगेडका सैनिक पथक 'कोंच' की अंग्रेजी सेनासे जा मिला। किन्तु इस समय 'कोंच' में विद्रोहियोंका बल कम नहीं था, सर ह्यूरोज़ यद्यपि उक्त नवीन सहायता पाकर मनही मन बड़े प्रसन्न हुए थे तथापि उन्हें बाहरही बाहर रहकर कोंचके विप्लवियोंको हराना कठिन-सा मालूम होता था। बहुत कुछ विचार करनेके उपरान्त उन्होंने विप्लवियों को 'शह' देनेके हेतु एक निरालीही युक्तिका आविष्कार किया। वह युक्ति यह थी कि कोंचके विद्रोहियों पर आक्रमण करनेके पूर्व उन्हींके समीपस्थ किसी सुदृढ़ प्रासादको अंग्रेज़ी अधिकारमें कर लिया जाय और वहींसे 'कोंच' के किलेपर आक्रमण करनेका प्रयत्न किया जाय।

निदान इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेके हेतु उन्होंने मेजर गालके नायकत्वमें तीसरे युरोपियन सैनिक पथकको कुछ चुनिन्दा सैनिक देकर उन्हें कोंचसे प्रायः १० मीलकी दूरीपर मरहठों द्वारा बनवाये हुए प्राचीन दुर्ग 'लोहारी, पर विजय करनेके लिये भेज दिया। उस समय

इस दुर्गका संरक्षण कुछ अफगानी वीर पुङ्गवों द्वारा होता था। वह लोग अंग्रेज़ोंसे वीरता पूर्वक लड़े। किन्तु होनहार कुछ औरही था। बेचारे अत्यन्त थोड़ी संख्यामें होनेके कारण वीरता पूर्वक लड़ने पर भी दुर्ग का रक्षण न कर सके और लड़ते-लड़ते वीरोंकी तरह वीरगति को प्राप्त हो गये। इतिहास यह बतलाता है कि उस समय उन्होंने जैसा युद्ध किया था वह प्रशंसनीय था। उन्होंने अपने मरते दम तक अंग्रेज़ सैनिकों को खेतकी मूलीकी तरह काट डाला। उन्हींका वह पराक्रम था कि उस युद्धमें अंग्रेज़ोंके दो बलाढ्य अधिनायक और सैकड़ों सैनिक मारे गये। किन्तु अन्तमें सेनाबल अत्यन्त थोड़ा होनेके कारण उन्हें हार खानी पड़ी और वह एक-एक करके कट मरे। अंग्रेज़ोंको वह क़िला प्राप्त हो गया, किन्तु सैकड़ों गोरे सैनिकोंके खूनके मूल्य पर।

उसके प्राप्त कर चुकने पर सरह्यूरोज़ने 'कौंच' पर धावा बोलने की ठानी। वह विद्रोहियोंकी आक्रमणप्रणाली एवम् सैनिक व्यवस्था-कार्य आदिसे भलीभाँति भिज्ञ थे। इसी कारण उन्होंने अपनी सेनाकी व्यवस्था अत्यन्त विचारपूर्वक की। दूसरे दिन वह अपनी समस्त सेनाको कौंचसे प्रायः १४ मीलकी दूरी पर हटा ले गये तथा उसे अपने अनुकूल स्थानपर नियत कर रखा। पश्चात् पीछेके सैनिकोंको नागपुरा गाँवके समीप नियुक्त कर दिया। इसके अनन्तर चुमेर गाँवके समीप दूसरे ब्रिगेडका सैनिक पथक एवम् दाहिनी ओर मेजर 'अर'के आधिपत्य में हैदराबादी सेना तैनात कर दी। इसी प्रकार हर तरह से अपनी सेनाकी सुन्दर-व्यवस्थाकर सर ह्यूरोज़ने सभी मार्के के स्थान दृढ़तापूर्वक छेंक डाले।

उधर तात्या टोपी एवम् बांदाके नवाब ग्वालियरकी सेनाकी बाट जोह रहे थे। उनकी थोड़ीसी सेना कोंच गाँवके मैदानों में पड़ाव डाले हुए थी। उसे अंग्रेजोंके आगे बढ़नेका समाचार ज्ञात होते ही उसने अपनी तोपोंको अकस्मात् दागना आरम्भ कर दिया। किन्तु, सर ह्यूरोज़ साहब पहिलेही विद्रोहियोंकी इस चालको भाँप गये थे और इसीलिये उन्होंने अपनी सेनाको विभिन्न हिस्सोंमें बाँट कर मौक़े-मौक़े पर तैनात कर दिया था। उनकी वह दूरदर्शिता इस समय बड़ी काम आयी। विद्रोहियों द्वारा चलायी जाने वाली तोपें अंग्रेजी सेनाके सन्मुखस्थ दलको साफ़ करने लगी। अंग्रेज़ोंको यह अवसर बहुतही उत्तम जँचा। वह लोग पहिलेहीसे शत्रु पक्षको चारों ओरसे घेर कर खड़े थे। अतः उन्हें हर ओरसे विद्रोहियों पर तोप और बन्दूकोंकी मार करने का अवसर मिला। विद्रोही जालमें फँसी हुई मछलियोंकी तरह अंग्रेजी तोपों एवम् गोलियोंकी जालमें फँस गये। उनके अश्वारोही सैनिकों की घोर दुर्दशा हुई और वे जिधर मार्ग मिला उधरही भागने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि इस युद्धके समय अंग्रेज़ोंको भारी संकटका सामना करना पड़ा था। किन्तु वह संकट शत्रुओंकी मारका नहीं, अपितु प्राकृतिक था। उस समय ग्रीष्म ऋतुके दिन थे। ऐसी गर्मी पड़ी थी मानों दावानल सुलग रहा था। प्रलयङ्कर लू-ग्रीष्मकी भीषण तपन खूनको भी पसीना बना रही थी। सर ह्यूरोज़ने उस गर्मी का परिमाण ११० डिग्री लिखा है। वह अपने लेखमें स्पष्ट रूपसे लिखते हैं कि केवल ग्रीष्मके उत्तापके कारणही उनकी सेनामें से प्रायः ११ गोरे सैनिक कालके गालमें जा बसे और कितनेही बेहोश होकर धूल सूँघने लगे।

स्वयम् सर ह्यू रोज़की दशा उस समय ऐसी खराब हो रही थी कि उन्हें चार बार अपने घोड़ेको छायेमें ले जाना पड़ा। पाँचवीं बार तो वह बेहोशही हो गये और बड़े प्रयत्नोंसे डाक्टरों द्वारा होशमें लाये गये। सर ह्यू रोज़के समक्ष तीन डाक्टर अर्नाटने भी इस बातका पुष्टीकरण किया है। अस्तु—

इन सब विघ्न-बाधाओंकी पर्वाह न करते हुए सुचतुर एवम् कर्त्तव्य दक्ष वीर अंग्रेज़ सैनिकों ने प्रायः एक घण्टे तक युद्ध किया। दोपहरके समय उनकी ८६ एवम् २५ वीं सेनाने 'कोंच' गाँव पर चढ़ाई कर दी। पेशवाकी सेनाने पहिले तो खूब पराक्रम दिखलाया। किन्तु तुरतही हैदराबाद इन्फेण्टरीके सेनानायकने उसे पीछे हटाकर उसकी जगह छीन ली। दैववशात् फिर एक बार पलड़ा फिरा और पेशवाकी सेना उसके आगे बढ़ गयी। इसी समय अंग्रेज़ोंके अश्वारोही सैनिकोंने द्विगुणित वेग से आक्रमण करना आरम्भ किया। क्षणभरके लिये उभय सेनाओंमें गहरी मुठभेड़ हो गयी। तात्या टोपी एवम् बाँदाके नवावने अपनी शक्तिभर अंग्रेज़ोंको मार खदेड़नेकी चेष्टा की, किन्तु वह विफल प्रयत्न ही रहे। अन्तमें जीत अंग्रेज़ोंकी ही रही। तात्या टोपी एवम् बांदाके नवाब अपनी बची खुची सेनाको लेकर कालपीकी ओर भाग निकले। उनकी इस भयङ्कर हारसे अंग्रेज़ोंको प्रायः ८ तोपें और बहुत सा गोला बारूद इत्यादि युद्धोपयोगी सामान मिला।

इस युद्धमें विद्रोहियोंकी संख्या प्रायः २० हज़ारके निकट थी। किन्तु यह संख्या केवल गणना मात्रके लिये थी। यदि न्यायकी दृष्टिसे पूछा जाय तो उस समय उनमें युद्धविद्यासे परिचित लोग बहुत ही

कम थे और जो कुछ थे भी वह सेनाका समुचित प्रबन्ध न होनेके कारण बेकारसे प्रमाणित हुए। कुछ लोग तो बेचारे, तलवार किस तरह पकड़नी होती है और युद्ध किस चिड़ियाका नाम है, यह तक नहीं जानते थे। विद्रोहियोंकी सेनाका प्रबन्ध वैसाही अव्यवस्थित था जैसी उनकी सेना। सुदक्ष एवम् युद्धकला निपुण सेनापति तो उनके पास एक तरहसे थे ही नहीं। जो कुछ तात्या टोपी एवम् लक्ष्मीबाई सरीखे थे भी, तो वह बेकार थे। कारण बांदाके नवाब एवम् राव साहब पेशवाके सामने उनकी पूछ ही नहीं थी। विद्रोहियोंमें यदि उस समय कोई कर्त्ता-धर्त्ता भाग्य विधाता थे, तो केवल दो सज्जन। एक बांदाके नवाब, दूसरे रावसाहब पेशवा। इन दोनों सज्जनोंने विद्रोहियोंकी सेनाका सम्पूर्ण प्रबन्ध अपने हाथमें रखा था। महारानी लक्ष्मीबाईका, उससमयके युद्धमें कोई भी प्रधान अङ्ग न था। यही कारण था कि (एक तो स्वयम् सेनाका उचित प्रबन्ध न कर सकनेके कारण दूसरे तात्या टोपी एवम् महारानी लक्ष्मीबाईको कोई अधिकार न देने के कारण) विद्रोहियोंको इस तरह कच्ची खानी पड़ी। प्रबन्धके अभावसे अंग्रेज़ोंकी बन आयी और पुनः एकबार विद्रोहियोंकी छाती-कोंच गाँव-पर अंग्रेज़ी पताका गड़ गयी।

इस विजयके उपरान्त सर ह्यू रोज़ने कालपीकी ओर अपनी सेनाका मोर्चा घुमानेका निश्चय किया। उन्होंने कालपी पर आक्रमण करनेके सम्बन्धमें सारा कार्यक्रम पहिलेही निश्चित कर रखा था, अतः उन्हें इस सम्बन्धमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकताही नहीं रह गयी थी। उन्होंने अपनी सेनाको हरदोई और उरईके मार्गसे होते हुए कालपीकी

ओर कूच करनेकी आज्ञा दी। इस मार्गसे जाते हुए अंग्रेज़ी सेनाको विद्रोहियोंके कारण बड़े कष्ट उठाने पड़े। किन्तु सर ह्यू रोज के बुद्धिबलके सहारे वह उन कष्टोंसे टक्कर लेती हुई आगे निकलही गयी। उस समय, जैसा कि, ऊपर भी एक जगह लिख आये हैं, ग्रीष्मका प्रखर उत्ताप अपनी युवावस्थामें पहुँच चुका था। हिम-प्रदेशमें रहने वाले गोरे सैनिक उसकी भीषण दावाग्नि से घबड़ा उठे थे। सर ह्यू रोज उनकी दयनीय दशासे भली भाँति भिज्ञ थे। उन्होंने समझ रखा था कि, उस भीषण उत्तापमें लड़-लड़ कर थकी हुई सेना, यदि उसे नयी सेना का बल न मिला, युद्धमें ठहर न सकेगी। इसीलिये उन्होंने ब्रिटिश सरकार के तत्कालीन सेनानीत अधिनायक (कमाण्डर इन चीफ) को लिखा कि, वह कर्नल मेक्सवेलके सेनापतित्वमें कुछ और सेना कालपी भेज दें। तदनुसार अधिनायक महोदयने एक ऊंटोंका रिसाला, एक सिक्खों की सेनाका पथक एवम् ८८ वीं पल्टनके सम्पूर्ण दो भाग सर ह्यू रोजकी सहायताके निमित्त कालपी भेज दिये। सर ह्यू राज यह नवीन सहायता पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी सेनाके सहारे कालपीको चारों ओरसे घेर लिया और विद्रोहियोंके प्रबन्धकी ढिलाईकी ताकमें गृद्ध-दृष्टि लगाये बैठे रहे।

इधर विद्रोहियोंके 'कोंचके' महासमरमें हारकर कालपी वापिस चले आने पर, महारानी लक्ष्मीबाईने रावसाहब पेशवाके अच्छी तरह कान खोल दिये। वह रावसाहब पेशवाकी अहङ्कारी वृत्तिकी भर्त्सना करती हुई गरज कर बोलीं कि, 'यदि आप लोग अपनी सेनाका प्रबन्ध इसी तरह अव्यवस्थित रखेंगे तो आपको कभी विजयलाभ

न हो सकेगा। कौंचके युद्धमें आपके साथ २० हजार सैनिक एवम् भरपूर युद्ध सामग्री थी। किन्तु उनका प्रबन्ध ठीक न होनेके कारणही आज उन मुट्ठी भर अंग्रेजोंने आपको मार भगाया है। यदि आप अपनी सेनाको समुचित शिक्षा देंगे, उसका यथोचित प्रबन्ध करेंगे, उसे पर्य्याप्त रूपसे शक्तिसम्पन्न बनायेंगे एवम् प्रत्येक उपयुक्त स्थान पर मोर्चे बांधकर युद्ध करेंगे तो कभी यह सम्भव नहीं है कि गोरोंकी आपके सामने दाल गल जाय।'

उनके इस मर्म्मभेदी और कठोर सत्य किन्तु अप्रिय और सद्‌हेतु पूर्ण भाषणको सुनकर रावसाहब पेशवा शर्मके मारे पानी-पानी हो गये। महारानीका प्रत्येक शब्द उन्हें शूलकी तरह मालूम हुआ। किन्तु वह सत्य और नितान्त सद्‌हेतु पूर्ण होने कारण वह उनके मनोमन्दिरमें उपदेशकी तरह जा बसा। वह अपनी भूल मान गये और उन्होंने महारानीको अपनी सेनाका समुचित प्रबन्ध करनेका आश्वासन दिया। किन्तु आश्वासन देना सरल है परन्तु उसको निबाहना,—नहीं नहीं, निबाहनेकी क्षमता रखना, यह प्रत्येक मनुष्यके हाथकी बात नहीं है। मनुष्यके संस्कार बदल सकते हैं, समयमें परिवर्तन हो सकता है, हाथ आयी हुई वस्तु छोड़ी जा सकती है, किन्तु स्वभाव नहीं छूटता। यही हाल अन्तमें रावसाहब पेशवाका रहा। उन्होंने यद्यपि महारानीके उक्त उपदेशको स्वीकार कर लिया एवम् तदनुसार व्यवस्था करनेकी भी ठान ली तथापि वह स्वयम् महारानीको अपनी सेना तथा उसके प्रबन्धके सूत्र सौंप देनेकी उदारता न दिखला सके। इसमें सन्देह नहीं कि महारानीके रणचातुर्यकी उनपर पूरी धाक जम गयी थी तथा वह इस बात

के क़ायल हो चुके थे कि उनकी सेनामें महारानी जैसा युद्धकला प्रवीण अन्य व्यक्ति नहीं है तथापि वह अपनी अहङ्कारपूर्ण महत्त्वाकाँक्षाके कारण एक अबलाके इशारेसे चलना पसन्द न करते थे। उन्होंने केवल महारानीको सन्तुष्ट रखनेकी अभिलाषासे उनकी अधीनतामें प्रायः २५० अश्वारोहियोंका एक पथक देकर उन्हें यमुनाके तटवर्तीय स्थानका संरक्षण-कार्य सौंप दिया तथा शहरके एक ओरका संरक्षण भार बांदाके नवाबकी सेनाको देकर दूसरी ओर रुहेलखण्डके रुहेलों एवम् बङ्गाल नेटिव इन्फेंटरीके काले सैनिकोंको नियुक्त कर दिया। अंग्रेज़ी सेनासे टक्कर लेनेके हेतु बुन्देले वीर नियत किये तथा मोर्चेंके स्थानोंपर अपनी विशाल तोपें चढ़वाकर उनको चलानेके लिये सुदक्ष गोलन्दाज़ोंको तैनात कर दिया। इस तरह अपनी सेनाका प्रबन्ध कर अखिल विप्लवी सेनाका सूत्र सञ्चालन भार रावसाहब पेशवाने अपनेही हाथ रखा। अस्तु,

१५ मई को अंग्रेज़ोंकी सेना कालपीसे प्रायः ६ मील दूर 'गलावली' नामक ग्रामके पास जा पहुँची। कालपीके छबीनेको यह समाचार ज्ञात होतेही उसने उतावलेपनसे आगे बढ़ कर अंग्रेज़ी सेनापर धावा किया और चाहा कि अंग्रेज़ोंकी रसद बन्द कर दें। इस छबीनेके आधिपत्यमें ग्वालियरके भी बहुतेरे सैनिक थे। वह तो आगे बढ़ कर अंग्रेज़ों के २५ वें इन्फेंटरी सैनिक पथक पर भूखे बाज़ों की तरह टूटही पड़े और पहिलेही धावेमें उन्होंने कितनेही गोरे सैनिकोंको मार गिराया एवम् आहत किया। उनका स्वप्नमें भी यह विश्वास न था कि अंग्रेज़ी सेना को इन थोड़ेसे सैनिकोंके मारे जानेसे कुछ भी हानि नहीं हुई है! वरञ्च

वह यही समझते थे कि उनके उक्त हत्याकाण्डसे अंग्रेज़ोंको ज़बर्दस्त आघात पहुँचेगा और वह शीघ्रही भाग जायँगे। किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था कि अंग्रेज़ोंकी विशाल सैना टिड्डीदलकी तरह बड़ी एवम् स्थान स्थानपर कितनेही झुण्डोंमें विभक्त होकर पड़ाव डाले पड़ी है। वह अपनी प्राथमिक विजयसेही फूले न समाये। उन्होंने सम्मुखस्थ अंग्रेजोंको बिलकुल ही वीर्यहीन समझा और उन्हें तरह तरहसे धिक्कारते कोसते एवम् दिल्लगी उड़ाते हुए विजयमदसे उन्मत्त होकर आमोद प्रमोदमें लीन होने लगे। उन्होंने सामने बचे हुए अंग्रेज़ सैनिकोंको उद्देश्य कर ठठाकर हँसते हुए कहा—'आओ बच्चा! झाँसीको लूटकर बड़ी जल्दी कालपीमें जनाने? ख़ैर इस बार तुम्हारी मूँछ मूड़कर, तलवार छीनकर तुम्हें साड़ी-चोली पहिनाकर-'नारियल-सुपारी' हाथ में थमाये बगैर हम नहीं मानेंगे। इस प्रकारकी व्यङ्गोक्तियोंसे उन आत्मश्लाघी क्षणिक विजयसे उन्मत्त हुए विप्लवी सैनिकोंने उन कर्त्तव्य कुशल अंग्रेज़ सैनिकोंको अपने क्षुद्र हृदयका परिचय दिया।

१६ मईके दिन विप्लवियोंने अंग्रेजोंकी दूसरी ब्रिगेडसे टक्कर ली। इस समय भी उन्होंने पहिलेही आक्रमणमें पहिले दिनकी तरह पर्याप्त यश कमाया और कई गोरे सैनिक मारे एवम् घायल किये। परन्तु शीघ्रही यह समाचार सर ह्यूरोजको मिला। वह इस सम्वादको सुनकर चपल वेगसे अपनी सेना सहित दयापुर नामक ग्रामके निकट जा पहुँचे। उनकी दृष्टिसे अंग्रेजी सेनाको पड़ाव डालनेके हेतु यह स्थान विशेष महत्वपूर्ण था। अतः वह अपना दल-बल लेकर वहीं जा डँटे और भीषणवेगसे शत्रुपक्ष पर टूट पड़े। इस युद्ध में अंग्रेजी सेनाने वह परा-

क्रम दिखलाया कि कुछही देरमें विप्लवियोंके पैर रणाङ्गणसे उखड़ गये। कई सौ सुरपुर जा पहुँचे। इस युद्धमें ७१ वें हाइलैण्डर्स नामक अश्वारोही पथकने भी खूब वीरता दिखलायी थी।

किन्तु केवल इतनेहीसे अंग्रेजोंका इच्छित उद्देश्य पूरा होने वाला नहीं था। वहाँ जितने विद्रोही उनसे टक्कर लेनेके हेतु डँटे थे उन्हें तो अंग्रेजोंने योंहीं चुटकियोंमें मार भगाया था। किन्तु केवल उतनेही से कालपीपर विजय एवम् विप्लवियोंका दमन थोड़ेही हो सकता था! उसके लिये तो उन्हें आगे बढ़नेकी आवश्यकता थी। वह उस समय जिस स्थान पर थे, वहाँसे कालपी बहुत दूर पड़ती थी। उनके मार्गके मध्यही में कल-कल-निनादिनी यमुनाका सुदीर्घ एवम् सुविशाल पात्र पड़ता था। उसके दोनों तटोंपर प्रायः एक-एक कोसपर सुविस्तृत-एवम् ऊबड़-खाबड़ मैदान थे। यमुनामें प्रतिवर्ष बाढ़ आनेके कारण उन मैदानोंमें बड़ी-बड़ी दरारें एवम् भयानक गढ्ढे पड़े थे। उनसे सटकर, दोनों ओर कण्टकपूर्ण सघन झाड़ियाँ थीं। वह झाँड़ियाँ इतनी घनी थीं कि उनमेंसे अधिकांश झाड़ियों में दिन-दोपहरकोभी सूर्य रश्मियोंके दर्शन नहीं होते थे। ऐसे विकट मार्गसे अंग्रेज़ोंको अपना तोपखाना ले जाना एक असम्भव बात बोध हुई। विप्लवियोंके संरक्षणके हेतु निसर्गने उन्हें यह अच्छी सहायता पहुँचायी थी।

सर ह्यूरोज साहब उस भयङ्कर मार्गको सन्मुख देखकर हतवीर्यसे हो रहे। उन्होंने अकस्मात् कालपीपर आक्रमण करनेका विचार त्याग दिया। वह 'गलावली' को ही अपने लिये उपयुक्त स्थान जानकर अपनी सेना सहित पड़ाव डाले पड़े रहे।

विप्लवकारी सैनिक कौंचमें अपनी हार हुई देखकर क्रोधके मारे आग बबूला हो रहे थे। अंग्रेजोंने 'कोंच' के महासमरमें विप्लवियोंको जिस तरह नीचा दिखलाया था, उससे उनके हृदयसे अंग्रेजोंके प्रति और भी तीव्र वैषम्य उत्पन्न हो गया था। उन्होंने भागकर कालपी पहुँचतेही पुण्यश्लोक यमुनाकी शपथ खाकर इस बातकी प्रतिज्ञा करली थी कि वह अंग्रेजोंको बिना पञ्चतत्वमें मिलाये अथवा स्वतः उनके साथ संग्रामकर उसमें अपनी आत्माहुति दिये शान्त न होंगे। उधर किन्हीं अंशोंमें अंग्रेजोंके सुविख्यात रणपण्डित मि० स्टुअर्ट एवम् मि० राबर्टसन का भी यही हाल रहा। वह अपने देश-अपनी जाति एवम् अपनी जातीय मानमर्यादाकी रक्षाके हेतु मरने और मारने पर तुले हुए थे। कोंच एवम् कालपीकी उक्त विजयको देखकर उनमें अपूर्व उत्साह उत्पन्न हो गया था और वह निडर बनकर क्लेश और आपदाओंसे सहर्ष वीरता पूर्वक टक्कर लेते हुए अपने दल-बल सहित आगे बढ़ रहे थे।

उनके इस निष्कण्टक आक्रमण को देखकर ईर्षा और द्वेषके कारण सार-असारके विचारसे हीन हुई विप्लवी सेना क्रोधसे उन्मत्त होकर अपना स्थान छोड़ आगे बढ़ी और उनसे जूझ गयी। सुदक्ष अंग्रेज़ी सेनाको बिना कष्ट उठाये अपूर्व अवसर मिल गया। वह विप्लवियोंको अपनी रक्षाका स्थान छोड़ते देख अपने मोर्चेपर जा डटी। बस फिर क्या था?--अंग्रेज़ोंके विशाल तोपों का आसुरी गर्जन! उनका दावानल दमन्!! एवम् विद्रोहियो का करुण क्रन्दन!!!

विद्रोहियोंके स्थानाच्युत होनेके कारण उनके ओरकी गोलियाँ

अंग्रेज़ी सेनाका बालभी बांका न कर सकीं । उनका सन्धानही अंग्रेज़ सैनिकों पर लागू न होता था। अंग्रेज़ोंकी प्रलयङ्कर तोपें भीषण रूपसे अग्नि वमन कर रही थीं। उनका एक भी गोला बेकार नहीं जाता था। एक-एक गोलेमें प्रायः १०।२० विद्रोही सुरपुर पहुँच जाते थे। अपनी शक्ति भर विद्रोहियों ने भी अपनी रक्षा करने एवम् अंग्रेज़ोंसे टक्कर लेनेकी चेष्टा की, किन्तु व्यर्थ। पहिले ही पथभ्रष्ट होने के कारण उन्हें इस कार्यमें लाभके बदले हानिही उठानी पड़ी। इसी समय दैवकी प्रवलतासे समराङ्गणमें डँटे हुए अंग्रेज़ सैनिकोंको एक और सहायक मिल गया और वह था हैदराबादका सैनिक पथक। इसके मिलतेही पुनः एकबार रणभूमि चेत गयी। क्षणही भर के संग्राममें वहाँ विद्रोहियोंके शवोंका ढेर लग गया। शेष विद्रोही अपनी जान बचा कर वहां से भाग निकलनेकी चेष्टा करने लगे।

विप्लवियोंके सूत्रधार राव साहब पेशवा ज्योंहीं वहाँ से निकल भागनेका अवसर ढूंढने लगे त्योंही महारानी लक्ष्मीबाई कुपित सिंहिनी की भांति दौड़कर उनके सामने जा धमकीं और म्यानसे कृपाण निकालती हुई गरज कर बोलीं—

"खबरदार! एक भी पैर पीछे हटाया तो! महाराष्ट्रके मर्द कहलाने वालेको मर्दहीकी तरह मरना होगा। हटनाही है तो मर्द मराठेकी तरह मर कटकर हटो या मारकर हटो।'

इस समय उनका वह आवेश, क्रुद्ध मुद्रा, उग्र दृष्टि एवम् विद्युत गर्जनकी तरह कड़कीली ध्वनि अपूर्व थी। जिस समय उनके मुखारविन्द से उक्त वाक्य निकले उस समय क्षणमात्रके लिये उभय पक्षमें सन्नाटा

छा गया और सबके सब चेतनाशून्य होकर निर्निमेष नेत्रों से महारानी की ओर निहारते ही रह गये।

उस समय महारानीका मनस्वी मुखमण्डल मानसिक सन्तापके कारण तप्त सुवर्णकी तरह रक्तवर्ण एवम् तेजस्वी बन गया था। उनके सुविशाल नेत्र ईंगुरकी तरह लाल एवम् विस्फारित हो गये थे। उनसे निकलने वाली ज्योति आगकी चिनगारियों की तरह बोध होती थी। तीव्र श्वासोछ्वासके कारण नाकके नथुने मानो फटे जाते थे। अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर स्फुरण कर रहा था। धमनियोंका रक्त-प्रवाह समुद्र की उत्ताल तरंगोंको तरह उछालें मार रहा था। उन्होंने राव साहब पर दो चार मर्म्मस्पर्शी वाक्‌बाण छोड़कर शीघ्रही अपना रुख विप्लवियों की ओर किया और बोलीं,—'यदि युद्ध में मरने ही का भय था तो क्यों नहीं सौभाग्यवती कुलवधुओंकी तरह चूड़ियाँ पहिनकर घरमें छिपे बैठे रहे ? शत्रुओंकी मारसे भय खाकर उसे पीठ दिखलाना कापुरुषों एवम् नपुंसकोंका काम है ! जो मनुष्य, अपने धर्म्म अपने देश एवम् अपनी स्वतन्त्रता से बढ़कर अपने विनाशी शरीरका मूल्य अधिक समझता है वह मनुष्य, मनुष्य नहीं, पशु है। बतलाइये,—क्या आप लोग अपना नाम पशुओंकी श्रेणीमें लिखाना चाहते हैं ? क्या आप लोग नपुंसकोंकी पंक्तिमें बैठना चाहते हैं ? यदि हाँ, तो जाइये। यहाँ आपकी कोई आवश्यकता नहीं। जिधर आपकी इच्छा हो उधर जाइये। किन्तु याद रखिये, आपका इस प्रकारसे चला जाना आपके परम् पूज्य माता पिताओंको कभी स्वर्गमें स्थिर न रहने देगा।

इतना कहकर वह वीर रमणी तीरकी तरह दौड़कर एकही छलांग

मैं अपने घोड़े पर बैठ गयी और अपने कृपाणको म्यानसे बाहर निकाल कर अपने अधीनस्थ 'लालवर्दी' वाले २५० सैनिकोंको ललकारती हुई झञ्झवात की तरह प्रखर वेगसे अंग्रेज़ी सेनाकी दाहिनी ओर झपट कर उसका मान मर्दन करने लगी। उस समय उनका आक्रमण वह घोरतम आक्रमण था कि बड़े-बड़े दिग्गज अंग्रेज़ वीरोंके छक्के छूट गये। महारानी लक्ष्मीबाई गोरोंपर ऐसी टूटीं जैसे बाज़ कबूतरोंपर टूटता है। उनका वह प्रचण्ड आक्रमण, विचित्र वेष-भूषा एवम् अद्भुत पराक्रम देखकर कोई भी वीर यह नहीं कह सकता था, कि वह वीर-श्रेष्ट नर-रत्नोंकी शिरोमणि नहीं है। उनके हृदयमें उत्पन्न हुआ आवेश उस समय उनके अङ्ग-अङ्गमें प्रवाहित हो गया था। वह एक सुदक्ष अश्वारोहीकी तरह घोड़े पर बैठकर लगामको दाँत से पकड़े हुए दोनों हाथोंसे सड़ासड़ तलवार चलती हुई गोरोंको मूलीगाजरकी तरह काटते-काटते भीषण अग्नि वमन करनेवाली अंग्रेज़ोंकी गरनाली तोपोंके बिल्कुलही निकट,—अर्थात् उनसे प्रायः २० फीटकी दूरी तक चली गयीं थीं। उनके उस प्रचण्ड आक्रमणको देखकर अंग्रेज़ी सेना हतवीर्य हो गयी और एकस्मात् अपने प्राणोंके मोहसे पीछे हट गयी। उनकी अचूक मारसे बड़-बड़ शूर-वीर एवम् साहसी अंग्रेज़ वीरोंके सिर धड़से अलग हो गये। उस समय महारानी लक्ष्मीबाईने इतनी सुव्यवस्था एवम् बुद्धिमानीसे युद्ध किया था कि अल्प अवकाशमें अंग्रेज़ोंकी सबसे जबर्दस्त 'लाइट फ़ील्ड'तोपें कुछ कालके लिये बिल्कुलही बन्द हो गयीं। उनके गोलन्दाज़ महारानी के अलौकिक पराक्रमको देखकर सन्नाटे में आगये और किंकर्त्तव्य विमूढ़ बनकर चेतनाशून्य प्रतिमाकी तरह जहाँके तहाँ खड़ रहे।

तेज और पराक्रमकी प्रतिमा महारानी लक्ष्मीबाईके अनुपम शौर्य एवम् साहसको देखकर कायरोंका भी खून उबल पड़ा और भागने वाले सैनिक भी, (जो अधिकांश रूपसे बान्दाके नवाब एवम् रावसाहब पेशवाके अङ्कित थे) जोरोंके साथ टिड्डीदल की तरह अंग्रेज़ी सेना पर टूट पड़े। पुनः एकबार घोर संग्राम छिड़ गया। रुद्र रूपिणी रणचण्डी रह रहकर रक्तवर्णीय रणपण्डितोंके रुधिरसे रणभूमि का रावसी प्रावरण करने लगी। उस समयके समरको देखकर यही बोध होता था कि अब विप्लवियोंकी विजय होना अनिवार्य है। किन्तु इसी समय विप्लवियोंके भाग्य ने फिर पलटा खाया जिसके परिणाम् स्वरूप उसी समय ब्रिगेडियर स्टुअर्ट नामक अंग्रेज़ सेनापति अपना घोड़ा दौड़ाते हुए अंग्रेज़ी तोपखानेके पास पहुँच गया। उसने अपने गोलन्दाज़ोंको खूब उत्साहित किया और पुनःगोलन्दाजी आरम्भ करवा दी। ठीक इसी समय अंग्रेजी सेना के प्रधान कर्त्ताधर्त्ता भाग्यविधाता सर ह्यू रोज़को भी महारानीके प्रलयङ्कर आक्रमण और अंग्रेज़ोंकी हारका समाचार मिला। वह इस समाचारको सुनकर द्वेषके मारे उन्मत्त हो उठे और तुरतही ऊँट सवारों की बड़ीसी सेना लेकर युद्धस्थलकी ओर पोल पड़े। उन्होंने रणाङ्गणमें पहुँचतेही समस्त अंग्रेज़ी सेनाका नायकत्व अपने सिर लेकर बड़े ज़ोरों शोरोंके साथ विप्लवी सेनापर आक्रमण किया। विप्लवी भी उस समय खूब रण-रंगमें सने हुए थे। अतः वीरताके साथ अपने कर्त्तव्य-पथ पर डटे रहे। किन्तु उसी समय जब उनपर ८६ एवम् २५ वें सैनिक दलों ने संयुक्तरूपसे आक्रमण किया तब उनके पैर उखड़ गये और वह यत्र-तत्र-सर्वत्र तितर-बितर होकर भागने लगे। इस समयभी महारानी ने

आगे बढ़कर अंग्रेज़ोंसे कड़ी टक्कर ली और विप्लवी सेनाको डटे रहने की चेष्टा की। किन्तु, इस बार विप्लवियोंमें जो भगदड़ मची थी, वह रुकनेवाली नहीं थी। स्वयम् उनके सेनानायक प्राणनाशके भयसे भाग निकले थे। अतः महारानी उस समय उनको रोक रखनेमें कृतकार्य न हो सकीं। विवश होकर उनकोभी अन्तमें संग्रामसे विमुख होते हुए पेशवाकी छावनीमें निकल जाना पड़ा।

सर ह्यूरोज विप्लवियों की वह भगदड़ देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उन भगुओंका पूरी तरह पीछा कर उनका बुरीतरह संहार करना आरम्भ किया। उस समयका वह संहार यद्यपि झाँसीके विजयकी सटीक पुनरावृत्ति नहीं थी तथापि वह उसका सूक्ष्मरूप तो अवश्यही था। अंग्रेज़ी सेना विप्लवियों को,—जो जहाँ भी मिला काटती एवम् मारती हुई चली गयी। सहस्रों विप्लवी अंग्रेज सैनिकोंकी मारसे भयभीत होकर यमुना नदीके बीहड़में जा छिपे।

इस प्रकार युद्धभूमिको शत्रुओंसे शून्य बनानेके पश्चात् उन्होंने अपनी सेनाके दो भाग किये। जिनमेंसे पहिला भाग, जिसमें पहली ब्रिगेडके सैनिक थे, ब्रिगेडियर सी० एम० स्टुअर्टके आधीन कर दिया और उन्हें यमुना नदीके तटवर्तीय मार्गसे कालपीकी ओर भेज दिया पश्चात दूसरा भाग अर्थात दूसरी ब्रिगेडको स्वयम् अपने साथ लेकर वह सीधे मार्गसे कालपीको ओर अग्रसर हुए।

विद्रोहियोंके नेता राव साहब पेशवाने कालपीको अपना केन्द्रस्थान बना रखा है, यह हम पहिले ही लिख चुके हैं। अतः यहीं पर तर्कशास्त्र द्वारा यह भी सिद्ध हो जाता है कि जिस स्थानको कोई योद्धा अपना

केन्द्र बनाता है वहाँ वह शत्रुओंसे टक्कर लेने एवम् अपने संरक्षणके हेतु पर्य्याप्त साधनभी एकत्रित कर रखता है। इस जनसाधारण सिद्धान्त के अनुसार रावसाहब पेशवानेभी कालपीके किलेमें यथेष्ट गोला-बारूद, अन्यान्य युद्धसामग्री एवम् एक बड़ी सी सेना एकत्रित कर रखी थी। इसके अतिरिक्त जो सेना युद्धभूमिमें पीठ दिखला कर वापिस लौट आयी थी वहभी वहीं चारो ओर फैली हुई थी। अंग्रेज़ी सेनाके कालपी पहुँचतेही उसे यह सब बातें समझते देर न लगी। उसके गोलन्दाज पथकके अधिकारी कर्नल मैक्सवेलने पेशवाकी उक्त सेनाको युद्धके लिये तैय्यार देख उसपर तोपें दगवाना आरम्भ किया। कुछही देरमें उन यमस्वरूपी आग्नेयास्त्रोंके भीषण अग्निवमनसे विप्लवियोंके टाँके ढीले हो गये और वह क्रम-क्रमसे पीछे हटनेकी चेष्टा करने लगे। इसी समय एक ओर अंग्रेज़ी सैनिक पथक बड़े वेगसे शहरमें घुस पड़ा। विप्लवी सेना उसे देख क्रोधके मारे और भी खीझ उठी। पेशवाके गोलन्दाज़ोंको एवम् अन्य मोर्चे सम्हालते हुए विप्लवियोंने एकबार अन्तिम साहस दिखलाकर अंग्रेज़ी सेनापर गोले दागना आरम्भ किया। किन्तु, देशका दुर्दैव था जो उनकी तोपोंका सन्धान एवम् उनके मुखसे निकलने वाले गोलोंकी मार कालपीके अंग्रेज़ी सैनिकों तक न पहुँच सकी। अंग्रेजोंकी तोपें विशाल, उनका गोला-बारूद प्रलयङ्कर एवम् उनकी सेनाका निवास-स्थान संरक्षित तथा युद्धोपयोगी होनेके कारण उनकी मार विप्लवियोंपर वह करारी पड़ी कि बेचारे कुछही क्षणोंमें मारे भयके घबड़ा उठे। उन्हें इस तरह हताश होते देख अंग्रेजों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने खुशी-खुशी आगे बढ़कर विद्रोहियोंके चार

हाथी छीन लिये और उसी ८४ गुम्बजवाले मैदानमें अपना डेरा डण्डा डाल दिया।

इसी ऐन वक्त पर स्वयम् सर ह्यूरोज़ भी अपने दल-बल सहित उनसे जा मिले। उनके वहाँ पहुँचतेही सारी अंग्रेजी सेनाका समूहीकरण हो गया और वह एकत्रितरूपमें कालपी शहरमें पील पड़ी। विद्रोही सेना उसे आगे बढ़ते देख भयभीत होकर ऐसी भगी मानों कोई भूखा शेर उसका पीछा कर रहा हो। अंग्रेज़ोंकी ओरसे हैदराबादकी कन्टिजेन्ट सेनाके कप्तान मि० एवेट एवम् कर्नल गालने पर्य्याप्त दूरी तक उन भग्गू विप्लवियोंका पीछा किया तथा उनकी बहुत सी तोपें एवम् अन्यान्य युद्धोपयोगी सामग्रियाँ छीन लीं! इस समय भी विप्लवियोंकी ओर के बहुतसे सैनिक काम आये।

अंग्रेज़ोंकी इस तरह विजय होते देख एवम् उनको अधिकाधिक संख्यामें कालपीमें प्रवेश करते देख विद्रोहियोंके प्रमुख सूत्रधार रावसाहब पेशवा, तात्याटोपी, बान्दाके नवाब एवम् महारानी लक्ष्मीबाई प्रभृति अपने प्रमुख सहकारियोंको साथ ले बड़ी युक्तसे कालपीके बाहर निकल गये। उनके चले जानेपर अंग्रेज़ोंको कालपीका किला एवम् शहर जीतने में कुछ भी कष्ट न उठाना पड़ा। २४ मईको कालपीका सम्पूर्ण स्वत्व अंग्रेज़ोंके हाथ ही रहा। यही दिन इंग्लैण्डकी प्रसिद्ध महारानी विक्टोरियाका जन्मदिवस था। अंग्रेजोंको कालपी विजय एवम् इस जन्मदिवसके कारण उस दिन द्विगुणित प्रसन्नता रही। उन्होंने उस दिन क़िलेके सामने वाले मैदानमें मनमुराद रूपसे तोपोंकी सलामी दी और दूने ज़ोर शोरके साथ विजयोत्सव मनाया।

इस विजयसे अंग्रेजोंको जो एक और बड़ा भारी लाभ हुआ वह था युद्धोपयोगी सामान। वीरवर तात्याटोपी ने एक वर्षतक लगातार अविरल परिश्रमकर कालपीके किलेमें खूब युद्ध सामग्री एकत्रित कर रखी थी। वह कितनी थी इसका अनुमान केवल इसी बातके ज्ञानसे हो जाता है कि उस समय अंग्रेज़ोको बन्दूकोंमें भरनेवाली जो बारूद मिली थी केवल उसीका वजन ६०,००० पौण्ड था! इसीसे अन्यान्य सामानों-उदाहरणार्थ तोप, बन्दूक, तलवार, ढाल इत्यादि-का अनुमान किया जा सकताहै * अस्तु,

---

* सर ह्यू रोज़के स्नेही डा० सिलवेस्टर स्वयम् इस सम्बन्धमें अपनी The Compaign in Central India नामक पुस्तक के ११६ एवम् ११७ वें पृष्ठमें इस तरह लिखते हैं:—

"There was as indescribable medly here. Just in the fort of Jhansi, but the articles here all pertained to the art of War. There were guns large and small, numbering fifteen, besides a large Morter and Howitzer: There were Conical stocks, of English round shell and several sheds in which the manufacture of Canon, Howitzer, Shells and the repair of arms, was being carried on. The Toolls and appliences such as forges, hammers vices, smiths, braces etc. were all of En-

कालपी विजयका समाचार सुनकर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ्गने अपने पत्रमें सर ह्यू रोज़की बड़ी प्रशंसाकी एवम् तार द्वारा उनका बड़े ज़ोरों शोरोंके साथ अभिनन्दन किया। इसमें सन्देह नहीं कि सरह्यू रोज़ इस अभिनन्दनके लिये सर्वथा योग्य थे। उन्हींका यह प्रताप था कि मध्य भारतमें अंग्रेजोंके विरुद्ध जो विप्लवी दल संगठित हुआ था वह सर्वदाके लिये नष्ट-भ्रष्ट हो गया और सारे प्रान्तमें अंग्रेजोंके सम्पूर्ण शासनको स्थापना हो गयी। काल्पी विजयके पश्चात् वह सतत परिश्रम एवम् बारम्बारके संग्रामके कारण बुरी तरह थक गये थे। अतः विश्रामके हेतु छुट्टी लेकर बम्बई चले गये। उनके पश्चात् कामाण्डर-इन चीफ सर कालीन कैम्बेलने अपनी सेनाको दो दलोंमें विभक्त कर उनमेंसे एक दल झाँसी प्रान्तकी रक्षा एवम् दूसरा दल ग्वालियरकी रक्षाके हेतु भेज दिया।

*   *   *   *

---

glish make. Several muskets had been restocked and very well fitted. There were vast numbers of broken brass shells, which proved they had rather failed in that branch of ordinance manufacture: they had all been cast on clay moulds and the outside filed smooth...Infact this was the greatest central arsenal of the mutineers, and had it been capable of defence it would not have fallen such an easy prey to us."

स्वराज्य स्वप्न—प्यारे पाठकगण ! कालपीके महासमर तक का इतिहास लिखनेके पश्चात् हम आप सुहृद्जनों से क्षमा माँगते हुए सर्व्वप्रथम तात्कालीन भारतीय परिस्थिति की आलोचना कर अन्तमें पुनः अपने इष्ट विषयकी ओर अग्रसर होंगे।

गत् परिच्छेद तकका इतिहास पढ़नेसे यह बात भली भाँति ज्ञात हो जाती है कि भारतवर्ष में अंग्रेज़ी शासन के आरम्भ होनेके पश्चात् ईस्वी सन् १८५७ के जून मासमें यहाँ क्रान्तिकी भयङ्कर आंधी उठी थी। वह क्यों और किसलिये इसका विवेचन करना यद्यपि हमारे इष्ट विषय से परे है तथापि जहां तक सम्भव हो सका एवम् जहाँ तक उचित समझा वहाँ तक हमने सूत्रपातके रूप में उसका कुछ न कुछ संक्षेप रूपमें दिग्दर्शन करही दिया है। अतः हम यहाँ उसकी पुनरावृत्ति न कर तत्सम्बन्धमें केवल इतनाही लिखेंगे कि जो भारत अंग्रेज़ी शासनके पूर्व सदा शान्त था और जहाँ क्रान्ति का नामभी नहीं था उसी भारतमें अंग्रेज़ी शासनारम्भ होनेके पश्चात् ईस्वी सन् १८५७ के जून मासमें अकस्मात् भीषण रूपसे क्रान्तिका दावानल सुलग गया। भारत का निष्कलङ्क नभोमण्डल विप्लवकी काली कराली घटासे आच्छादित होगया। भारतका बुन्देलखण्ड का सा शक्तिशाली प्रान्त, जो अंग्रेजोंके आरम्भकाल में उनका अनन्य भक्त था वही कालावधि के पश्चात् सन् ५७ में उन्हींके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा लेकर खड़ा हो गया !!! सागर-कालपी-बान्दा आदि जो बुन्देलखण्ड की नाक कहलाने वाले ज़िले थे, उन सभों में से अंग्रेज़ी प्रतिष्ठा उठ गयी और वहां विप्लवियोंका शासन आरम्भ हो गया। किन्तु

थोड़ेही अवकाश के पश्चात् रणधुरन्धर सर ह्यू रोज़ एवम् मि० विटलाक के बुन्देलखण्डमें उपस्थित होतेही वह प्रान्त विप्लवसे इस तरह नाम-शेष होगया जैसे वर्षाऋतुके समय कभी कभी सारा नभोमण्डल भयङ्कर रूपसे अभ्राच्छादित होने पर भी अकस्मात् उसपर भगवान् सहस्ररश्मि के प्रखर किरणोंके पड़नेसे वह अपने कलङ्कित कलेवरको वृष्टिके रूपमें परिणत कर त्याग देता एवम् पुनः निष्कलंक रूपमें प्रकट हो जाता है।

इस समय सर ह्यू रोज़ने केवल दो तीन महीने की ही अवधिमें अपने अद्भुत पराक्रम द्वारा नर्म्मदा नदीका तटवर्तीय प्रान्त जीतकर कालपी एवम् झाँसी जैसे बलाढ्य विप्लवकारी केन्द्रोंमें भी अपनी विजय पताका फहरा दी। साथही साथ जनरल विटलाक नेभी अपना अलौकिक चातुर्य दिखलाकर बाँदा और कालपी जैसे विप्लवकारियोंके प्रधान अड्डे जीत लिये और कालपी पहुँचकर सर ह्यू रोज़की सहायता की। अंग्रेज़ोंके तीसरे पदाधिकारी मेजर राबर्टसनने राजपूतानेके कर्नल स्मिथको एक नयी सेनाका सूत्रधार बनाकर उसे यमुनाके पश्चिमी तटको विजय करने के हेतु भेज दिया। इसके अतिरिक्त अन्यान्य मार्केके स्थानोंपर भी अंग्रेज़ोंकी ओरसे विद्रोहियोंका दमन करनेके लिये सेनाएं भेजी गयीं। परिणाम् स्वरूप धीरे धीरे सारा बुन्देलखण्ड प्रान्त अंग्रेज़ोंकी दासता के पाशमें बन्ध गया। झाँसी और कालपीकी संसार प्रसिद्ध तोपें एवम दुर्ग तथा अन्यान्य युद्धोपयोगी सामग्री विद्रोहियोंके हाथसे निकल कर अंग्रेजोंके कर-कमलोंमें चली गयी। विद्रोही नेता एकसे एक बढ़कर शूरवीर थे तथापि उनमें संगठन-सुव्यवस्था एवम् सुदक्षताकी कमी होनेके कारण तथा आपसके मतभेद तथा ईर्षा-द्वेष-अहंकारादि दुष्ट प्रवृ-

त्तियोंके कारण वह अंग्रेजों से धीरताके साथ टक्कर न ले सके। उनका रङ्ग धीरे धीरे अंग्रेजोंके सम्मुख फीका पड़ता चला गया और एक दिन वह आया जिस दिन वह सर्व प्रकारसे शक्तिहीन निष्प्रभ और निराधार होगये। यह समय एक तरहसे गत परिच्छेदमें वर्णित कालपीके संग्रामके पश्चात् देखना पड़ा। कालपीके युद्धमें विप्लवियोंको जैसा गहरा धक्का लगा वैसा गहरा धक्का उन्हें इससे पहिले कभीभी नहीं लगा था। इस प्रचण्ड धक्केसे मर्माहत होकर विद्रोही दलके प्रमुख नेता रावसाहब पेशवा, तात्याटोपी एवम् बान्देके नवाब सम्पूर्ण रूपसे हताश हो गये और जैसेभी बन सका हथेली पर प्राण लिये कालपी का रणक्षेत्र छोड़, ग्वालियर की ओर भाग निकले।

उस समय यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाईने अपने युद्ध कौशलकी पराकाष्ठा कर दिखलायी थी तथापि वह थीं तो पेशवाके ही अधीन। उस समय उन्हें स्वेच्छानुसार कोई कार्य करने का न तो कोई अधिकार ही पेशवाने दे रखा था और न उनके पास कोई बलाढ्य सेनाही थी। जो कुछ २५०।३०० वीर उनके पास थे वह भला अंग्रेजोंके उतने बड़े विशाल सेनासमुद्रके सामने क्या कर सकते थे? इतने पर भी उन्होंने जिस वीरताके साथ उन थोड़ेसे वीरोंको बदौलत अंग्रेज़ोंसे टक्कर ली उसका चित्र चित्रण हमने अपने गत् परिच्छेद में करही दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि पेशवा एवम् बान्देके नवाब उस समय हिम्मत न हारते और डंटकर खड़े रहते तो महारानी लक्ष्मीबाईकी बदौलत विप्लवियोंका अंग्रेज़ोंपर विजय प्राप्त करना कोई असम्भव एवम् अनहोनी घटना नहीं थी। किन्तु पेशवा तो उस समय एक जनसाधारण अबलासे

भी कहीं अधिक गये गुज़रे हो गये थे। उन्हींके हाथोंमें विप्लवियोंके सारे मुख्य-सूत्र थे। अतः उनके पैर वापिस लेतेही विप्लवी सेना को साथ ही साथ महाराष्ट्र रमणी महारानी लक्ष्मीबाई को भी, उनकी इच्छा के विरुद्ध रणक्षेत्र छोड़कर पेशवाका अनुसरण करना पड़ा। अस्तु,—

यह लोग कालपीमें अंग्रेज़ोंका प्रभुत्व प्रस्थापित होते देख अपनी बची—खुची सेना लेकर ग्वालियर से प्रायः ४६ मीलकी दूरी पर स्थित् गोपालपुर नामक नगरमें जा पहुँचे। उस समय उनके साथ तात्याटोपी नहीं थे। वह कालपीके संग्रामके पूर्वही अपने परमपूज्य पिताजीका दर्शन करनेके हेतु जालौनके निकटवर्तीय चरखारी नामक नगर में चले गये थे। उन्होंने ज्योंही कालपीमें विद्रोहियोंका पराभव एवम् उनके गोपालपुरसे भाग जानेका समाचार सुना त्योंहीं वह दौड़कर गोपालपुर जा पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचनेपर भय और निराशाके कारण बावले बने रावसाहब पेशवाकी जानमें जान आयी। उस समय वहाँपर जितनेभी विप्लवी नेता उपस्थित थे वह सबके सब भीषण रूपसे चिन्ताग्रस्त थे। उनके सामने विप्लवियोंके भविष्यका जो नग्न चित्र नाच रहा था उसे देखकर उनकी घिग्गी बँधी जाती थी। उन्होंने अबतकके सारे घटनाक्रमोंको श्रृङ्खला-बद्धरूपमें स्मरणकर उनसे जो कुछ निष्कर्ष निकाला था वह बहुतही भयंकर था। वह पूर्ण रूपसे समझ चुके थे कि यदि इस समय किसी युक्ति प्रयुक्तिके सहारे अंग्रेजोंपर विजय न करली जायगी तो उन्हें संसार में रहनेका भी ठिकाना न रहेगा। किन्तु साथही साथ बलाढ्य अंग्रेजोंसे टक्कर लेना कितना दुःसाध्य है इसे भी वह अच्छी तरह जान चुके थे। उन्हें अबतकके अनुभव से अंग्रेजोंके युद्ध प्रावीण्य एवम् सैनिक शिक्षाका

पूर्ण ज्ञान होगया था। वह इस बातको भलीभाँति जान चुके थे कि विप्लवियोंके बारम्बार अंग्रेजों द्वारा पराजित हो जानेके कारण उन्हें यथेष्ट युद्धसामग्री मिल गयी है और वह प्रबलरूपसे शक्तिसम्पन्न हो गये हैं। साथही साथ उन्होंने जब अपने पक्षके सम्बन्धमें विचार किया तब वह उन्हें प्रत्येक दृष्टिसे अशक्त एवम् अनुपयोगी जँचा। कदाचित थोड़ी देरके लिये यह भी मान लिया जाय कि वह अपने पक्षको इस तरह सब प्रकारसे अशक्त देखकर चुपही बैठे रहते तो भी उनके लिये वैसे बैठे रहना कम भयंकर बात नहीं थी। उस समय अंग्रेज सरकार उनके पैशाचिक उत्पातके कारण मनही मन कुढ़कर खाक हो गयी थी और इसी अवसरकी ताकमें चौकन्नी होकर बैठी थी कि कब घात मिलता है और कब ये लोग उसके ज़बर्दस्त पञ्जेमें पकड़े जाते हैं। इन्हीं सब बातों के उधेड़बुनमें सारे गोपालपुरस्थ विद्रोही नेता व्यग्र थे। उन्हें जिधर देखो उधर ही अपना भविष्य अन्धकारमय दिखलायी देता था। वह समझ नहीं सकते थे कि कैसे उस दारुण स्थितिसे टक्कर ली जाय। रात भर वे लोग पेशवाकी छावनी में इसी समस्यापर विचार कर रहे थे। किन्तु फिर भी वह अन्त तक कोई निश्चयात्मक निश्चय न कर सके। उनके चेहरेपर भय और चिन्ताकी रेखाएं स्पष्टरूपसे अंकित हो गयीं। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर गर्दन लटकाये चुपचाप बैठे रहे।

जिस समय महारानी लक्ष्मीबाईको यह समाचार विदित हुआ, उस समय वह भी क्षणमात्रके लिये गम्भीर बनकर विचाराधीन हो गयीं। उनके इस तरह विचाराधीन होनेका कारण यही था कि वह विप्लवियोंकी अशक्तता एवम् अंग्रेज़ोंकी शूरतासे भलीभाँति परिचित थीं। अंग्रेज़ोंकी

सेनामें किस तरह सुशिक्षा, एवम् सुसंगठनका प्राबल्य था, इसका उन्हें भलीभाँति ज्ञान था। किन्तु विचार करते करते ज्योंही उनके मनः चक्षुओंके सम्मुख तत्कालीन ब्रिटिश सरकारके अन्यायी कृत्योंका चित्र अंकित हो गया त्योंहीं वह अकस्मात स्वप्न देखे हुए मनुष्यकी तरह विचार निद्रासे हड़बड़ाकर जाग उठीं। उन्हें आवेश हो आया। वह तत्क्षण उठ खड़ी हुईं और पेशवाके दरबारमें उपस्थित होकर बोलीं—

* श्रीमन् !

यद्यपि मैं इस बात को भलीभाँति जानती हूँ कि मुझ समान एक अनाथ विधवा अबलाका इस तरह श्रीमान्के दरबार में उपस्थित होकर कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बात कहने के सदृश्य है। मैं इस योग्य कदापि नहीं हो सकती कि आप सरीखे पुण्यवान् अन्नदाताको कोई भी उपदेश अथवा मन्त्रणा दे सकूँ तथापि आज तक मैंने तथा मेरे पूर्वजोंने आपका तथा आपके पूर्वजोंका ही नमक खाया है, इसी बात पर ध्यान देकर प्रसङ्गवशात् मुझे आपके सम्मुख जिह्वा खोलने की अनधिकार चेष्टा करनी पड़ती है, इसके लिये मैं श्रीमान्की करबद्ध होकर क्षमाप्रार्थी हूँ।

---

* महारानी द्वारा पेशवाकी दी हुई उक्त मन्त्रणा की प्रशंसा करते हुए तथा रावसाहब पेशवा, बाँदा के नवाब, तात्याटोपो एवम् महारानी लक्ष्मीबाई इन चारों प्रमुख विप्लवी नेताओंकी चतुराईके सम्बन्ध में तुलनात्मक रूप से विचार करते हुए कतिपय अंग्रेज विद्वानों ने महारानी लक्ष्मीबाई को ही उन सभों में अधिक सुचतुर एवम् सुनीतिज्ञ घोषित किया है। उनके सम्बन्ध में मि० मेलिसन इस प्रकार लिखते हैं:—

श्रीमान् को भलीभाँति विदित ही है कि एक समय वह था जब श्रीमान्के पूर्वजों ने अपने प्रबल प्रतापसे अखिल भारतवर्षको अपनी मुट्ठी में कर रखा था। श्रीमान् के ही वह पूर्वज थे जिन्हों ने प्रबल प्रतापी मुगल वीरों के समय समय पर दाँत खट्टे किये, दिल्ली सम्राटके सिंहासन

"The situation then seemed desperate to the rebel chieftains but desperate situation suggest desperate remedies; and a remedy which on first inspection might well seem desperate did occour to the furtile brain of one of the confiderate, to which one it is not certainly known. But judging the leading group of the Conspirators by their antecedents-Rao Saheb the Nawab of Banda, Tantia Tope and the Rani of Jhansi-we may at once dismiss the two first from consideration. They possesed neither the character nor the genius to conceive a plan so vast and so daring of the two who remain, we may dismiss Tantia Tope. Not that he was incapable of forming the design but—we have his memoirs and in those he takes to himself no credit for the most successful act with which his career is associated. The fourth conspirator possessed the genius, the

को जीर्ण शीर्णकर डाला तथा अपने घोड़ोंको अटकका पानी पिलाकर हिन्दू साम्राज्यकी नींव मज़बूत की। किन्तु इसका वास्तविक कारण क्या था? क्यों महाराष्ट्र की शक्ति इतनी प्रबल हुई? क्योंकर महाराष्ट्र वीर सदा विजयी होते रहे? इसका एक मात्र उत्तर यही है कि उस समयके समस्त महाराष्ट्रीय अधिकारियोंने सर्वदासे सुदृढ़ एवम् अभेद्य दुर्गोंका ही आश्रय लिया था। महाराष्ट्र राज्यसंस्थापक प्रातस्मरणीय महाराज छत्र-

---

daring, the despair necessary for the conception of great deeds. She was urged on by hatred, by desire of vengeance, by a blood-stained concience, by a determination to strike hard whilst there was yet a chance. She could recognise the possibilities before her; she could hope even that if the first blow were successful the fortunes of the compaign might be changed; she possessed and exercised unbounded influence over one at least of her companions—the Rao Saheb. The conjecture, then almost amounts to certainty that the desperate remedy with the confidrates, decided to execute at Gopalpore was suggested and pressed upon her comrades by the daring Rani of Jhansi—Malleson's History of the Indian Mntiny' vol 5, P. 143-144.

पति शिवाजी ने मुसलमानोंको बारम्बार शिकस्त दी थी एवम् हिन्दू साम्राज्य को विलक्षणरूपसे सुदृढ़ बनाया था; वह भी सिंहगढ़, तोरण, रायगढ़, चाकण प्रभृति सुदृढ़ दुर्गोंके आश्रयके प्रताप के कारण ही बनाया था। उन्होंने अपने राज्य की संस्थापनाके पूर्व उसके संरक्षणके साधनों को ही अपने हाथ में कर लिया था। उनके पास जब बहुतेरे सुदृढ़ दुर्ग हो गये, उनकी सेना जब भली भाँति सुसंगठित एवम् सुशिक्षित हो गयी तभी जाकर उन्होंने अपने पराक्रमकी बदौलत यवनोंपर आक्रमण करना आरम्भ किया और अविरलरूपसे उनपर विजय प्राप्त करते चले गये। उनके दुर्ग उनकी सेना उनके सुदक्ष सेनानायक और उनकी प्रजा, यही उनके राज्यके चार मुख्यतम आधार स्तम्भ थे और उन्हींके ऊपर उन्होंने राज्यकी सुदृढ़ इमारत बाँधी। बतलाइये आज आपके पास इन आधार स्तम्भों में से कौनसा स्तम्भ शेष रह गया है? शायद एक भी नहीं। न तो आपके पास शत्रु से टक्कर लेनेके हेतु कोई सुदृढ़ दुर्ग ही रह गया है, न आपकी सेनाही सुनियन्त्रित, सुशिक्षित, सुसंगठित एवम् सुचतुर है। आपकी सेना में एकभी ऐसा सेनानायक नहीं है जो अपने पूर्वजों की तरह, ख़ैर, उनकी तरह न सही, सर ह्यूरोज़ को ही तरह सुदक्ष एवम् सुचतुर हो। प्रजा! प्रजाकी तो बातही दूर रहे। जिस राजाकी आज यह प्रजा है कल वह किसी दूसरेकी हो जायगी। उस प्रजासे कैसे किसी विवक्षित राजा का प्रेम हो सकता है?

तात्पर्य क्या? यही कि इस समय हमें दृढ़ता और साहसपूर्वक सर्वप्रथम राज्य के तीन प्रमुख आधार स्तम्भों को प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनमें से प्रथम आधार-स्तम्भ है—दुर्ग।

हमारे पास इस समय कोई भी सुदृढ़ दुर्ग नहीं रह गया है। अब तक के अनुभव से श्रीमान् यह जान ही चुके होंगे कि हमलोगों ने अंग्रेजोंसे जो कुछ टक्कर ली और उनके सामने इस अवधि तक जैसे भी डंटे रहे वह केवल झाँसी एवम् कालपीके दुर्गों की बदौलत ही। इस समय वे दुर्ग भी हमारे हाथ से चले गये हैं और उनका पुनः इस समय इतने शीघ्र हमारे हाथ आ जाना केवल दुःसाध्य ही नहीं, असम्भव सा है। धूर्त और कर्तव्यपरायण अंग्रेज़ अपने उन नवीन जीते हुए दुर्गों की व्यवस्था भलीभाँति कर चुके हैं और उनके पुनः प्राप्ति की चेष्टा करना ही मानों जानबूझ कर आग में कूदने के बराबर है। ऐसी दशा में मेरी दृष्टि से ग्वालियरकी ओर बढ़कर वहाँ के पहाड़ी किले हस्तगत कर लेना एवम् सिन्धिया नरेश तथा उनकी सेनाको अपना सहायक बना लेना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। मुझे विश्वास है कि ग्वालियर का किला हाथ में आने से हमलोग भलीभांति अंग्रेज़ों से टक्कर ले सकेंगे।

श्रीमान्! रही यह सब झंझटें छोड़ कर भाग निकलने की बात! उस सम्बन्धमें तो जहां तक मैं समझती हूँ विचार करना व्यर्थ है। कारण यदि थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि हमलोग भाग जायंगे तो कहां? भारतवर्ष के किसी स्थान में ही तो? धूर्त शिरोमणि अंग्रेज़ों को हमें खोज निकालना कौनसा कठिन है? हम लोगों ने जिस तरह उनसे शत्रुता मोल ली है, सोते हुए सांप को जगाया है, वह क्या यों ही हमें बिना खोजे–बिना काटे छोड़ देगा? उनका हमारा पीछा करना, हमें खोज निकालना एवम् हमें फाँसी पर लटकवाना ये तीनों ही

अनिवार्य बातें हैं । ऐसी परिस्थति में क्यों न हम सबके सब महाराष्ट्र वीरों की तरह अपने पूर्व्वजों के नाम को अमर बनाते हुए समाराङ्गण में लड़कर शत्रु को जीतें या उनके कृपाण के धारातीर्थमें अपने सरोंको प्रवाहित कर अक्षय स्वर्गसुख का अनुभव करें ?

शेष दो आधार स्तम्भों के विषय में मुझे यहां कुछ कहना नहीं है। उनके सम्बन्ध में ग्वालियर का दुर्ग हस्तगत करने के पश्चात् भी विचार किया जा सकता है।

महारानी लक्ष्मीबाईकी उक्त मन्त्रणा रावसाहब पेशवा एवम् तात्या टोपीको बहुतही ठीक जंची। उन्होंने मनही मन महारानीके आदेशों को पूर्णरूपसे पालन करनेका निश्चय कर लिया और वह ग्वालियर के किले पर आक्रमण करनेके हेतु तैयार हो गये। पेशवा के सुदक्ष सेनापति तात्याटोपी पहिले से ही ग्वालियर का किला जीतने का विचार कर चुके थे और इसीलिये उन्होंने ५।६ मास पूर्व्वही गुप्तरूप से ग्वालियर पहुँच कर वहां की सेना में विद्रोहका वीजारोपण कर रखा था। उसका परिणाम भी उनके देखते देखते पर्याप्त रूपसे अच्छा प्रमाणित हुआ था। वहाँ की क्रान्तिकारी विचारों से भरी सेनाने जब देखा कि विद्रोही दल दिन प्रतिदिन प्रबल रूप से शक्तिशाली एवम् विजयी होता जारहा है तथा उसने दिल्ली और मेरठ सरीखे प्रबल नगरभी उसके देखते देखते जीत लिये तब तो वह समझ गयी कि अब अपनी भी गर्दन उठानेमें कोई हानि नहीं है। विद्रोहियों के तबतकके विजयसे उन्हें भारत के भविष्य स्वातन्त्र्य का विश्वास हो गया और वह स्वयम् उस स्वातन्त्र्य युद्ध में भाग लेने के हेतु ईस्वी सन् १८५७ की

१४ वीं तारीखको सम्पूर्ण रूपसे तैय्यार हो गयी । उन्होंने उसदिन खुल्लमखुल्ला अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया और उसीदिन कतिपय अंग्रेज़ों को ग्वालियर से सीधे सुरपुर का मार्ग दिखला दिया। उस समय ग्वालियर नरेश जयाजीराव सिन्धिया ने विद्रोहियोंकी मारसे बचे हुए अंग्रेजोंको कैसी कड़ी एवम् अविस्मरणीय सहायता दी थी और उन्हें युक्तिपूर्वक आगरेके किलेमें भेज दिया था इसका विवरण वहुतही मनोरम है। किन्तु दुःखकी बात है कि एक तो वह विषय हमारे इष्ट विषय महारानी लक्ष्मीबाईके जीवन चरित्र से पृथक होने के कारण तथा दूसरे पुस्तक के विस्तारभय के कारण उसे हम यहाँ पर गवेषणापूर्ण रीतिसे और विस्तारके साथ लिखने में असमर्थ हैं। आशा है हमारे सुज्ञ पाठकवृन्द हमें इसके लिये क्षमा करते हुए केवल यही जानकर सन्तोष कर लेंगे कि उस समय ग्वालियर नरेश काही वह कौशल था, जिसके कारण ग्वालियरके अधिकांश अंग्रेज़ विप्लवियों से बचकर जीतेजी आगरे के किले में पहुँच सके।

उस समय ग्वालियरकी विप्लवी सेना महाराज जयाजीराव सिन्धिया को जीतकर उन्हें अपने क्रान्तिकारी दलमें मिलाते हुए उन्हीं के आधिपत्यमें आगरे पर आक्रमण करने वाली थी और * यदि दैववशात् उसे

* ग्वालियरकी विप्लवी सेनाको यदि महाराज जयाजीराव की सहायता मिल जाती तो अंग्रेज़ों का भारतवर्ष में टिका रहना किस तरह कठिन था इसका चित्र चित्रण Memorials of Service in India में इस प्रकार किया है—

उस समय ग्वालियर नरेश एवम् उनके दलबल, अस्त्र शस्त्र तथा तोपों बन्दूकों की सम्पूर्ण सहायता मिली होती तो इसमें सन्देह नहीं था कि उस समय के भारतीय विप्लव के प्रलयङ्कर दावानल की दासतानाशिनी प्रखर लहरें केवल उत्तरीय भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सारे भारतवर्ष में, केदारेश्वर से लेकर दक्षिण रामेश्वर तक पहुँच गयी होतीं। महाराज जयाजीराव के क्रान्तिकारी दल में मिलने से अंग्रेज़ों का भारतवर्ष में बना रहना कदाचित् असम्भव ही हो गया होता। किन्तु होनहार कुछ औरही था। ग्वालियर नरेश महाराज जयाजीराव सिन्धिया उस समय अंग्रेज़ोंके अनन्य, एवम् कट्टर अन्धभक्त थे। ईस्वी सन् १८४४ में जिस समय अंग्रेज़ों ने ग्वालियर को अपने बाहुबल से नहीं, अपितु युक्तिबलसे जीता था उस समय सिन्धिया नरेश ने उनसे सन्धि करली

"Gwalior, while it thus continued in his hands, might have been regarded as in one sence the key of India, or rather perhaps, as one link of a chain which could not have given way in any part without ruining our power in India. If the Ruler of Gwalior had either played us false, or succumed to the strong adverse elements which he had to contend, the revolt would almost certainly have been national and general instead of being local and mainly military; and instead of its fate being decided by

थी। उस सन्धि को निबाहनेके हेतु जयाजीरावने अंग्रेजों की उक्त दारुण दशाके समय उनका पूरा साथ दिया था। इसके अतिरिक्त धूर्त शिरोमणि अंग्रेजों ने इस प्रबल प्रतापी नरेश को सम्पूर्ण प्रकार से अपना अंकित कर लेने के हेतु समय और परिस्थतिकी ओर ध्यान देकर उसे दत्तक पुत्र लेनेकी आज्ञाका प्रलोभन दिखलाकर अपनी मित्रता के पाशमें बांध रखा था। अंग्रेज़ोंकी यह धूर्ततापूर्ण चाल उनको इस संकटापन्न दशामें उनके लिये बहुतही लाभप्रद सिद्ध हुई। महाराज जयाजीराव सिन्धिया अंग्रेज़ोंके कट्टर मित्र बनगये और उनके साथ एक महाराष्ट्र वीरकी तरह मर-मिटनेको तैयार हो गये।

इस प्रत्यक्ष प्रमाण से क्या हमारे अंग्रेज़ भाई अब भी यह मान लेनेमें हिचकेंगे कि उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाईको दत्तक पुत्र लेनेकी आज्ञा न देकर भारी भूल की थी? यदि उस समय लार्ड डलहौसी अपनी

---

these operations in the easily traversable Gangetic valley, upon which public attention was consentrated, we should have had to face the warlike races of Upper India combined against us, in a most difficult country and in all probability, those of the south also... ... "had Scindia struck against us—nay, had he even done his best in our behalf, but failed—the character of the rebellion might have been changed almost beyond scope of speculation."

कुत्सित महत्वाकांक्षीको तिलाञ्जली देकर उदार हृदयसे स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाईके दत्तक पुत्रको स्वीकार कर लिये होते तो, यह सम्भव नहीं था कि तत्कालीन विप्लवका दावानल इतनी प्रखर उग्रता धारण करता और उसमें लार्ड डलहौसीके सहस्रों धीर-वीर देशबन्धु व्यर्थही मारे जाते। महारानी लक्ष्मीबाईके प्रति अन्याय कर लार्ड डलहौसीने केवल अपने तत्कालीन भारतवर्षीय देश बन्धुओंपर ही कालका कृपाण नहीं चलवाया था, किन्तु उन्होंने उस अन्यायको चरितार्थकर ब्रिटिश सरकार के कितनेही भारतवर्षीय प्रजागणोंको कालके गालमें पहुँचाया था और प्रायः अखिल भारतवर्षीय राजभक्त समाजमें न्यायी अंग्रेज़ सरकारके विरुद्ध विद्वेष फैलाकर उसके प्रति गहरा अविश्वास फैला दिया था। उसी अविश्वास एवम् विद्वेषका रूप कालावधिके पश्चात् विप्लवके दावानलके रूपमें स्थान-स्थानपर प्रकट हो गया। यदि डलहौसी उस समय बुद्धिमानीसे काम लेते और महारानी लक्ष्मीबाईको सन्तुष्ट बनाये रखते तो आज दिन इसी महारानी लक्ष्मीबाईका नाम अंग्रेज़ोंके कट्टर मित्रोंमें गिना जाता एवम् वह राजद्रोह फैलाने तथा स्वार्थी महात्वाकाँक्षा चरितार्थ करनेके पाप से भी बरी रहते। किन्तु वहाँ तो बातही कुछ दूसरी थी और वह थी श्रीतुलसीदासके शब्दोंमें:—'प्रभुता पाई काहु मद नाहीं ?' अस्तु—

सारांश यह कि उस समय अपनी स्वतन्त्रताके समस्त साधन बिना किसी विशेष कष्टके प्राप्त होनेका अवसर आने पर भी प्रणवीर जयाजीराव सिन्धियाने अपने वचनका प्रतिपालन करनेके हेतु अंग्रेज़ोंका पूरा साथ दिया और सारे संसारको इस बातका प्रमाण दे दिया कि एक

वचनबद्ध महाराष्ट्र वीर अपने प्रणको निबाहनेके हेतु अपने सबसे बड़े स्वार्थ-स्वतन्त्रताकोभी किस तरह हँसते-हँसते छोड़ सकता है। कुछ इतिहासज्ञोंका यह भी मत है कि महाराज जयाजीरावकी इस प्रण-वीरताका सारा श्रेय उनके तत्कालीन दीवान सर दिनकरराव रघुनाथ राजवाड़े मुन्तज़िम के० सी० एस० आई० को है। ईस्वी सन् १८४४ में अंग्रेज़ोंसे सिन्धिया नरेशकी सन्धि होनेके पश्चात् ईस्वी सन् १८५३ में जब कि अंग्रेज़ोंकी ओरसे महाराज जयाजीरावको ग्वालियरके समस्त सत्वाधिकार दिये गये, उस समयभी उनके राज्यकी सारी व्यवस्था रेज़ी-डेण्टके विचारसेही होती थी। "उस समय यद्यपि महाराजकी अवस्था २१ वर्षकी थी और वह सर्वप्रकारसे राज्यसूत्र सञ्चालन करनेके योग्य हो गये थे तथापि सुधूर्त अंग्रेज़ोंकी कृपाके कारण उनके राज्यकी सारी व्यवस्था उनके दीवान सर दिनकरराव राजवाड़े द्वाराही होती थी। यह दीवान साहब परले सिरके धूर्त्त, अंग्रेज़ी रङ्गमें रङ्गे हुए तथा उनके अनन्य भक्त थे। उन्हें अंग्रेज़ोंकी क्षमता, योग्यता, चातुर्य और शक्ति का पूरा परिचय था। वह भलीभाँति समझ चुके थे कि तत्कालीन भारतीय परिस्थितमें प्रतापशाली पश्चात्योंका साथ देकर अपना स्वार्थ-साधन कर लेना कहीं अधिक श्रेयस्कार एवम् बुद्धिमानीका कार्य होगा। इसी अटल विश्वाससे प्रेरित होकर उन्होंने अपनी शक्तिभर अंग्रेज़ों की सहायता की। यद्यपि उस समयकी भारतीय परिस्थिति बड़ीही संदिग्ध थी—उस समय विप्लवियोंकाभी ज़ोर कम नहीं था, ग्वालियर की अधिकांश सेना भीतरसे विप्लवियोंसे मिल गयी थी। स्वयम् ग्वालि-यर नरेशका हृदय डाँवाडोल हो रहा था, एक ओर वह स्वयम् भी विप्लव-

वियोंकी विजय होनेका सन्देह कर रहे थे, तथापि उन्होंने बहुत कुछ सोच विचार कर अंग्रेज़ोंकाही साथ देनेका निश्चय किया। बेचारे ग्वालियर नरेश! वह तो स्वयम् दीवान दिनकररावके हाथोंका कठपुतला हो रहे थे। अतः उनके विचारका कोई मूल्यही नहीं था।

इसमें सन्देह नहीं कि दीवान दिनकररावने बड़े विचारपूर्व्वक अपनी मति का उक्त पासा फेंका था तथापि अन्तःकरणमें विप्लवियोंकी विजयकी शंकाका भूत उन्हें डराही रहा था। इसीलिये जबतक कि उन्हें पर्य्याप्तरूपसे अंग्रेज़ोंकी शक्तिका परिचय न मिला कभी खुलकर विप्लवियोंके विरुद्ध न हुए। वाह्यतया वह बराबर विप्लवियोंसे हेलमेल बढ़ाये रहे और अन्तःकरणमें अंग्रेज़ों की सहायता करते रहे। मनमें यही उद्देश्य था कि समय पर जो भी दल सदल प्रमाणित हो उसीका साथ देंगे। विप्लवियोंके दुर्भाग्यसे थोड़ेही दिनोंमें उन्हें अंग्रेज़ोंका जोर अधिक मालूम हुआ। अबतो वह खुलकर सारी बदनामीका लक्ष्य महाराज जयाजी-रावको बनानेके हेतु उन्हें आगेकर अंग्रेजोंसे मिल गये और देशकी स्वतन्त्रताके लिये उद्योग करनेवाले वीर पुङ्गवोंका नाश करनेके हेतु तुल गये। क्यों?—अपने थोड़ेसे स्वार्थसाधन, अंग्रेजोंद्वारा पुरस्कारमें मिलने वाली थोड़ीसी जागीरके लोभसे एवम् अंग्रेज़ोंके भविष्यत् राज्यमें अपने नामके आगे एकाध उपाधि लगवा लेनेकी लालसासे! हा! भारतवर्ष! कब तेरे पुत्रोंकी यह स्वार्थसाधुता और उपाधियोंका लोभ दूर होगा? अस्तु,

चाहे जो भी कारण हो। किन्तु इतना अवश्य सच है कि उस समय ग्वालियर नरेश महाराज जयाजीरावने पूरी तरह अंग्रेज़ों का पक्ष ग्रहण

किया था । इसी कारण विप्लवियोंकी चालपर पानी फिर गया था । इस घटनाके ४।५ महीने उपरान्त विप्लवियोंकी कालपीमें हार हुई । जिसका वर्णन गत् परिच्छेदमें किया जा चुका है ।

रावसाहब पेशवाके कालपीमें हार खानेपर उनके सामन्तगणोंमें सर्व सम्मतिसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि अब ग्वालियरकी ओर बढ़कर वहांके नरेश महाराज जयाजीरावको अपने वशमें कर लिया जाय और उन्हींकी सहायतासे अपने तथा उनके दल-बलको संयुक्त कर पुनः युद्धकी तैयारी की जाय । इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके हेतु राव साहब पेशवाने महाराज जयाजीराव एवम् उनकी पूजनीया माता श्री वायजाबाई सिन्धियाके नाम इस आशयका एक पत्र लिखा कि उन उभयजनोंको पेशवा नरेश तथा उनके पूर्वापर सम्बन्धका स्मरण करते हुए देशकी इस संकटापन्न स्थितिमें उनकी सहायता करनी चाहिये ताकि वह सरलता पूर्वक अपना कार्य समाप्त करते हुए दक्षिण प्रान्तमें प्रवेश कर सकें ।

उनका उक्त पत्र ग्वालियर दरबारमें पहुँचतेही वहाँ विलक्षण खलबलीसी मच गयी । ग्वालियर दरबारके प्रमुख-प्रमुख सूत्रधार आरम्भसे हो विप्लवियोंके विरोधी थे । राज्यके तत्कालीन कर्त्ताधर्त्ता भाग्य विधाता सर दिनकरराव एवम् उनके इशारों पर नाचनेवाले महाराज जयाजीराव तथा उनकी पूजनीया मातेश्वरी वायजाबाई विप्लवियोंसे किसी भी तरहका और कोई भी सम्बन्ध रखना नहीं चाहती थी । किन्तु बड़ी कठिनता तो यह थी कि इस प्रमुखत्रयीके अतिरिक्त शेष जितनेभी दरबारके अधिकारीगण थे, वह सभी विप्लवियोंके प्रति सहानुभूति

एवम् प्रेम रखते थे। सबसे मज़ेकी बात तो यह थी कि एक ग्वालियर नरेशको छोड़कर शेष अन्य राज्य उस समय विप्लवियोंकेही अनुकूल हो रहे थे। बुन्देलखण्डका अधिकांश जन समाज भोपाल-मालवा तथा इन्दौरकी सारी सेनाएं उस समय विप्लवियोंहीका पक्ष ग्रहण करने पर तुली थीं। यदि दैवशात् कहीं उस समय सर दिनकररावको समाज द्रोह न सूझा होता—यदि उनके हृदयमें स्वार्थका भूत न पैठा होता—यदि महाराज जयाजीराव अपने एवम् पेशवाके पूर्वापर सम्बन्धको ध्यानमें लाये होते और अपने पालक, अपने पोषक, एवम् अपने अन्नदाताका साथ दिये होते, यदि उन्हें थोड़ी देरके लिये अंग्रेज़ोंके कृत उपकारोंकी विस्मृति हुई होती और स्वदेश, स्वजाति तथा स्वधर्मके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ होता तो निश्चयही, क्या सर दिनकरराव और क्या जयाजीराव-दोनोंके दोनों पेशवासे मिल जाते--और तब? तब क्या पूछना था?—आगमें घी डालने की तरह केदारेश्वरसे लेकर रामेश्वर तक सारे भारतवर्षमें विप्लवका प्रलयंकर दावानल सुलग जाता और वह युद्ध जो आज इतिहासज्ञोंमें, सिपाहीविद्रोह, गदर, बलवा प्रभृति विभिन्न नामोंसे विख्यात है, क्रान्तिकारियोंके स्वातन्त्र्य युद्धके नामसे अजरामर हुआ होता। उस समय यदि ग्वालियर नरेशकी विप्लवियोंको कुछभी सहायता मिली होती तो विप्लवियोंकी विजय निश्चित थी। *

---

* इसका प्रत्यक्ष प्रमाण एक अंग्रेज़ इतिहासज्ञ के निम्नोद्धृत पंक्तियोंमें देखिये:—

It needs but a glance at the map to show what the result might have been, had Gwalior

उस विप्लवकी आगको बुझाना अंग्रेजोंके लिये नितान्त असम्भव हो जाता। किन्तु अंग्रेज़ोंका भाग्य बड़ा प्रबल था। इसीलिये सर दिनकर राव और महाराज जयाजीरावने अंग्रेज़ोंके प्रति पूर्ण सहानुभूति बना रखी और वह अंग्रेज़ी सेनाके आतेही उसके साथ होकर विप्लवियोंसे लड़नेके हेतु तैयार हो गये।

उधर पेशवा ने ग्वालियर नरेशको सहायताके लिये लिखकर अपनी सेना ग्वालियर की ओर बढ़ायी। वह लोग कूच दर कूच करते हुये २८ मईके दिन ग्वालियरके समीप आमनगांवके पास जा पहुँचे। रावसाहब पेशवाको यह विश्वास था कि * ग्वालियर नरेश पेशवाके पूर्व परम्प-

---

sided with the rebels. The Nizam's teritories already sufficient inflamable, would assuredly have caught the fire and it is questionable, whether in that case any part in Southern India could have been saved.—Central India P. 236.

वस्तुतः उस समय अंग्रेज़ोंको ग्वालियर नरेशकी मित्रता का इतना अच्छा उपयोग हुआ मानो किसी आसन्नमरण रोगीको अकस्मात् अमृत का घूँट मिल गया हो। कहा जाता है कि तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ्ग स्वयम् उस समय ऐसे निराश हो गये थे कि उन्होंने उच्चाधिकारियोंको तार द्वारा यह सन्देश भेजा था:—

"If the Scindia Joins Mutiny I shall have to pack off to-marrow.

* ग्वालियर नरेश महाराज जयाजीरावके पूर्व पुरुष महादजी सि-

रागत आश्रित होनेके कारण वह कभी उनसे विमुख न होंगे और पत्र के मिलतेही उनकी सहायताके लिये दौड़ आयेंगे। इसीलिये वह अपने पत्रके उत्तरकी उपेक्षा कर यहाँ तक बढ़े चले आये थे। किन्तु यहाँ पहुँचतेही उन्होंने कुछ औरही रङ्ग देखा। आमन गाँवकी सीमापर विद्रोहियोंके पहुँचतेही वहाँके सूबेदारने अपने ४०० पैदल सैनिक तथा प्रायः १५० अश्वरोहियोंका पथक साथ लेकर पेशवाका मार्ग रोकना चाहा। पेशवाके धुरन्धर सेनापति उसकी इस उद्दाण्डताको देखकर आश्चर्यमें पड़ गये। दूसरेही क्षण उन्हें उसकी करतूत पर क्रोध हो आया और वह

न्धिया, प्रथम बाजीराव पेशवाके यहाँ एक मामूली नौकर थे। वह पेशवा को 'जूते' पहिनाया करते एवम् उतारा करते थे। जिस समय पेशवा दरबारमें उनकी नियुक्ति हुई थी उस समय उनका पहिला कार्य यही था, किन्तु कालावधिके पश्चात् पेशवाकी खास ख़िदमतमें रहते-रहते उन्हें युद्धकलाका भी ज्ञान होगया और वह अल्पावधि मेंही एक चतुर सैनिक बन गये। वीरवर बाजीराव पेशवा उत्साही युवकोंके बड़े प्रेमी थे और वह ऐसे युवकोंको सर्वदा अपने पास रखकर, उन्हें अपनी विकासशक्ति दिखलानेका पूरा अवसर देते थे। ऐसेही अवसर महादजी सिन्धियाको वीरवर बाजीरावने दिया था। एक अत्यन्त दरिद्र मराठा भाग्यसे हारा हुआ नौकरी से निराश होकर पेशवा के दरबार में जूते सम्हालने के पद पर नियुक्त हुआ। किन्तु कुछही अवकाशमें अपनी स्वामिभक्ति, अदम्य उत्साह और कर्तृत्वशक्ति की बदौलत पेशवाका परम कृपापात्र बन गया। उनके साथ समय समयपर समराङ्गणमें जाकर शत्रुपक्ष पर शस्त्र चलाने लगा। धीरे-धीरे उसे पहिले कार्य से छुट्टी मिल गयी और

आगे बढ़ते हुए कड़क कर बोले:—बस, ख़बरदार! यदि हमारे विरुद्ध एक भी पैर आगे बढ़ाओगे तो जान लो, हमेशाके लिये इस दुनियासे अपना नाम मिटा डालोगे। जानते हो हम कौन हैं? तुम्हारे राज राजेश्वर महाराज जयाजीरावके मालिक! मैं श्रीमान् नाना साहब पेशवाका सेनापति हूँ। यह सेना उन्हीं की है। महाराज जयाजीराव पेशवाके आश्रित हैं। उनके पूर्वजोंको पेशवाहीसे ग्वालियरकी सूबेदारी मिली है। तुम हमें रोकनेवाले कौन होते हो? हम जयाजीराव सिन्धिया और दिनकरराव राजवाड़ेको समझतेही क्या हैं? वह हमें किस तरह रोक सकते हैं? हमारीही दी हुई रोटी खाकर हमीं पर आँखे! पेशवा नरेश कदापि ऐसा अपमान सहन नहीं कर सकते! हम लोग अपने स्वतन्त्रता के लिये युद्ध कर रहे हैं अतः उसमें जया-

---

वह वीर सैनिक कहलाने लगा। एक समय ऐसा आया जब उसने एक भयंकर युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखलाकर पेशवाकी पूर्ण कृपा प्राप्तकी। उस समय वीरवर पेशवा दरबारमें बैठे हुए थे। उन्होंने महादजी सिन्धियाके पराक्रमका समाचार सुना था। अतः अपने दर-बारियोंसे उसके सम्बन्धमें पृच्छा की। महादजी सिन्धिया उस समय भी पेशवाकी 'जूतियां' हृदयसे लगाये एक ओर खड़े थे। दरबारियों ने पेशवाका प्रश्न सुनकर उसकी ओर करांगुलीसे संकेत किया। पेशवा उसे देख गद्गद होगये। उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु आगये। उन्होंने कहा है! यह क्या? तुम अब जूते सम्हालने वाले सेवक नहीं सूबेदार हो। तुमने हमारे लिये अपने प्रतापसे ग्वालियर जीता है। उसकी सूबेदारी तुमको दी गयी है।' महादजी सिन्धियाने

जीरावका विरोध करना भारी अन्याय और भयंकर भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि वह हमारे इस पुण्य कार्यका विरोध करेंगे तो हमें यही कहना पड़ेगा कि वह देशके वीर मराठाकी सन्तान नहीं। उनकी सारी सेनाएं आजभी हमहीसे मिली हैं और हमारेही साथ स्वातन्त्र्य युद्धमें शामिल होनेको तैय्यार हैं। हमारे पास उनके सेना-पतियोंके पत्र आये हैं और उन्हींकी बुलाहट पर हमलोग लश्करकी ओर बढ़े हैं। ऐसी परिस्थितिमें तुम्हारा हमें रोकनेकी चेष्टा करना कहाँ तक उचित होगा इसे तुम स्वयम् विचार सकते हो। इसके बाद उन्होंने कुछ देरके लिये रुककर पुनः उससे पूछा—क्या अबभी तुम्हारा हमसे युद्ध करनेका विचार है?'

झुककर प्रणाम करते हुए कहा, 'यह महाराजकी मुझपर भारी दया है। किन्तु दुःख है कि महाराज यह सूबेदारीकी बेड़ी पहिनाकर मुझे अपनी पुनीत सेवासे दूर कर रहे हैं। इससे अच्छा तो मेरे लिये यही जूते सम्हालनेका काम था। मैंने जो आज ग्वालियर जीता है वह केवल आपकेही इन परम पुनीत पदत्राणों की कृपासे। मैं पहिले भी श्रीमान् का जूते सम्हालनेवाला सेवक था, आजभी हूँ और भविष्यमें भी जबतक जानमें जान है, बना रहूँगा। मुझे वह दिन भूला नहीं है, जिस दिन मैं, संसारसे ठुकराया, भाग्यका मारा आपकी सेवामें आया था। आपही के अन्नसे आज मैंने अपनी देह पाल पोसकर इतनी बड़ी की है। यह आपही की है और आपहीकी सेवामें मैं उसका अस्तित्व मिटाना चाहता हूँ।"

यह प्रश्न उन्होंने इस तावके साथ किया कि बेचारा सूबेदार मनही मन सहम गया। उसने पेशवाके विशाल सेनासमुद्र को देख भयभीत होकर नम्रता धारण करली और युद्धका विचार छोड़ दिया। पेशवाकी सेना निष्कण्टकरूपसे ईस्वी सन् १८५८ की ३० वीं मईको ग्वालियरके निकट मुरारकी छावनीके पास बड़ागाँवमें जा डँटी।

ग्वालियरकी सहायताके लिये अंग्रेज़ी सेनाके आनेमें अभी बहुत विलम्ब था। पेशवा की सेना उसके बहुत पहिले मुरारकी छावनीके पास पहुँच चुकी थी। अतः महाराज जयाजीराव एवम् उनके मन्त्री कुछ काल के लिये बड़े पेशोपेशमें पड़ गये। किन्तु मनही मन उन दोनोंका यह निश्चय हो चुका था कि वह कभी भूलकर भी विप्लवियोंका साथ न देंगे। किन्तु इसके ठीक विपरीत तात्या टोपीके विचित्र मन्त्रसे दीक्षित ग्वालियर की सेनाका हाल रहा। वह तो पहलेहीसे अवसरकी ताकमें दृष्टि गड़ाये बैठी रही। उसने ज्योंही पेशवाके आगमनका समाचार सुना त्योंही वह अपने शस्त्रास्त्र सम्हालकर खड़ी होगयी। सिन्धियाके सुधूर्त मन्त्रीने किसी तरह बड़े प्रयत्नसे उसे समझा-बुझाकर समयपर विद्रोहियोंकी सहायता करनेका अभिवचन दे शान्त किया और कुछ थोड़ीसी निजी सेनाको गुप्तरूपसे विद्रोहियोंको रोक रखनेके हेतु आगे बढ़ाया। कुछही क्षणमें यह समाचार ग्वालियरके विद्रोहियोंको ज्ञात होगया, और मन्त्री दिनकर राव एवम् जयाजीरावके प्रति जलभुनकर खाक होते हुये उन दोनोंके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे।

तारीख ३१ को विद्रोहियोंका रङ्ग ज़बर्दस्त देखकर महाराज जयाजीरावको जोश चढ़ आया और वह तारुण्यमदके वशीभूत होकर

बिना कुछ आगा-पीछा सोचे अपने निजी ८००० विश्वासभाजन सैनिकों के साथ २० बड़ी-बड़ी तोपें लेकर विद्रोहियोंसे टक्कर लेनेके हेतु उतारू होगये। किन्तु सुदक्ष मन्त्री दिनकररावने ऐन समयपर उनको इस तरह भद्दी भूल करते देख कई तरहकी उल्टी सीधी बातें समझायीं और उन्हें उनके विचारसे पृथक कर दिया। उसी रातको पुनः जयाजीरावकी वही सनक सवार हुई। उस समय दिनकरराव राजमहलमें न होनेके कारण उन्हें बाधा देनेके लिये कोई नहीं था। अतः इसबार उनकी लह गयी और वह विद्रोहियोंसे टक्कर लेनेके हेतु तुल गये।

ईस्वी सन् १८५८ को १ जूनको सवेरे ही वह अपने दल बल सहित मुरार से प्रायः २ मीलकी दूरीपर पूर्वकी ओर बहादुरपुर नामक ग्राममें जा डँटे। उस समय उनके साथ ८००० पैदल सैनिक, १२०० किलेदार तथा कुछ प्रचण्ड तोपें थीं। कहा जाता है कि सिन्धिया नरेशका तोपखाना प्राचीन समय से ही अत्यन्त प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध फरांसिसी गोलन्दाज़ जानपेरू, सवाई सिकन्दर, जान बत्तिस आदि विख्यात् वीर ग्वालियर राज्यके आश्रय में रह चुके थे और उन्होंने अपने तोपखाने की जो व्यवस्था कर रखी थी वही इस समय तक बराबर चली आती थी। इस समय भी सिन्धिया नरेशके साथ यही प्रचण्ड तोपखाना था।

भगवान् तिमिरारिके उदयाचलपर विराजमान होतेही विप्लवियोंके सेनासमुद्रपर ग्वालियर नरेशके प्रचण्ड आग्नेयास्त्रोंका भीषण अग्निवमन आरम्भ होगया। विप्लवी नेता समझ न सके कि यह बला कैसे और किधरसे आयी। उन्हें स्वप्नमें भी विश्वास न था कि ग्वालियर नरेश

उनके विरुद्ध इस तरह अकस्मात् कृपाण धारण करेंगे। वह बराबर से महाराज जयाजीरावको अपना जाति बान्धव एवम् धर्म्मबन्धु ही समझते थे। पेशवाको यह कल्पना भी नहीं हो सकती थी की उनका एक शूर-वीर एवम् बलाढ्य मरहठा आश्रित इस तरह ऐन समयपर उनको नमक-हरामी करेगा। उन्होंने सिन्धियाकी ओरसे तोपें छूटते देख पहिले तो यही समझा कि ग्वालियर नरेश उन्हींकी सहायताके हेतु अपने परम्परा गत् सम्बन्धको स्मरण करते हुए अपने प्रभुको तोपोंकी सलामी दे देकर आगे बढ़े चले आरहे हैं। किन्तु थोड़ेही अवकाशमें उन्हें यह ज्ञात हो गया कि ग्वालियर नरेश उनके सेवक बनकर नहीं अपितु उनके 'चचा गुरु' बननेकी अभिलाषासे समराङ्गणमें अवतीर्ण हुए हैं। महाराज जया-जीराव की प्रचण्ड तोपोंने कुछही अवधिमें पेशवाकी मोहनिद्रा दूर करदी और दिखला दिया कि कुसमय पर नमकखानेवाला भी किस प्रकार अपने प्रभुसे पेश आता है! अस्तु,

महाराज जयाजीरावने विप्लवियोंका सामना होतेही उनपर धूंआ-धार तोपें दगवाना आरम्भ कर दिया। बेचारे असावधान विप्लवी उनकी इस आकस्मिक मारको सह न सके और जिधर मार्ग मिला उधरही अपने बचावकी सूरत समझकर भागने लगे। एकतो योंही पेशवा को सेना में सुशिक्षाकी कमी थी, दूसरे यह आकस्मिक आक्रमण। फिर क्या पूछना? जो करारी भगदड़ मच गयी वह किसीके रोके न रुकी। महारानी लक्ष्मी-बाई ने इसके पूर्वही पेशवाको सचेत रहने एवम् उनकी सेनाको सदा सतर्क और सुव्यवस्थित रखनेकी सूचना देदी थी। परन्तु उस समय उनकी सुनता कौन? उनकी सूचना तो महज़ मामूली और उपेक्षाकी दृष्टि

से देखी गयी थी। किन्तु अब जिस समय सिर पर बीती तब रावसाहबकी आँखें खुलीं। तात्याटोपी आश्चर्यसे मुँह बाकर रह गये। उन्होंने अपनी सेनाको तोपोंकी मारसे पृथक कर लिया। किन्तु उससे क्या होने वाला था? महारानी लक्ष्मीबाईने अपने दलका रङ्ग कुरङ्ग देखा। वह चमक उठीं। क्षणही भरमें उनके विशाल मस्तक पर भारी सिकुड़न पड़ गयी। चेहरा आवेशके मारे तमतमा गया। मुद्रा क्रुद्ध हो गयी और वह चपलाके समान् चपलगतिसे घोड़े पर चढ़कर अपने २५०।३०० विश्वास पात्र सैनिकोंको ललकारते हुए भूखी सिंहिनीकी तरह प्रचण्ड वेगसे उछलती कूदती अपने जीवनका सारा मायामोह छोड़कर ग्वालियर नरेशके तोपखानेकी ओर पील पड़ी। उस समय उनका आवेश इतना बढ़ा चढ़ा था कि वह बिना कोई आगा पीछा सोचे सिन्धिया नरेश की विकराल तोपोंके बिलकुल समीप पहुँच गयीं और बुभुक्षित रणडचण्डी की तरह अपनी कराल म्यानसे बाहर कर शत्रु पक्ष के गोलन्दाज़ोंको खेत के भुट्टोंकी तरह काट गिराने लगीं। उनका वह साहस देख उनके आश्रित सैनिकोंमें भी जोश हो आया और वह हिम्मत बान्धकर महा-रानीके पीछे छायाकी तरह दौड़ गये तथा वीरतापूर्वक अपने प्रति स्पर्धियोंके रक्तसे प्रतिहिंसाकी आग शमन करने लगीं। सुनीतिज्ञ तात्याटोपीने अवसर पाकर अपनी सेनाको कतिपय समूहोंमें विभक्त कर उन्हें तोपोंकी मारसे दूर कर दिया। इस दोहरी व्यवस्थाको चरितार्थ होते देख सिन्धिया नरेशके गोलन्दाजोंकी हिम्मत पस्त होगयी और वह इधर उधर भागने लगे। महारानीकी देखादेखी विद्रोहियोंकी ओर भी जोश चढ़ आया और वह भी जमकर ग्वालियरकी सेनासे भिड़

गये । उनके इस प्रबल आक्रमणसे सिन्धिया वालोंका रहा सहा जोश भी जाता रहा और वह हथियार छोड़कर इधर उधर भाग निकले।

महाराज जयजीराव अपनी वह बुरी हार होती हुई देख क्रोधसे जल भुन गये। अबतक तो वह विद्रोहियोंके केवल द्वेषोही बने हुए थे। किन्तु इस बार उनके द्वारा अपनी हार होती देख उनके हृदय में विप्लवियोंके प्रति भीषण प्रतिहिंसा एवम् तिरस्कारकी आग धधक उठी। एकतो योंही उनमें नख शिखान्तरूपसे तारुण्यका मद चढ़ा हुआ था। दूसरे वह अंग्रेजोंके कट्टर स्नेहियोंमेंसे थे तथा तीसरे उनका क्षत्रिय हृदय अपमान और उपहासके कारण बुरी तरह चुटीला होगया था, जिसके कारण उन्हें विद्रोहियोंके प्रति सवा सोलह आने घृणा उत्पन्न होगयी और वह उनके साथ मरने मारनेपर उतारू होगये। उन्होंने अवकाश पाकर अपनी घाटीवाली सेनाको आगे बढ़ाया और आप स्वयम् उसके आगे बढ़कर शत्रुपक्ष पर टूट पड़े।

इसमें सन्देह नहीं कि महाराज जयाजीरावभी वीरतामें किसी तरह कम न थे। उनकी भी उससमय तारुण्यावस्था ही थी। उनके नसनसमें कूट कूटकर जोश भरा था। उनका हृदय साहसरूपी अमृतसे लबालब भरा था। किन्तु उनमें वह पराक्रम किम्बहुना वह चातुर्य, वह स्वतन्त्र आवेश एवम् वह चापल्य नहीं था जो महाकाली स्वरूपिणी स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाई में विद्यमान था। अबतक के आयुष्यमें उन्होंने कभी भी स्वातन्त्र्य रूपसे किसी राजकाज अथवा युद्ध में भाग नहीं लिया था। अतः वह उस अनुभवसे सर्व्वप्रकारेण शून्य थे जो अनुभव महारानी लक्ष्मीबाई को

उस समय तक कई बार प्राप्त हो चुका था। यही कारण था कि वह तरुण वीर एवम् साहसी होते हुए भी उनके आधिपत्यमें हज़ार बारह सौ सशस्त्र, सुसज्जित एवम् सुशिक्षित कसे हुए वीर सैनिक होते हुए भी अनुभव से नितान्त कोरे होने के कारण वह महारानी लक्ष्मीबाई तथा उनके मुट्ठी भर अशिक्षित विप्लवियोंके सन्मुख ठहर न सके। महाराज जयाजीराव के अन्तःकरण में अंग्रेज़ों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम भरा था। इसीलिये वह विप्लवियों से घोर युद्ध करने पर तुले थे। किन्तु महारानी लक्ष्मीबाई उन्हीं अंग्रेज़ों को, नहीं, नहीं उन्हीं महाराज जयाजीरावके महाप्रभुओंकी कट्टर शत्रु बनी बैठी थीं। उनके कोमल हृदयमें अंग्रेज़ोंने अपनी स्वार्थनीतिकी छुरी चलाकर वह मर्माघात किया था जिसकी वेदना एवम् असह्य पीड़ा से व्याकुल होकर वह उनकी प्रबल शत्रु बन गयीं थीं। उस समय यद्यपि उनके पास महाराज जयाजीराव की तरह पर्याप्त सैनिक बल नहीं था, केवल हज़ार बारहसौ सुशिक्षित सैनिकों के मुक़ाबिले २०० । २५० अशिक्षित सैनिक ही थे तथापि वह सब ऐसे थे जिन्हें अपनी प्रतिहिंसा की प्यास से जान अधिक प्यारी नहीं थी। यही कारण था कि उनका एक एक सैनिक महाराज जयाजीराव के दस दस सैनिकोंके लियेभी काफ़ी था। वह लोग सिन्धिया की सेना पर ऐसे टूट पड़े मानों वज्र। प्रायः घण्टेभरकी गहरी मुठभेड़ होनेके पश्चात सिन्धिया नरेश अपनी बची खुची सेना को लिये रणाङ्गण छोड़कर धौलपुरके मार्ग से आगरेके किले की ओर भाग निकले। महारानी लक्ष्मीबाईने दौड़ाते दौड़ाते उन्हें हैरान कर डाला और उनके कई भागते हुए सैनिकों को अपनी तलवार का पानी पिलाकर इस बात का प्रमाण

दे दिया कि उपकारों से दबे हुए हृदय की अपेक्षा कृतघ्नता के कारण मर्म्माहत हुए हृदय में अधिक बल होता है। अस्तु,

महाराज जयाजीरावके युद्धभूमिसे भाग निकलने पर विप्लवी सेनाने आगे बढ़कर ग्वालियरके किलेपर अपना अधिकार कर लिया तथा उसपर अपना भगवा झण्डा चढ़ा दिया। हम अपने पाठकोंको पहिलेही बतला आये हैं कि ग्वालियर की सेना पहिले ही से विप्लवियों का पक्ष स्वीकार कर चुकी थी। सुदक्ष तात्याटोपी ने अब से प्रायः ४। ५ मास पूर्व ही ग्वालियर में पहुँच कर वहाँ की सारी सेनाको पेशवाके अनुकूल कर रखा था। अतः इस समय किले पर अधिकार जमानेमें किसीने भी आपत्ति नहीं की। बिना किसी रोक टोकके विप्लवियोंके हाथमें सिन्धिया नरेश का तोपखाना, खजाना, सेना और क़िला आगया।

इस प्रकार सहजही में क़िला हाथ आ जाने पर तात्याटोपी इत्यादि पेशवा के मित्र मन्डल ने रावसाहब पेशवा को ग्वालियर की राजगद्दीपर बैठाने का निश्चय किया। इस सम्बन्धमें महारानी लक्ष्मीबाईसे, यद्यपि उन्हीं के कारण ग्वालियर नरेश की हार हुई थी और उन्हीं के प्रताप से पेशवा ग्वालियर जैसे ज़बर्दस्त क़िले में प्रवेश कर सके थे कोई राय नहीं ली गयी। न जाने क्या सोचकर तात्याटोपी ने इस सम्बन्ध में इतनी अदूरदर्शिता से काम लेकर ईस्वी सन् १८५८ की ३ री जून को ग्वालियरके फूल बागमें जङ्गी दरबार किया और उसमें रावसाहब पेशवा को राज्याभिषेक कर दिया गया। उस समय विप्लवियों में से प्रत्येकको कुछ न कुछ उपहार एवम् पुरस्कार बांटे गये तथा प्रत्येक के योग्यतानुसार उसे यथोचित राजकाज सौंपा गया। उस समय पेशवाओं की

प्राचीन रूढ़ि के अनुसार प्रधान मण्डल भी चुना गया था और उनमें खिलअत ख़िताब बांटे गये थे। इस नवीन एवम् क्षणिक व्यवस्था में तात्याटोपी प्रधान सेनापति बनाये गये थे तथा रामराव गोविन्द नामक एक महाराष्ट्र विप्लवी सरदारको मन्त्रीपद दिया गया था। उस समय इस समारोहके आनन्दमें प्रायः २० लाख रुपये पुरस्कार स्वरूप बांटे गये थे।

रावसाहब पेशवाके राज्यासीन होनेके पश्चात् बड़े धूम-धड़ल्लेसे तोपोंकी सलामियाँ आरम्भ हुईं। ज़ोरोंसे वस्त्र-अलङ्कार-आभूषण और शस्त्रास्त्र बाँटे गये। खूब मुज़रों और तमाशोका बाजार गरम रहा। धूँआधार ब्राह्मण भोजन होने लगे। यत्र-तत्र-सर्वत्र आनन्द और गुलछर्रे उड़ाये जाने लगे। मनमुराद ऐशो आरामकी सामग्रियाँ निर्माण होने लगीं। किसीको इस बातकी चिन्ताही नहीं रह गयी कि अभी आगे भी कुछ कार्य करना शेष है। सारे के सारे विप्लवो मीठे मीठे लड्डुओं, कमलनयनी एवम् कटीली कामिनियों तथा 'हाः हाः हीः हीः' की बुलन्द आवाज़ों ही में अपना सर्वस्व समझने लगे।

महरानी लक्ष्मीबाई उनकी इस मोहनिद्रा को देख अत्यन्त दुखी हुईं। उन्हें विप्लवियों की अकर्मण्यता एवम् विलासिता पर अत्यन्त क्रोध हो आया। वह इस समाचार को सुनते ही पेशवाके दरबारमें जा उपस्थित हुईं और बोलीं—

'बड़े ही लज्जा की बात है कि आप लोग इस ज़रा सो विजय को देख कर अपने आपको भूल बैठे हैं ! आपके पीछे आपका प्रबल शत्रु, जो आपसे कहीं अधिक चतुर साहसी एवम् पराक्रमी है आपकी छाती

पर मूंग दलने को जीवित बैठा है। नहीं मालूम वह कब और कैसे आकर आकस्मिक ढङ्ग से आपकी छाती पर अपना पैशाचिक ताण्डव नृत्य करने को तैयार हो जायगा। यदि आप इसी तरह भोजन भट्ट बनकर निशि दिन लड्डुओं पर हाथ मारा करेंगे तो याद रखियेगा वह दिन भी शीघ्र ही सामने प्रस्तुत होगा जिस दिन आपके शत्रुओंकी तोपों से निकलने वाले आग के लड्डू आपको खाने पड़ेंगे। यदि आप आज दिन कमनीय कलेवरा कामिनियों को गले लगाने में दिन व्यतीत करते हैं तो निश्चय रखिये कि वह दिन भी दूर नहीं है जिस दिन शत्रुओं की कठोर कृपाण आपके गले लग कर आपको सर्वदाके लिये इस दुनियाँ से उठा ले जायगी।

वीरो! सेनापतियो और भाइयो! मेरी यह कदापि इच्छा नहीं है कि मैं आपको किसी प्रकार का उपदेश देकर अपमानित करूँ। भला मुझ अबला में वह साहस कहाँ जो आपको कुछ कहने का साहस कर सके। किन्तु स्पष्ट तो यह है कि इस समय देश और काल को देखते हुए मुझे ऐसी अनधिकार चेष्टा करनी पड़ती है। आप लोग मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें और शीघ्रातिशीघ्र इस बड़ी कठिनता से प्राप्त हुए अवसर को सदुपयोग में लगायें ताकि समय आने पर आपको पुनः मुंह की न खानी पड़े। परमात्माकी दयासे आपको यह सुदृढ़ दुर्ग प्राप्त हुआ है। उसके संरक्षण की व्यवस्था करना आपका पहला कर्तव्य है। सिन्धियाके अधीकृत धनसे आप सैनिकोंके वेतन चुकाकर भविष्यके लिये उसमें वृद्धि कर दें। गोला बारूद शस्त्रास्त्र इत्यादि युद्धोपयोगी सामान तैयार करवायें। स्थान स्थान पर तोपों के मोर्चे बन्धवायें। अपनी

अधीनस्थ सेना को सैनिक शिक्षा दें। यह सब कार्य इतने आवश्यक हैं कि यदि आप दुराग्रहवश इस ओर ध्यान न देंगे तो आपका यह ऐश्वर्य और स्वातन्त्र्य पानीके बुलबुलेकी तरह शीघ्रही विनष्ट हो जायगा। आपका शत्रु अत्यन्त धूर्त, काइयाँ, बनिया, दगाबाज़, चालबाज़, चतुर, साहसी एवम् पराक्रमी है। यह कब आकर कहाँ से और कैसे क्या करेगा इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसलिये होशियार ! पहिलेही से तैयार रहिये ! यह समय युद्ध का है सोने का नहीं।

महारानी का उक्त वक्तव्य कितना कठोर सत्य एवम् दूरदर्शिता प्रदर्शक था इसे बुद्धिमान पाठक स्वयम् समझ सकते हैं ! किन्तु हाय ! उस समय भारतवर्ष के ग्रह वक्र थे। उसे परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें जकड़ जाना था इसीलिये तत्कालीन स्वातन्त्र्य युद्ध के नेता रावसाहब पेशवा एवम् तात्याटोपीको इस स्वातन्त्र्य लक्ष्मीके कठोर सत्यका कुछ महत्व न मालूम हुआ। वह लोग अपना ही राग अलापनेमें मस्त थे। महारानी की भविष्यवाणीकी उन्हें कोई परवाह न रही। वह लोग अपनेही सुख स्वप्नों को देखने में लवलीन रहे। महारानीका प्रत्येक वाक्य उस समय उन्हें हलाहल सा बोध हुआ। वह लोग उन वाक्योंकी खिल्ली उड़ाने लगे। महारानी उनकी यह दशा देख कर अपमानके भयसे वहाँसे चलीं गयीं। उन विजयोन्माद के वशीभूत हुए विप्लवियोंने उसकी किञ्चितभी चिन्ता न की। उनके उसी तरह धूम धड़ल्ले से ब्राह्मण भोजन, नृत्य गायन और अन्यान्य आमोद प्रमोद होते रहे। उस समय उनका यह विश्वास सा होगया था कि अब अंग्रेज़ लोग किसी तरह उनका मुक़ाबला ही नहीं कर सकते। किन्तु, हाय ! यह उनकी अन्ध धारणा थी।

महारानी लक्ष्मीबाई का भविष्य कथन सत्य था या नहीं यह आगेके इतिहास को पढ़कर पाठकों को विदित होगा।

विप्लवियोंका ग्वालियर जैसा सुदृढ़ दुर्ग सर कर लेना कोई मामूली बात नहीं थी। उनके इस विजय को सुनकर अंग्रेज़ोंके कान तुरत खड़े हो गये। उनके प्रख्यात एवम् प्रधान सेनापति सर ह्यू रोज़ इस समाचार को पाते ही कुढ़ कर ख़ाक होगये। उनका सारा साहस, झाँसी और कालपी विजय की सारी प्रसन्नता और बम्बई जाकर विश्राम करने का विचार निमिषमात्र में उड़कर काफ़ूर हो गया। उन्हें विद्रोहियों के ग्वालियरकी ओर बढ़नेका समाचार पहिलेहीसे विदित था और इसीलिये उन्होंने १ जूनको मि० राबर्टसनके आधिपत्यमें एक ख़ास। सैनिक पथक देकर उन्हें विप्लवियों को शिकस्त देने के हेतु भेजा था। किन्तु दुर्भाग्य-वश उनके विद्रोहियों तक पहुँचनेके पूर्वही विद्रोही दल ग्वालियर पहुँच चुका था। सर ह्यू रोज़ इस समाचार को पाकर अत्यन्त दुखी हुए और उन्होंने कर्नल राबर्टसन के सहायतार्थ मेजर स्टूअर्ट के आधिपत्यमें और भी कितने ही गोरी और काली पल्टनों के सैनिक पथक, तोपख़ाने एवम् अश्वारोही सैनिक भेज दिये। किन्तु उनकी इस नवीन व्यवस्था होनेमें भी अत्यधिक विलम्ब होगया था। अतः इस नवीन सेनाके ग्वालियर पहुँचने के पूर्वही विद्रोहियों ने ग्वालियरका क़िला सर कर लिया। सुधूर्त सर ह्यू रोज़की यह चालभी ख़राब गयी। ४ जूनको कर्नल राबर्टसन द्वारा उन्हें इसका समाचार मिला। वह इस समाचारको सुनतेही मन्त्र मुग्धसे रह गये। आश्चर्य के मारे उनकी आँखों की पुतलियाँ बाहर निकलने लगीं। भय और सन्तापके कारण चेहरे पर मुर्दनी छा गयी। विशाल

भालपर चिन्ताकी रेखाएँ स्पष्ट रूपसे उभड़ आयीं। अबतकके अ्-रल विजय प्राप्तिसे उनके विशाल हृदयमें आशा की भित्तिपर जो गगनचुम्बी दुर्ग निर्म्माण हुआ था, वह दुखदायी समचारको पाकर क्षणमात्रमें निराशाके घनघोर अन्धकारमें नामशेष होगया। किन्तु कुछही देरमें वह उस दारुण दशासे हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। उसने अपने विश्राम करनेका विचार त्याग दिया और प्रण कर लिया कि जब तक वह ग्वालियरको जीतकर उसे पुनः अंग्रेज़ी शासन में नहीं मिला लेगा तब तक कभी भूलकर भी विश्राम की बात जिह्वा पर न लायेगा। यदि उस समय दैवबलसे अंग्रेज़ोंके पास यह परम चतुर धीर वीर एवम् साहसी योद्धा न होता तो निःसन्देह उस समय पेशवा की बन आती और पेशवाईका वह पुनर्जीवित हुआ वृक्ष खूब मज़बूतीसे ग्वालियरके पहाड़ी दुर्गमें जम जाता और आश्यचर्य नहीं कि थोड़ी ही अवधिमें उसकी विशाल शाखा प्रशाखाएँ सारे भारतवर्षमें फैल जातीं।*

---

* जिस समयकी घटना ऊपर दी गयी है, वह समय वर्षाऋतु का था। वर्षाऋतु के कारण ग्वालियर जैसे पार्व्वतीय दुर्ग पर आक्रमण करना कोई हंसी खेल न था। स्थान स्थानपर भयङ्कर विपदायें अंग्रेज़ों को अपने दानवी वृकोदरमें पहुँचाने के लिये तैयार थीं। किन्तु वह सर ह्यूरोज़ का साहस था जो वैसे समयमें भी ग्वालियरपर आक्रमण करने को तुल गये। मि० मैलिसन नामक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ का कहना है कि यदि सर ह्यूरोज़ उस समय विद्रोहियों पर दौड़ जाने में ज़रा भी विलम्ब करते तो नहीं मालूम

किन्तु सर ह्यूरोज़ भला कब चकनेवाले थे। उन्होंने तत्त्वण तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ्गको सूचना देकर अपने दल बल सहित ग्वालियर की ओर पयान किया। उन्हें यह बात भली भाँती विदित थी कि विद्रोही लोग संख्या में चाहे जितने बढ़े चढ़े हों किन्तु उनमें सुव्यवस्था नाम मात्रको भी नहीं रहती। इसी अटल सिद्धान्तको ध्यान में रखते हुए उन्होंने समरभूमिकी ओर पयान करनेके पूर्व अपनी सेना को सात आठ दलोंमें विभक्तकर उनपर उतनेही सुचतुर एवम् साहसी सेनानायक नियुक्त कर दिये। पश्चात् तारीख ६ जनको सब दलोंको अपनी अधीनता में लेकर जहाँ महाराज जयाजीराव का पराजय हुआ था उस (मुरारकी छावनी नामक स्थानकी) ओर कूच किया। निश्चित स्थान से थोड़ी दूर अर्थात् बहादुरपुर नामक ग्राममें पहुँचकर उन्होंने अपनी गति

तात्याटोपी उस अवधिमें क्यासे क्या कर डालते। इस इतिहासज्ञने अपने लेखमें स्पष्ट रूप से लिखा है:—

"No one could foresee the extent of evil possible if Gwalior were not promptly wrested from rebel hands. Grant them delay and TantiaTopi, with the immence acquisition of Political and military strength secured by the possession of Gwalior and with all its resources in men, money and material at his disposal, would be able to form a new army on the fragments of that beaten

रोक दी ! यह दिन १६ जून का था और लगातार १० दिन तक कूच-दर कूच करते करते उनकी सेना थक गयी थी, अतः उन्होंने अपनी सेना को इसी स्थान पर डेरा डण्डा डालने की आज्ञा दी।

वहाँ पहुँचने पर सर ह्यूरोज़ ने देखा कि विप्लवियों ने ग्वालियरका सारा प्रदेश एवम् तदन्तर्गत मुरारकी छावनी अपने अधिकार में करली है। छावनी में विप्लवी युद्ध के निमित्त पर्य्याप्त व्यवस्था कर चुके हैं। उसकी दाहिनी ओर तोपखाना लगा हुआ है और बाईं ओर सुसज्जित पैदल सैनिक पथक युद्ध के निमित्त अटूट भाव से डंटे खड़े हैं। सामने अग्रभाग में ही अश्वारोहियोंका एक बड़ासा सैनिक समूह तैनात है। सर ह्यूरोज़ पहले तो इस व्यवस्था को देखकर बहुत घबड़ा गये, किन्तु तुरंतही उन्होंने अपनी चित्तवृत्ति शान्तकर अपनी ओरसेभी आगे का कार्यक्रम निर्धारित कर लिया। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय अंग्रेज़ोंको पड़ाव डालने के निमित्त कोई उत्तम स्थान नहीं मिला था तथापि जो कुछ सहूलियत उन्हें प्राप्त हुई थी उसीमें से मार्ग निकाल कर सरह्यूरोज़ने अपनी सेना को कई भागों में बाँटते हुए अपनी

---

at kalpi, and to provoke a Maharatta rising throughout India. It might be possible for him using the dexterity of which he was a master, to unfurl the Peishwa's banner in southern Maharatta countries." —Malleson's History of India Mutiny. Vol. 5.P.150

तोपों के कई मोर्चे खड़े किये और निश्चय किया कि प्रथम अपने यहाँ की ८६ वीं पल्टन आगे भेज कर मुरार की छावनी अधिकृत करली जाय ताकि उसके हाथ में आते ही अंग्रेज़ी सेना को पड़ाव डालने के हेतु उत्तम व्यवस्था हो जायगी एवम् ग्वालियर पर आक्रमण करने का कार्य भी सुगम हो जायगा।

इस प्रकार अपना कार्यक्रम निर्धारित कर सुदक्ष सरह्यूरोज़ ने मुरार की छावनीपर चढ़ाई कर ही दी। उस समय रावसाहब पेशवा एवम् तात्या टोपी अपनी मोहनिद्रा एवम् ऐशो आराम में मस्त थे। उन्हें अंग्रेज़ों के आक्रमणकी किञ्चित् भी चिन्ता नहीं थी। प्रबल शत्रु के सिरपर चढ़ आने पर भी वह निश्चिन्त भावसे आमोद प्रमोद में लिप्त रहे। वस्तुतः यदि देखा जाय तो उनका यह कर्तव्य था कि वह पहिले ही से समय रहते महारानी के शुभोपदेशोंको मान लेते और समस्त उपयुक्त स्थानोंपर अपनी प्रबल मोर्चेबन्दी कर अंग्रेज़ों के सुराग़में लगे रहते। किन्तु वहाँ तो उस समय महारानीके आदेशोंका कोई मूल्यही नहीं था। सबके सब अपने ही राग रङ्ग में रंगे हुये थे। पेशवा को यह धारणा थी कि केवल पुण्यकर्म एवम् ब्राह्मण भोजन होते रहनेसेही तमाम बाधायें दूर हो जायगीं। उनमें धर्म्मान्धता के भाव कूट कूट कर भरे थे। उनके हृदय कोष में कर्म्म की जगह धर्म्म का ही विशेषरूप से प्राधान्य रहा। अतः वह इसी अन्धविश्वास के वशीभूत होकर दान धर्म्मके कार्यमें अटूट भाव से डंटे रहे। शत्रुओं की उन्हें ज़राभी परवाह न रही।

उधर सुधूर्त सरह्यूरोज़ने ग्वालियर नरेशको आश्रित, किन्तु विप्लवी बनी हुई सेनाको अपने ओर मिलाने के हेतु एक नवीन उपायका अव-

लम्बन किया। यह उपाय देखनेमें तो नवीन था किन्तु वास्तवमें वह था पुरानाही और वह भी सुचतुर तात्याटोपीके सुतीक्ष्ण मस्तिष्कसे निकला हुआ। सुदक्ष रोज़ने इस समय उसी उपायका अवलम्ब लेकर उसमें यह नवीन विशेषता उत्पन्न कर दी थी कि विना कुछ किये धरे विप्लवीरूपी हज्जामों की हजामत उन्हींके उस्तरे से हो गयी। अर्थात् जिस समय पेशवा के सुधूर्त सेनापति तात्याटोपी ने ग्वालियरकी सेनाको अपने दल में मिलानेकी ठानी थी उस समय उन्होंने ग्वालियर पहुँचकर उन सैनिकोंको यही कहा था कि, 'अंग्रेज़ लोग ग्वालियर नरेश के छिपे शत्रु हैं और वह घात पाते ही ग्वालियर का राज्य एकही सांस में डकार जायगे। विप्लवी लोग, विशेषतया रावसाहब पेशवा, देशके समस्त स्वतन्त्र राजाओंके हृदयसे शुभचिन्तक हैं और वह उनके स्वातन्त्र्यको रक्षा के निमित्त ही अंग्रेज़ोंसे युद्ध कर रहे हैं। यदि ग्वालियरकी सेना इस समय उनका साथ देगी तो अंग्रेज़ लोग बहुत शीघ्र भारतवर्षसे निकाल दिये जायंगे और जयाजीरावका राज्य स्वतन्त्ररूपसे उनके हाथ में बना-रहेगा। पेशवाने जयाजीराव को अपना आश्रित मानकर उन्हीं के स्वार्थ और स्वतन्त्रता के हेतु अंग्रेज़ोंसे युद्ध करने की ठानी है।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे सुललित एवम् राजहितैषी वाक्धाराके प्रभाव से ग्वालियर की सेना बहुत शीघ्र बिना कुछ आना-कानी किये तात्याटोपी की अनुगामिनी होगई थी और इसीलिये उसने विद्रोहियोंके ग्वालियर पहुँचते ही उनका साथ दिया था। सुधूर्त सर ह्यूरोज़ इस बात को ताड़ गये और उन्होंने चट मुरारकी छावनी के पास पहुँचते ही महाराज जयाजीराव को आगरेसे बुलवाकर इस बातकी

घोषणा कर दी कि विद्रोही लोग सिन्धिया नरेशके शत्रु हैं। वह उनके राज्य और सम्पत्तिका अपहरण करना चाहते हैं। हमलोग ग्वालियर नरेश के सच्चे शुभचिन्तक होनेके कारण उन्हीं की मानमर्यादा एवम् स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिये विद्रोहियोंसे लड़ने को उद्यत हैं।

उक्त घोषणा का प्रभाव ग्वालियरकी फिरण्ट सेनापर बहुतही अच्छा हुआ। वह अंग्रेज़ों के चक्रमेमें आगयी। उसने महाराज जयाजीराव के नाते विप्लवियोंसे विमुख होकर अपने हथियार रख दिये। मन में इच्छा थी कि वह महाराज जयाजीरावके विरुद्ध कदापि शस्त्र धारण न करेगी।

इधर उक्त घोषणा प्रकाशित करते ही अंग्रेज़ोंने अकस्मात् मुरार की छावनी पर चढ़ाई कर दी। पेशवाके सुदक्ष सेनापति इस आकस्मिक आक्रमणसे बेतरह घबड़ा उठे। उनकी मोहनिद्रा क्षणमात्र में दूर हो गयी उनकी उस ज़रासी मोहनिद्राके कारण चंगुलमें फंसी हुई ग्वालियरकी सेना उनसे विरक्त हो गयी। इतने दिन तक ऐशो आराममें पड़े रहनेके कारण वह अपनी अधीनस्थ सेनाको सुशिक्षा न दे सके। उन्होंने यद्यपि इस समय आवेशके वशीभूत होकर अपनी शक्तिभर मोर्चाबन्दी करने में कोई कोर कसर नहीं उठा रक्खी थी तथापि बहुत समय तक अव्यस्थित रहने के कारण वह उसमें अच्छी तरह कृतकार्य न हो सके। उस समय सिन्धिया नरेशकी शिक्षित की हुई सेना बाँदे के नवाबकी फौज़, अयोध्या से लाये हुए रुहेले वीर एवम् पठान इत्यादि सैनिकों का उनके पास ज़बर्दस्त बल था तथापि केवल ज़रासी असावधानी एवम् अव्यवस्था के कारण वह निरुपयोगी साबित हुआ।

प्रायः दो घण्टे तक मुरारकी छावनीमें उभयपक्षकी गहरी मुठभेड़ होती रही। विद्रोहियोंने अपनी जान लड़ाकर अंग्रेज़ोंका मुकाबिला किया। कितनीही बार उन्होंने वीर अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिये। किन्तु अन्ततक उनका यह आवेश टिक न सका। थोड़े ही देर में अंग्रेज़ोंकी ७१ वीं हाइलैण्डर्स सेना एवम् २५ वीं नेटिव इन्फैण्टरीके प्रबल पराक्रम ने उनके पैर उखाड़ दिये। अंग्रेज़ोंके महारथी योद्धागणों तथा सुनियन्त्रित युद्ध प्रणाली के सन्मुख उन बेचारोंकी दाल न गल सकी। वह दुम दबाकर ग्वालियरकी ओर भाग निकले। मुरार की छावनीपर अंग्रेज़ों की विजयपताका फहराने लगी।

महारानी लक्ष्मीबाईने इस युद्धमें कोई भाग नहीं लिया था।

* * * *

जीवन-संग्राम—मुरारकी छावनी हाथसे निकल जानेका विप्लवियोंको अत्यन्त दुःख हुआ। वह मनहीमन अपनी करनी पर पश्चात्ताप करने लगे। किन्तु क्या उपयोग? किन्तु हाँ इस भीषण हार से उनकी आँखें खुल गयीं। वह अपना बचा हुआ प्रदेश बचाने का उपाय सोचने लगे।

तात्याटोपी, रावसाहब पेशवा एवम् बान्दे के नवाबने मनहीमन इस बात का प्रण कर लिया कि अब भविष्य में फिर कभी ऐसी भूल नहीं करेंगे। उन्होंने बड़े उत्साहके साथ ग्वालियरका व्यवस्था कार्य आरम्भ कर

दिया। जगह जगह, नगर और दुर्ग की रक्षाके हेतु तोपोंके मोर्चे बान्ध कर खड़े कर दिये। स्थान स्थान पर रिसाले और पल्टनें तैनात कर दीं। विभिन्न स्थानों पर युद्धोपयोगी सामग्रियां तैयार करवाना आरम्भ किया। इस प्रकार अपनी ओरसे अपने स्वत्वकी रक्षाका शक्तिभर प्रयत्न कर उन्होंने भविष्यत् युद्धके निमित्त पूरी पूरी तैयारी कर ली।

इस बीच सुदक्ष सेनापति तात्याटोपी, पेशवा से महारानी लक्ष्मी बाईके नाम एक पत्र लिखवाकर महारानी के तत्कालीन निवास स्थान फूलबागमें जा उपस्थित हुए। उस समय महारानी लक्ष्मी बाई इसी बागमें डेरा डालकर रहती थीं। तात्याटोपी ने उनके सन्मुख उपस्थित होकर विनम्र भाव से कहा—

'श्रीमती जी !

हम लोगोंने आपके शुभादेशों की जो अवहेलना की थी उसके लिये हम लोग हृदयसे लज्जित हैं। क्षणिक ऐश्वर्यसुखसे उन्मत्त होकर हम लोगोंने आपकी बातोंका मूल्य नहीं समझा था, उसीका यह परिणाम है कि आज दिन मुरार की छावनी में हमारी हार हुई। भविष्यके लिये भी हमारे सिर पर विपदाके बादल मंडरा रहे हैं। नहीं मालूम वह कब कड़केंगे, कब बिजली पैदा करेंगे? उसकी तीव्र मार से हम मरेंगे या बचेंगे! इस समय हमें भारी पश्चात्ताप हो रहा है। हम जानते हैं कि हम लोग इस योग्य नहीं हैं कि आपसे क्षमा की याचना करें, किन्तु यह राष्ट्र कार्य है। राष्ट्र ही की सेवा के लिये हम लोग पुनः आपसे सहायता माँगते हैं। आप राष्ट्र की लक्ष्मी हैं। राष्ट्रहित के लिये आपको हमें क्षमा करना चाहिये। क्षणमात्र के लिये

हमलोग मोहनिद्रा के वशीभूत होकर राष्ट्र सेवा से विमुख हुए थे अवश्य, किन्तु अब हमें उसका पश्चात्ताप है और हम चाहते हैं कि इस प्राप्त अवसर पर हम लोग आपही के आदेशानुसार जैसे भी हो पुनीतभाव से राष्ट्रसेवा कर अपने कृतकर्मों का प्रायश्चित्त करें।

देवी ! आप स्वतन्त्रता की अधिष्ठात्री हैं। महाराष्ट्र धर्म की जाज्वल्यमयी प्रतिमा हैं। स्वदेशकी अमर कीर्ति हैं और हैं प्रेम उदारता एवम् सहिष्णुता की भागीरथी ! बतलाइये ! राष्ट्रकार्य के निमित्त इस समय यदि आपका हमपर वरदहस्त न होगा तो कैसे हम लोग राष्ट्र को शत्रु से मुक्त कर सकेंगे ? आप सदय होकर हमें क्षमा करें । हमारे कृत अपराधों को विस्मृत कर दें और दे दें हमें उचित आदेश !

बतलाइए, इस समय हमें अपनी सेनाकी किस प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए ?

तात्याटोपीके इस वक्तव्यको सुनकर महारानीका सदय हृदय दयार्द्र हो उठा। उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आए और वह बोलीं देखिए बन्धुवर ! धनुष की प्रत्यञ्चापर चढ़ा हुआ बाण एक बार हाथसे निकल जानेपर पुनः वापिस नहीं आता । उसी प्रकार एक बार हाथ में आया हुआ अवसर हाथसे निकल जानेपर वह पुनः हाथ नहीं आता। जिस समय उस अवसर की प्राप्तिके लिये हम लोग चेष्टा कर रहे थे उस समय से लेकर अवसर प्राप्त हो चुकने पर मैं बराबर आप लोगों को सतर्क कर रही थी। किन्तु आपने उस समय मेरी बातों पर तनिकभी ध्यान नहीं दिया। उल्टे क्षणिक सुखोंके मोहमें फंसकर अपना किया कराया काम भी चौपट कर दिया। हम लोगों ने सहस्र-सहस्र

बान्धनू बान्धकर जिस कठिनतासे उस अवसरको जीता था, वह सभी निष्फल होगये। इसी बीच हमारी गफ़लतका अवसर पाकर अंग्रेज़ी सेना हमारे सिर चढ़ आयी है। हमारी ओरसे उसके प्रतिकारकी कोई भी व्यवस्था नहीं हुई। ऐसी दशामें हमें उसके विरुद्ध विजय प्राप्तिकी आशा रखना व्यर्थ है! तथापि भगवान श्रीकृष्ण के गीतामें दिये हुए उपदेशानुसार 'कर्म्मण्यैवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन' एवम् 'हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्' वाले सिद्धान्तोंको मानकर धीरता पूर्वक हमें समराङ्गणरूपी कर्म्मक्षेत्रमें जीने या मरनेके लिये तैय्यार हो जाना चाहिये। मैं आप लोगोंका साथ देनेके लिये सहर्ष तैयार हूँ। मुझ अबला-विधवाका इस समय एकमात्र यही कर्तव्य बचा है, जिसके पीछे मैं मर मिटनेको प्रस्तुत हूँ। आप लोग यथाशक्ति अपनी सेनाको सुशिक्षा देकर युद्धके लिये तैयार करें।

महारानीके इस उत्साहपूर्ण भाषणको सुनकर तात्याटोपी आनन्द विह्वल हो उठे। उनकी मुद्रा विलक्षण रूपसे चमक उठी। वह महारानी को आदरपूर्वक प्रणाम कर चले गये। जाते समय उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाईको ग्वालियरकी पूर्व दिशाका रक्षाभार सौंप दिया था। पश्चात् शेष दिशाओंका प्रबन्ध करनेके हेतु वह अपने शिविरमें चले गये।

* उनके चले जानेपर महारानी लक्ष्मीबाईनेभी युद्धके लिये अपनी

---

* इस विषयमें एक अंग्रेज महाशय इस प्रकार लिखते हैं।

"* * * But little preparation was made for the defence of the fort; and it is probable that

कमर कस ली। इस बार वह जानती थीं कि सम्भवतया यही युद्ध उनके जीवनका अन्तिम जीवन-युद्ध है। इसी विचारसे उन्होंने अपूर्व रणोत्साहसे प्रेरित होकर हाथोहाथ अपनी आश्रित एवम् विश्वास सम्पन्न सेनाको सुचारु रूपसे युद्धके निमित्त उत्तेजित किया और अपने निजी-निरीक्षणमें अपने ओरकी सम्पूर्ण युद्ध व्यवस्था करवायी। पश्चात् स्वतः मर्दाने रणसाजसे सजकर, वीरोचित वेषमें, रत्नजड़ित कृपाण कमरमें लटकाये हुए, रणधुरन्धर सेनानायककी तरह अपनी सेनाके सन्मुख उपस्थित होकर उनसे क़वायद लेने लगीं। उस समयका उनका वह आवेश, मर्दाना ठाठ, भव्य मुद्रा, गम्भीर स्वर एवम् कट्टर स्वाभिमान, सैनिकोंके

---

both Tope and the Ranee conquered in resolving to abide by the old Maharatta tactics, and avoid shutting themselves up within walls. Therefore they disposed their forces so as to observe and hold the roads leading upon the city, 'Indurkee Seepree,' and the North; the neccessary arrengements being effected mainly under the direction and personal supervision of the Ranee, who clad in military attire, and attended by a picked and well-armed escort, was constantly in the saddle, Ubiquitous and untiring."-Letter from Bombay Correspondent, Times, August 3rd, 1858.

अन्तःकरणपर वीरताकी गहरी छाप बैठा रहा था। वीर प्रतिमा के देखतेही उन वीर पुङ्गवोंके विशाल हृदय वीरता से भर गये और वह आवेशके वशीभूत होकर विलक्षण रूपसे अपनी आंखें फाड़-फाड़कर शत्रु के अन्वेषण में उत्सुक होने लगे।

उनके क़वायद लेनेके पश्चात् महारानी लक्ष्मीबाईने उन्हें मौके-मौके और स्थान-स्थानपर दश-दश पन्द्रह-पन्द्रहके झुण्डमें तैनात कर दिया। पश्चात् यथोचित स्थानोंपर अपनी प्रलयंकर तोपोंके मोर्चे बान्धकर सदर मार्गपर साहसी वीर जवानोंका एक बड़ासा दल नियुक्त कर दिया। उनके दाहिने और बायें पैदल सैनिकोंका पथक और लाल पगड़ीवाले अश्वारोही निर्धारित कर दिये। इस प्रकार कोटाकी सराय से लेकर फूल-बाग तकका सारा प्रदेश महारानी लक्ष्मीबाईने अपनी अलौकिक रण-चातुरीसे व्यवस्थित रूपसे सुरक्षित कर दिया। उधर मुरारकी छावनीसे लेकर ग्वालियर नगर तकका सारा भूभाग रावसाहब पेशवा एवम् तात्याटोपीकी व्यवस्थामें रहा। अंग्रेजी सेना ग्वालियरके इर्द-गिर्दवाले सारे भूप्रदेशोंपर फैली हुई थी। अस्तु,

रावसाहब पेशवा एवम् तात्याटोपीसे टक्कर लेनेके हेतु अंग्रेजों की ओरसे दो बड़े महारथी सर ह्यू रोज एवम् कर्नल नेपियर अपने दल-बल सहित डँटे थे। कर्नल स्मिथ, रेन्स, पेली, डिक्स, हेनेज़ आदि रण धुरन्धर सेनानायक अपनी-अपनी सेनायें लेकर महा-रानी लक्ष्मीबाईसे हाथ मिलानेको तत्पर थे। उभय पक्षोंनेही अपनी-अपनी शक्ति एवम् बुद्धिके अनुसार अपनी ओरसे पूरी तैय्यारी कर रखी थी। बस, फिर देरही क्या थी? ईस्वी सन् १८५८ की १७ जूनको

कर्नल स्मिथ द्वारा युद्धका श्रीगणेश आरम्भ होगया । अंग्रेजोंने विप्लवियों पर उभय दिशाओंसे एकही साथ चढ़ाई कर दी। उन्हें आगे बढ़ते देख महारानी लक्ष्मीबाईने अपने गोलन्दाजोंको तोपें दागनेकी आज्ञा दे दी। निमिषमात्रमें घनघोर आक्रमण आरम्भ हुआ। मिनट-मिनट पर तोपोंके गरजते हुए गोले गगन मण्डलको भेदकर उसे धूम्रवर्ण बनाते हुए अंग्रेजोंके सेनासमुद्रमें गिरकर उन्हें सुरधाम पहुँचाने लगे। अंग्रेजी सेना इस आकस्मिक् अग्निकाण्डसे घबड़ा उठी। उसके पैर उखड़ने लगे। महारानी लक्ष्मीबाईके अश्वारोही सवारोंने यह अवसर हाथसे जाने न दिया। वह आवेशके साथ आगे बढ़कर तीरकी तरह शत्रुओंकी हारती हुई सेनापर टूट पड़े और उन्हें बुरी तरह मार खदेड़ने लगे। कितनोंहीको तो उन्होंने घोड़े नचाकर उनकी टापोंके नीचे रौंद डाला। कितनेही उनके कठोर करोंकी क्रूर कृपाणोंके घाट उतर गये।

कर्नल स्मिथने अपनी यह भयंकर हार होती देख अपना तोपखाना आगे मंगवाया। किन्तु उसके वहाँ पर आतेही महारानी लक्ष्मीबाईके अतिप्रिय-विश्वसनीय एवम् यम-स्वरूप शूर-वीर सैनिक उस पर ऐसे टूट पड़े मानों कबूतरको देखकर बाज। इसबार पुनः उभय पक्षमें खूब छिड़ी। खटाखट तलवार पर तलवार, बल्लम पर बल्लम और ढाल पर ढाल बजने लगी। दोनोंही पक्षोंने अपनी-अपनी शक्तिभर युद्ध कौशलकी पराकाष्ठा कर दिखलायी। महारानी लक्ष्मीबाईको विश्वास होने लगा कि यदि उनका दल इसी तरह धीरताके साथ अपनी वीरता पर अड़ा रहेगा तो निश्चयही अल्पावकाशमें उनकी विजय होगी। उस समय अंग्रेजोंकी ओरसे कर्नल रेन्सने महारानीके पीछेकी ओर

जाकर उनके तोपखानेपर आक्रमण करते हुए उसे बन्द करने की चेष्टा की थी किन्तु बेचारे उद्योगमें कृतकार्य न होसके। सायंकाल तक किसीभी दिशासे अंग्रेज़ोंके विजयकी सूरत नहीं दिखलाई दी। महारानीके दिलेर जवान कहींसे अंग्रेज़ोंको आगे न बढ़ने देते थे। विवश होकर बिल्कुल अन्धेरा हो जानेके कारण—नितान्त हताश अवस्था में अंग्रेज़ोंको उस दिनके लिये युद्ध स्थगित कर देना पड़ा। महारानी लक्ष्मीबाईभी दिन भरकी दौड़-धूपके कारण बेहद थक गयीं थीं। उनका विख्यात घोड़ा अपनी जानपर खेलकर दिनभर रणाङ्गणको अपनी दौड़ धूपका क्रीड़ा--क्षेत्र बनाये हुए था। उसके अङ्ग—अङ्गपर भयङ्कर वार हुए थे, जिनके कारण उसकी सारी शक्ति क्षीण हो गयी थी। महारानीने उसकी यह दशा देख कर लौट जानाही उचित समझा और वह अंग्रेज़ों का सफेद झण्डा देखकर युद्ध स्थलसे वापिस लौट गयीं।

दूसरे दिन अर्थात् तारीख १८ को अपना घोड़ा मर्माहत हुआ देख, महारानी लक्ष्मीबाई सिन्धिया नरेशकी अश्वशालासे एक नया सर्वाङ्ग सुन्दर घोड़ा लेकर युद्धस्थल पर डट गयीं। अंग्रेज़ सेनाध्यक्ष महारानीकी गत् दिवसकी वीरता देखकर भयके मारे काँप उठे थे। उनके हृदयमें यह आशङ्का पैदा हो गयी थी कि यदि इसी तरह महारानी द्वारा उनकी सेनाएं परास्त होती गयीं तो बहुत शीघ्र उन्हें पराजित होकर ग्वालियरसे भागना पड़ेगा। वह भीशणरूपसे हताश हो गये थे, किन्तु केवल क्षणभरके लिये। शीघ्रही उनके वीर हृदय में आवेश का संचार हो गया। उन्होंने आज दिन प्रथम दिवसके पराजयकी सारी कोर—कसर निकाल लेनेका निश्चय कर लिया। वह वीरता-पूर्वक

अपने कार्यमें दत्त-चित्तहो गये। उन्होंने आजके दिन अपनीसेना की व्यवस्था नितान्त निराले ढंगसे की। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी सारी सेनाको एक जगह एकत्रित किया। उससे कवायद ली। पश्चात् उसमें से कुछ सैनिक चुनकर उन्हें बीहड़में छिपा दिया। शेष सेना कर्नल डिक्स और हेंनेज़के सुपुर्दकर उन्हें शत्रु पत्त पर टूट पड़नेकी आज्ञा दी। आठवीं हुर्जास पल्टनको खुले तौरसे विप्लवी दलसे टक्कर लेनेका हुक्म हुआ। स्वयम् सर ह्यू रोज़ अपनी सेना लेकर ग्वालियरके दूसरी ओरसे शत्रु पक्ष पर टूट पड़नेके हेतु आगे बढ़े। आजके दिन उनमें कलसे कहीं अधिक आवेश, आन्तरिक उत्साह एवम् गम्भीरता थी। वह मत्त गज़राजकी तरह झूमते हुए अपने सैनिकोंके आगे बढ़े जा रहे थे।

इधर महारानी लक्ष्मीबाईनेभी मर्दाने ठाठमें हाथमें नङ्गी शमशेर लिये सिन्धिया नरेशकी अश्वशालासे लिये हुए नवीन अश्व पर आरूढ़ होकर देवी रणचण्डीकी तरह उग्र वेष-भूषामें अपनी सेना सहित रण-भूमिमें जा डटीं थीं। उभय पक्षीय सेना नायकोंका सामना होतेही एक बार रणक्षेत्रका सारा वातावरण 'हर-हर-महादेव' एवम् 'हिप-हिप-हुर्रे' से गूँज उठा। दूसरेही क्षण सर ह्यू रोज़ने विप्लवियोंके नेता रावसाहब पेशवा और तात्याटोपीके दलपर धावा बोल दिया। कर्नल स्मिथ अपने सैनिकोंको लेकर विभिन्न दिशाओंसे महारानीके सामने और पीछे पहुँच कर उनपर टिड्डीदलकी तरह टूट पड़े। महारानी लक्ष्मीबाई उनके इस भयानक आक्रमणको देखकर ज़रा भी धैर्य्यसे विचलित नहीं हुईं। वरन् सदासेभी अधिक ज़ोर-शोरसे अपने चुनिन्दा अश्वारोही जवाँमर्दों एवम् ३।४ विश्वास भाजन वीर सैनिकोंको लेकर शत्रु पक्षमें घुस गयीं। *

वहाँ जाकर उन्होंने वह प्रलयङ्कर मार-काट मचाई कि पलक मारते-मारते कतिपय अंग्रेज़ सैनिकोंके रुण्ड मुण्ड धड़से अलग होकर नाचने लगे। देखते देखते घनघोर युद्ध छिड़ गया। जिधर देखो

* इस सम्बन्धमें 'दी नैशनल गार्जियन' नामक पत्रके १४ दिसम्बर सन् १८९१ की संख्यामें डी० एल० जी० नामक विद्वानने इस तरह लिखा है:—

"She was surprised in her camp near the city of Kotakisari in Gwalior when this took place. Ranee Laxmi Bai and her sister, who also was a lady of remarkable valour and beauty, were seated togther in the camp in male attire and drinking sherbat. Immediately the beautiful Ranee went over the field and made a firm stand against the army of Sir Hugh Rose. She led her troops to repeated and fierce attacks, and through her ranks we repierced through and gradually thinner and thinner the Ranee was seen in the foremost rank, rallying her shattered troops and performing prodigies of valour. But all was of no avail. The camel corps, pushed up by Sir, Hugh Rose in person broke her last line. Still the hauntless and heroic Ranee held her own."

उधर हीसे मार मार काट काटकी आवाज़ आने लगीं। तलवारोंको खड़खड़ाहट, गोलियोंकी सनसनाहट, अश्वोंकी हिनहिनाहट, तोपोंकी गड़गड़ाहट और तीरोंकी झनझनाहटसे सारा वायुमण्डल गूँज उठा। क्षण-क्षणपर चपलगामिनी चपलाकी तरह चमकती हुईं महारानी लक्ष्मी बाई लपक लपककर अंग्रेज़ी सेना समुद्रपर टूट कर उनके शिर को काटकर काली कराली कुपित कृपाणकी भेंट चढ़ाने लगीं। उनकी उस समयकी वह चपल गति, उनके नेत्रोंसे निकलनेवाली विद्युत ज्योति, उनकी लपलपाती हुई तलवारकी प्रचण्ड शक्ति एवम् उनके हृदयकी अटल युद्धभक्ति उस समय यमराजसे भी कहीं अधिक भयङ्कर, भासित होती थी। उनके उस रणसाहस को देखकर उनकी अश्वारोही सेनाको भी आशातीतरूपसे जोश हो आया और वह अथाह जलकी उत्ताल तरङ्गोंकी तरह ताण्डवका रूप धारणकर अंग्रेज़ोंकी सैनिक पंक्तियों पर पूरे ज़ोर शोरसे दौड़ गयी। अंग्रेज़ोंने भी अपनी शक्ति

इस लेखमें एक स्त्रीका हवाला देते हुए लेखकने उसे महारानीकी भगिनी बतलाया है। किन्तु यह उनकी भूल है। महारानीको कोई बहिन नहीं थी। हाँ, जिसकी ओर संकेत कर उक्त बात लिखी गयी है, वह महारानीकी उन दासियोंमेंसे कोई होगी, जिनके नाम क्रमशः काशी और सुन्दर थे। यह दोनोंही दासियाँ महारानीकी अत्यन्त विश्वास-पात्र एवम् सच्ची सेविकाएँ थीं। वह भी उक्त युद्धमें महारानीके साथ मर्दाने वेषमें गयी थीं। अतः लेखकका इन्हीं दोनोंमेंसे किसीको महारानीकी भगिनी बतलाना सम्भवनीय है।

भर शत्रुओंसे टक्कर लेनेमें कोई चेष्टा उठा न रखी। वह लोग भी अवसर पातेही महारानीकी सेनापर टूट पड़ते और कितने ही वीर विप्लवियोंको मार गिराते थे। किन्तु तुरंतही पुनः महारानीके प्रबल सैनिक उनपर दौड़ जाते और अपने क्षात्र तेजकी उन्हें अच्छी कल्पना करा देते थे।

इस तरह घन्टोंतक उभय पक्षोंमें बराबरीका युद्ध होता रहा। अब तक किसीको किसीके हारनेकी सम्भावना नहीं मालूम होती थी। दोनों ही पक्ष अपने अपने अवसरोंपर प्रतिस्पर्धा से बढ़ जाते और उसे मार भगाते थे। इसी बीच अकस्मात् वह रंग पलट गया और महारानी के पराजय होनेके लक्षण दिखलायी देने लगे।

वस्तुतः बात यह थी कि जब अंग्रेज़ोंने महारानीको हर तरहसे सबल देखा तब तो वह विलक्षण रूपसे चिढ़ गये। पहिले तो उन्होंने अपनी सारी शक्ति महारानीको परास्त करनेमें लगा दी। परन्तु जब इससे भी कोई फल न निकला तब वह लाचार हो गये और मनहीमन किसी नवीन युक्तिका आविष्कार करने लगे। दैवयोगसे इस समय ब्रिगेडियर स्मिथका दिमाग़ बड़ा काम दे गया। उसने महारानीके पिछे-से अपनी हुर्जास पल्टनको आगेकर धावा बोल दिया।

महारानीके इस ओर सिन्धियाके वह सैनिक थे, जो तात्याटोपीकी कृपासे विद्रोहियोंमें शामिल हो गये थे। उन्होंने अंग्रेज़ोंकी घोषणा सुनकर ऐन समयपर मुँह मोड़ लिया। जो कुछ महारानीकी पैदल सेना थी वह अंग्रेज़ोंके प्रबल आक्रमणसे भयभीत होकर भाग खड़ी हुई। परिणाम यह हुआ कि इस ज़रासे परिश्रममेंही अंग्रेज़ोंको महारानीका सारा गोला बारूद तोपें एवम् अन्य युद्धोपयोगी सामान मिल गया।

साथही साथ उनको वह मौक्केका स्थान भी मिल गया जहाँसे तोपें चलने पर महारानीकी सेना दम के दममें छिन्न भिन्न की जा सकती थी। बस, फिर क्या था ! सिन्धियाकी इस ऐन समयपर विश्वासघात करनेवाली सेनाके कारण महारानोका बल घट गया। वह चारों ओरसे शत्रुपक्ष द्वारा घिर गयीं। उन्होंने बहुतेरा प्रयत्न किया कि वह किसी तरह घेरा तोड़ कर सेनापति तात्याटोपीसे जा मिले। किन्तु बेचारी अंग्रेज़ोंकी भीषण अग्निवृष्टि एवम् अथाह सेना-समुद्रके कारण असमर्थ होगयीं। उस समय उनके इर्द-गिर्द दूरतक अंग्रेज़ी सेनाकी नङ्गी तलवारों एवम् सङ्गीनोंका घेरा पड़ा रहा। चारों ओरसे उनकी सेनापर गरनाली तोपोंकी विकराल मार हो रही थी। उसमेंसे जीवित दशामें पार निकल जाना, मनुष्य तो क्या चींटी तकके लिये असम्भव कार्य था। महारानीने अपनी शक्तिभर इसके लिये चेष्टाकी। दिल खोलकर लड़ीं। पूर्ण वेगसे शत्रुओंपर तलवार चलाती रही। कितनेही अंग्रेज़ोंको एकही हाथमें सुरधाम पहुँचाया, किन्तु व्यर्थ। सिन्धियाकी विश्वासघातिनी सेनाने ऐन समयपर जो दगा किया था, उसके कारण अंग्रेजोंको बन आयी। उन्होंने ग्वालियर नरेश जयाजीरावको आगे कर उनके नाम पर जो घोषणाकी थी उसीके बदौलत विप्लवी सेना उनके अनुकूल होगयी और उसीके विश्वासघातके कारण अंग्रेज़ोंकी विजय हुई। उनकी कुटिल चाल सफल हुई और महारानी लक्ष्मीबाई उनके पञ्जेमें निरीह एवम्-निःसहाय पक्षीकी तरह फंस गयीं ! किन्तु—क्या सर्वदाके लिये ? नहीं और कदापि नहीं। उन जैसी स्वातन्त्र्य लक्ष्मी वीरांगनाको सदाके लिये अपने दानवी पन्जेमें फँसाने वाला माईका लाल अंग्रेज़ोंमें

था ही कौन? शीघ्रही वह शत्रुओंकी सैनिक शृङ्खला को तोड़कर-उनके देखते-देखते नौ दो ग्यारह हो गयीं।

*　　　*　　　*　　　*

मोक्ष—जेठ शुक्ल ७ सम्वत् १६१४ अर्थात् ईस्वी सन् १८५८ की १६ वीं जूनका दिन था। भगवान् सहस्ररश्मि नीलनभरूपी मञ्चपर आरूढ़ होकर निर्निमेष नेत्रोंसे स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाईकी ओर टक-टकी लगाये उनकी संग्राम क्रीड़ा अवलोकन कर रहे थे। उनके तीव्र किरण महारानीके तेजस्वी मुखमण्डल पर उद्दीप्त होकर उनकी आन्तरिक उत्सुकता प्रकाशित कर रहे थे। सम्भवतया इसी कारण मानो महरानी लक्ष्मीबाईने आज अपने सारे कौशल और चातुर्य दिग्दर्शन करने की ठानी थी। तभी तो वह आज निरीह-निःसहाय और निराधार होकर निराशाके नीरवनदमें फंसते हुए भी अपने युक्ति, बल, साहस एवम् शौर्य्य द्वारा उससे पार पानेकी चेष्टा कर रही थीं। तीन दिन तक कट्टर शत्रुओंके साथ युद्ध करते-करते उनके अङ्ग अङ्ग शिथिल हो चले थे। मृदुल मुख कमल अविरल परिश्रमोंके कारण म्लान एवम् धूलि-धूसरित होगया था। किसी भी तरह उनका पहिचाना जाना कठिन होगया था। तथापि उनका वह आवेश, वह उत्साह, वह धैर्य्य, वह शौर्य्य एवम् वह कर्त्तव्यनिष्ठा ज्योंकी त्यों बनी थी।

यद्यपि उस समय वह शत्रुओंसे बुरी तरह घिरी थीं, उनकी विश्वासी सेना कुछ तो मर चुकी, कुछ हार चुकी एवम् कुछ रणक्षेत्र छोड़कर भाग चुकी थी, यद्यपि उनकी आधीनता स्वीकार किये हुए सिन्धिया नरेशके अधिकांश सैनिक विश्वासघाती हो चुके थे, यद्यपि उनके साथ इस

समय तक एक दो विश्वासपात्र सरदारों एवम् दो तीन दासियोंके सिवा अन्य कोई भी नहीं रहा था, उनकी सारी युद्ध सामग्री शत्रुओंके वृकोदर में समा चुकी थी तथापि उनके कौशल उनके साहस एवम् उनकी बुद्धिने अभीतक उनका साथ नहीं छोड़ा था और वह केवल इसी शक्तित्रयीकी बदौलत अंग्रेजोंके दिग्गज सेनापति ब्रिगेडियर स्मिथ, कप्तान हैनेज प्रभृति वीरों एवम् उनके सुदीर्घ सैनिक पथकोंके मध्यमें रहकर देवी कात्यायनीकी तरह अपनी कठोर कृपाण चलाती एवम् उन मर्द कहलाने वाले अकेली विधवा अबलाको पाकर उसपर खड्ग चलाने वाले गोरे जनखोंका गर्व-खर्व करती रहीं। उन्होंने अपने हाथोंसे वैसी स्थितिमें भी उस समय कितने शत्रुओंको मार गिराया, इसका कोई हिसाबही नहीं। अंग्रेज़ोंके वीर सैनिक उस अकेली वीर बालापर गोलियाँ चला-चलाकर अपनी वीरताका प्रबल परिचय दे रहे थे। किन्तु वह ज़रा भी विचलित न हुई। उन्होंने दूने ज़ोर-शोरसे अंग्रेजोंको काटना आरम्भ कर दिया और वैसेही तलवार घुमाती हुई शत्रुओंका घेरा तोड़कर सनसनाते हुए तीरकी नाईं अपना घोड़ा दौड़ाती अंग्रेजी सेनाका चक्रव्यूह तोड़कर पार होगयीं।

उस समय शत्रुओंको अँगूठा दिखलाकर भागनेवालोंमें उनके साथ रामचन्द्रराव देशमुख तथा रघुनाथसिंह नामक दो स्वामिनिष्ठ सेवक तथा सुन्दर एवम् काशी नामकी दो वीर परिचारिकायें भी थीं। महारानी लक्ष्मीबाईने ज्योंही विकराल रूप धारणकर शत्रुकी जबर्दस्त सेनाको कालके गालमें पहुँचाना आरम्भ किया त्योंही वह भयभीत होकर महारानीसे दो कदम पीछे हट गयी। उनकी यह दशा देखकर उस वीर

बालाके अंतःकरणमें एक नवीन कल्पनाका प्रादुर्भाव हुआ। वह पहिलेसे भी अधिक प्रचण्ड वेगसे शत्रु पक्षके सन्मुखस्थ सेनापथक पर टूट पड़ी और अपनी कठोर करवाल चलाकर उसे चीरती हुई उक्त अङ्गरक्षकों सहित शत्रु सेनाके घेरेसे पार होगयीं।

इस प्रकार सहजहीमें मैदान साफ़ हुआ देख, उन्होंने एक हुँकार भरी और तत्क्षण अपने घोड़ेको एड़ लगाकर हवासे बातें करते हुए जिधर मार्ग सूझा उधरको भाग निकलीं। उनके उक्त साथी दौड़े चले जा रहे थे। उन्होंने अपनी पीठ से अपने प्राणप्रिय पुत्र दामोदररावको एक रेशमी दुपट्टेसे बांध लिया था। दोनों हाथोंमें नङ्गी शमशेर विराज रही थी। दांतोंमें अश्वकी लगाम थी, जिसके सहारे वह बड़ी सरलतासे शत्रुओंको काटती हुई अश्व सञ्चालन करती आगे बढ़ीं। उस धूँआधार युद्धमें वीरतेपिनी महारानी लक्ष्मीबाईको कोईभी अंग्रेज़ पहिचान न सका। जिस समय वह अपने सैनिकोंको लेकर अंग्रेज़ोंपर चढ़ाई कर रही थीं उस समय उनकी गति चपलासेभी चञ्चल और तलवारसे भी तीव्र थी। वह एक जगह तो कभी दिखलायी ही न दीं। उनका वेष मर्दाना था तथा वह क्षणमें यहां तो क्षणमें वहां पहुँच जाती थीं। तीन दिनके अविरल युद्धके कारण उनका चेहरा भी अत्यन्त धूलि धूसरित एवम् परिवर्तित सा होगया था। यही सब कारण थे कि शत्रु सेना का घेरा चीरकर निकल जाते समय कोई भी उन्हें पहिचान न सका और वह बड़ी सरलतासे अपने साथियों सहित मैदान पार होगयीं।

उनके इस तरह निकल जानेपर सुदक्ष अंग्रेज़ सेनानियोंकी आँखें खुलीं। वह महारानीके इस अनुपम युक्तिको देखकर चम

मात्रके लिये चकित किम्बहुना स्तम्भितसे हो गये, किन्तु दूसरेही क्षण ब्रिगेडियर स्मिथको यह बात बहुतही बुरी मालूम हुई। वह इस तरह बड़ी कठीनतासे पिञ्जड़ेमें फंसी हुई 'सोनेकी चिड़िया' को हाथसे नहीं जाने देना चाहते थे। उन्होंने तत्क्षण अपनी हुजांस पल्टनके कुछ चुनिन्दा अश्वारोही सैनिकोंको चीतेकी तरह महारानीके पीछे लगा दिया। किन्तु व्यर्थ! झञ्झावातकी तरह प्रबल गतिसे जाने वाली स्वातन्त्र्य लक्ष्मीको वे थोड़ेही पा सकते थे!

इसी समय अकस्मात् एक आकस्मिक कारणवश महारानीको ठिठक जाना पड़ा। उनके पीछे सुन्दर एवम् काशी नामकी दो सेविकाएं भागी जा रही थीं। उनमें और महारानीमें पर्याप्त अन्तर छूट गया था। अंग्रेज़ोंके शिकारी सैनिक महारानीके पीछे बेतहाशा घोड़े भगाये जा रहे थे। उन्होंने अपनी दौड़में शिकस्त कर दी। किन्तु वह महारानीको न पा सके। हाँ उनमें से एक सैनिक सुन्दरके पास पहुँच गया और उसने अपनी तलवार तानकर एकही हाथमें उस बेचारी स्वामिभक्त सेविकाको वह चोट पहुँचायी कि बेचारी तत्क्षण 'हाय, बहिन! मरी!' कहकर भूमिपर गिर गयी और सीधे इस लोकसे सर्वदा के लिए चल बसी।

महारानी लक्ष्मीबाई उसका यह आर्तनाद सुनकर घबड़ा उठीं। उन्होंने एकबार पीछे मुड़कर अपनी आँखोंसे उस नीच मर्द एवम् वीर कहलाने वाले अंग्रेज़ सैनिकका राक्षसी कार्य देखा। वह तत्क्षण क्रोधके मारे लाल हो गयीं और लपककर उसकी खोपड़ी पर जा पहुँचीं। वहाँ पहुँचतेही उन्होंने अपने खड्गके एकही वारमें उसका सिर उतार कर उसे सीधे दोज़खका मार्ग दिखला दिया।

यहाँसे पुनः मुड़ पड़ीं और भगवान् वायुकी तरह तीव्रवेगसे आगे बढ़ीं। थोड़ेही अवकाशमें ज्योंही वह पीछा करने वाले अंग्रेज़ सैनिकोंकी दृष्टिसे ओझल हो गयीं त्योंही एक दूसरो विपदा उनके सम्मुख हाथ पसारे खड़ी हो गयी। यह विपदा केवल सामान्य विपदा नहीं थी वरन् प्रत्यक्ष काल का गाल था जो अपना तीक्ष्ण दाँत गड़ाकर उस महिमामयी महामाया महारानी लक्ष्मीबाई को सर्व्वदाके लिये इस महीतल से उठा ले जानेको प्रस्तुत था। महारानी लक्ष्मीबाई जिस समय पीछा करने वाले अंग्रेज़ सैनिकरूपी शिकारियोंकी दृष्टिसे ओझल होगयीं उस समय अकस्मात् उनके गन्तव्य मार्गमें एक नाला पड़ गया। महारानी लक्ष्मीबाई अपने घोड़ेको लेकर उसे फाँद जाना चाहती थीं। किन्तु वह अड़ियल टट्टू उससमय ऐसा बिगड़ा कि महारानीके लाख चेष्टायें करने पर भी वह अपनी जगहसे टस से मस नहीं हुआ। महारानीका निजी घोड़ा पहिले दिनके ग्वालियरके युद्धमें भीषण रूपसे आहत होनेके कारण सिन्धिया नरेशकी अश्वशालामें ही छूट गया था और उसकी जगह सिन्धिया नरेशका यह अड़ियल टट्टू महारानीके गले पड़ा था जिसने सिन्धियाकी अन्य विश्वासघाती सेनाकी तरह उस ऐन मोकेपर महारानीको धोखा दे दिया। महारानी ने कितनाही चाहा कि उस घोड़ेको ले उड़ें पर व्यर्थ! उनकी सारी चेष्टायें बेकार गयीं।

इसी बीच पीछा करने वाले सैनिक भी महारानीके सिर पर आ धमके। उस समय सिवाय ४।५ विश्वासभाजन अङ्ग रक्षकोंके एक भी सैनिक महारानीके साथ नहीं था। बेचारी बुरी तरह उन शिकारी चीतोंके सामने पड़ गयीं। उन मानव हृदयसे परे सैनिकोंने महारानीकी इस

निरीह दशापर कुछभी विचार न कर उनपर अकस्मात् चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। दनादन चतुर्दिशाओंसे उनपर एक साथ वार होने लगे। वह बड़ी वीरतासे उन वारोंको रोकने एवम् अपने वारोंसे रिपु-दलका संहार करने लगीं। उन्होंने उससमय भी कितनेही अंग्रेजोंको अपनी प्रबल करवालके घाट उतार दिया। किन्तु कब तक? कहाँ वह बेचारी अकेली, नितान्त पंगु दशामें! कहां विरुद्ध पक्षमें शत्रुओंका खासा सैनिक समूह! बेचारी वार रोकते रोकते एवम् तलवार चलाते चलाते परेशान हो गयीं। *इसी बीच एक नरराक्षस पिशाचने महा-रानीके पीछे होकर उनके मस्तकपर तलवारका एक भरपूर हाथ चला दिया, जिसके कारण उनके सिरका बांया भाग कपड़ेकी तरह छिन्न-भिन्न होगया और उसी ओरका नेत्रभी बाहर निकल आया! इतनेहीमें दूसरे एक सैनिकने आगे बढ़कर उनकी छातीमें किर्च भोंकते हुए अपनी विशाल वीरताका परिचय दिया। इस प्रकार शरीरके मर्मस्थानोंपर

---

* ऐतिहासिक अन्वेषण द्वारा यह बात ज्ञात हुई है कि महारानी लक्ष्मीबाई की वीरतापर उस समयके अंग्रेज लोग इतने मुग्ध हो गये थे कि वह किसीभी तरह उस वीर रमणीरत्नकी हत्या करनेके लिये तैय्यार नहीं थे। तत्कालीन अंग्रेजी सेनाके प्रधान सेनापति सर ह्यु रोज एवम् गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ्गकी सर्वदा यही इच्छा थी कि महा-रानी लक्ष्मीबाईको जीवित दशामेंही पकड़ा जाय। किन्तु उनकी इच्छाके विरुद्ध उक्त नरराक्षस सैनिकने महारानीपर आक्रमण कर दिया। इसका कारण Dalhousie's Administration of British India के १५२ वें पृष्ठमें इन शब्दोंमें बतलाया गया है:—

अकस्मात् एकके पश्चात् एक सांघातिक वार होनेके कारण महारानीकी कुदशा होगयी। * ऐसी दयनीय स्थितिमेंभी उनके हृदयका साहस, महाराष्ट्र रमणीका जातीय अभिमान एवम् शत्रु-संहारकी वासना तिलमात्र भी कम नहीं हुई वरन् इसके विपरीत उनकी धमनियोंका रक्त और भी

"Flying at length from the field whe.e she had lost what she valued more than Jhansi or the memory of her family. i. e. her revenge, an English dragoon, it is said cut down, taking her for a sower and tempted by the necklace over her Jacket."

* "Among the fugatives in the rebel ranks was the resolute women, who alike in Council and in the field. was the soul of the conspirators, clad in the attire of a man and mounted on horse-back, the Ranee of Jhansi might have been seen animating her troops throughout the day, when inch by inch the British troops pressed through the defile, and when reaching its summit Smith ordered the Hussars to charge, the Ranee of Jhansi boldly fronted the British Horsemen. When her comrades failed her, her horse, inspite of her efforts, carried her along with the others,

प्रबलरूपसे खौल उठा। यद्यपि उनकी दिव्य देहमें बने हुए घाव वह घावथे जो कुछही देरमें महारानीकी जीवनलीला समाप्त करने वाले थे तथापि उनकी प्रतिहिंसावृत्ति उनसे कहीं अधिक तीव्र थी। यही कारण था कि उनकी वैसी दशामें भी, जिस दशामें अत्यन्त, वीर मनुष्य भी चेतनाशून्य होकर भूमिपर गिर पड़ता और वेदना विह्वल होकर जल विना मीन की तरह तड़पा करता है, उन्हें उन वीरोंका कोई भी महत्व नहीं मालूम हुआ और न वे यही जान सकीं कि सांघातिक वारों का दुःख कितना असह्य होता है।

अपने शरीर पर आकस्मिक ढंगसे हुए वारको देख उनका खून खौल उठा। उन घावोंसे रक्तकी धारा निकलतेही उनकी अन्तिम जीवन-ज्योति जागृत हो उठी। क्रोधके मारे उनके कमल नेत्रोंसे आगकी चिनगारियां प्रस्फुटित होने लगीं और वह साक्षात् काली कपालिनीकी तरह

With them she might have escaped, but that her horse, crossing the canal near the cantonment stumbled and fell. A Hussar close upon her track, ignorant of her sex and her rank cut her down, She fell to rise no more. That night her devoted followers determind that the English should not boast that they had captured her even dead, burned the body."

—History of the Indian Mutiny.

उग्ररूप धारण कर बिजली की तरह उस दुष्ट पर टूट पड़ीं जिसने उनके पीछे होकर उनपर वार किया था। कृपाण के एकही करारे वारमें उस नृशंस पशुका कण्ठ चिर गया और वह अपनेही अङ्गके रक्तसे शराबोर होकर अपने जीवनके अन्तिम श्वास गिनता हुआ भूमिपर गिर गया। कालीस्वरूपा महारानी का कृपाणधारी कठोर कर पुनः एकवार इन्द्रके वज्र की तरह आकाशमें उठा और एकही हुँकार ध्वनिके साथ साथ उस वीर पशुके मस्तकपर विद्युत्पातकी तरह जा गिरा जिसने महारानीके वक्षस्थल पर सङ्गीन चलाई थी। महारानीका कठोर करवाल मस्तकपर बैठते ही उस वीर कहलाने वाले सङ्गीनधारी पामरके, जरासन्ध को तरह दो टुकड़े हो गये। महारानी पर पहिले आक्रमण करनेवाले दुष्ट आततायी को पहिलेही वह स्वातन्त्र्य लक्ष्मी युद्धभूमि को समर्पण कर चुकी थीं। अतः अब उनके लिये कोई कार्य शेष न रह गया था। उनकी अमूल्य आयुके सारे क्षण निःशेष होचुके थे। उनका मानवी जन्म का सारा कर्मकाण्ड समाप्त होचुका था। वह जिस उच्च ध्येयको स्थापित करनेके हेतु इस अवनीतल पर अवतीर्ण हुई थीं वह सिद्ध हो चुका था। उस समयके सारे वीर पुंगवोंके सन्मुख यह बात स्पष्टरूपसे प्रकट होचुकी थी कि आसुरी अत्याचार होनेसे अबलामेंभी वह शक्ति आ जाती है जो यदि अवसर मिले तो ब्रह्माण्डको भी राखमें मिला दे। महारानी लक्ष्मीबाई इसी सिद्धान्तको सप्रमाण सिद्ध करनेके हेतु इस पापतापमय संसार में अवतीर्ण हुई थीं। उन्होंने अपनी अन्तिम स्थिति तक अत्याचारियोंको अपने अत्याचारत्रस्त वीरअन्तःकरण का परिचय दिया और हंसते हंसते अनन्त निद्राका शान्ति सुख लेने के

हेतु मातृभूमिकी प्रशान्त गोदमें लेट गयीं। अहा! उनका वह आवेश वह शूरता, वह गम्भीरता, वह साहस, वह कौशल, आज अनन्तकाल बीत जानेपरभी उनकी अमरकीर्तिकी पताका फहरा रहा है! * अस्तु

महारानी लक्ष्मीबाई आततायियोंकी सांघातिक मारसे बुरी तरह आहत होगयी थीं। हृदयमें भीषण प्रतिहिंसाकी आग अकस्मात् सुलग जानेसे कुछ देरतक तो उन्हें उसकी कुछभी वेदना नहीं मालूम हुई। किन्तु ज्योंही उन्होंने सम्मुखस्थ शत्रुओंका शिरच्छेदकर तलवारका हाथ नीचे किया त्योंही उन्हें बेहोशीसी मालूम हुई। शरीरके रोम रोममें भरा हुआ आवेश उतर गया। गात्र क्षीण एवम् शिथिल हो गये। नयनोंके

---

* मि० मेकफर्सन नामक इतिहासज्ञ उनकी मृत्युके सम्बन्धमें इस तरह लिखते हैं:—

"She was seated drinking sherbat, 4000 of the 5th Irregulars near her, when the alarm was given that the Hussars approahed. forty or fifty of them came up and the rebels filed safe about fifteen. The Ranee's horse refused to leap a can-al, when she received a shot in the side. and then a sabrecut on the head, but rode off. She soon after fell dead, and was burnt a garden Close by,"

—Memorials of Service in India. P. 325.

सन्मुख अन्धकार छा गया । धमनियोंका अधिकांश रक्त निकल जानेके कारण शक्ति क्षीण होगयी और वह अपने विश्वसनीय अंगरक्षकोंको पीछे आनेका इशाराकर प्रखर वेगसे घोड़ा दौड़ाती हुई संग्राम भूमिकी एक निकटवर्तीय पर्णकुटिके पास जा पहुँची और नीचे उतरकर वहीं लेट गयीं । इस समय उनकी उस दारुण स्थितिका वर्णन करते लेखनी काँप जाती हैं । हृदयमें भूचालसा बोध होता है । लेखनशक्ति कुण्ठित होजाती है । अतः हम उसके विवरणको यहीं विराम देकर उस सम्बन्धमें केवल यही लिखेंगे कि वह समय उनके लिये बड़े कष्टका था । पासही उनके विश्वासभाजन सेवक रामचन्द्रराव खड़े थे ! उनके नेत्रोंसे महारानीकी वह दारुण दशा देखकर अविरल अश्रु-धाराएं बह रही थीं । वह बच्चोंकी तरह बिलख-बिलख कर रो रहे थे । महारानी बड़े कष्टसे उनकी ओर सङ्केत कर बोलीं—"बस, मैं तो चली । मुझे अब अधिक न तो कुछ कहना ही है न कहनेकी शक्ति है । मुझसे अपने जीवनकालमें प्यारी मातृभूमिकी और झाँसीकी प्रजाकी एवम् पुत्रकी जहाँ तक सेवा हो सकी, मैंने की । मुझे अपनी मृत्युका किञ्चित भी खेद नहीं है, वरन् मैं यह देखकर प्रसन्न हूँ कि, मेरी मृत्यु इस तरह एक वीर महाराष्ट्र रमणीकी तरह रणक्षेत्रमें रिपुओंका नाश करते हुए हो रही है । महारानी लक्ष्मीबाईको यह अंग्रेज़ न तो जिवितावस्थामें ही पकड़ सके और न मरनेके उपरान्तही पकड़ने पावें,—बस, यही मेरी अन्तिम मनोकामना है ।"

इतना कहते कहते उनका दम फूल आया । उन्होंने एक दीर्घ श्वास ली और पहिलेसे भी अधिक क्षीण स्वरमें कहा—'खबरदार! मेरी देहको

किसीभी विजातीय मनुष्यका स्पर्श न हो।' वह फिर रुकीं। उनके नेत्र सजल हो उठे! उन्होंने अपने लाड़ले पुत्र दामोदररावकी ओर देखा और बोलीं-रामचन्द्रराव! अपने जीतेजी इसे दूर न करना!"

इन वाक्योंके उच्चारणके साथ-साथ उनकी शिथिलता बढ़ती गयी। गला प्यासके मारे सूख गया। उन्होंने सङ्केतसे पानी माँगा। रामचन्द्र राव इधर-उधर देखने लगे। पर्णकुटिके मालिक गंगादासने भीतरसे गंगाजल लाकर दिया। महारानीने बड़ी प्रसन्नतासे उस अमृतसुधा का पान किया। उसके उदरमें पहुँचतेही उनकी पवित्र आत्मा उनकी नश्वर देहको वहीं छोड़कर अमरलोक पहुँच गयी। केवल गयी वहाँ स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी की रक्तरञ्जित कुसुमवत् निर्जीव देह! अहा! उस समय भी उस निर्जीव प्रतिमाके मधुर मुख मण्डलपर मन्द स्मित विलसित था। अपूर्व वीरश्री खेल रही थी! *

---

* महारानी के मृत्यु के सम्बन्ध में कई किम्वदन्तियाँ हैं। किन्तु विवेचक दृष्टिसे उनका उहापोह करनेसे उनको 'दन्त कथा' कहनेके अतिरिक्त कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। इस सम्बन्धमें कुछ लोग कहते हैं कि महारानीने जब देखा कि उनका किसी भी तरह अन्त नहीं हो रहा है तब किसी घास के ढेर में कूद पड़ीं और उसमें सुतली के बोफे से आग लगाकार भस्मीभूत हो गयीं। कुछ लोग उन्हें युद्ध करते करते मरी हुई बतलाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अपने ऊपर आक्रमण करने वाले शत्रु पर आक्रमण करनेकी गड़बड़ीमें शत्रु सहित मर गयीं। इत्यादि विभिन्न प्रकार की दन्तकथाएं इस सम्बन्ध में सुनने में आती हैं। किन्तु उनमेंसे किसी को भी सत्यता का पूरा प्रमाण नहीं मिलता।

विभिन्न इतिहासों के अवलोकन से केवल इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि वह ज्योंहीं शत्रु द्वारा ज़ख्मी हुईं त्योंही उन्होंने उसे मार गिराया और आप भी गिर पड़ीं। आपके आज्ञानुसार आपके विश्वास-भाजन सेवकोंने आपकी अन्तिम व्यवस्थाकी। कुछ लोगों का कहना है कि उनकी अन्तिम क्रिया की व्यवस्था स्वयम् रावसाहब पेशवा ने की थी। किन्तु इतिहाससे यह कथन अविश्वसनीय सिद्ध होता है। उस समय रावसाहब पेशवा उनके पास थे ही कहाँ जो उनकी व्यवस्था करते?

रहा एक प्रश्न यह कि उस आपत्तिकालमें उनके सेवकोंको महारानी के आदेशानुसार कार्य करने का अवसर कैसे मिला? इसका उत्तर ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा इस तरह मिलता है कि एक तो महारानी लक्ष्मीबाई नितान्त मर्दाने वेषमें थीं। जिसके कारण अंग्रज़ों को उनका पता न चला और वह इच्छा रखने पर भी उस वीर रमणीको न पकड़ सके। दूसरे महारानी ने जब अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रु को मार गिराया तब सम्भवतया शेष शत्रु सैनिक भयके कारण पीछे लौट गये। अनुमानतः इसी बीच महारानी लक्ष्मीबाई एवम् रामचन्द्ररावमें भविष्यत् कार्यक्रम की रूपरेखा निश्चित् हुई और उसीके अनुसार उनकी अन्तिम क्रिया का प्रबन्ध हुआ।

इस स्वातन्त्र्य लक्ष्मीके सम्बन्धमें लिखते हुए एक अंग्रेज़ इतिहासज्ञ ने इसे फ्रान्स की 'जोन आफ आर्क' नामक महिला से उपमा दी है। आप अपने लेख में यह भी लिखते हैं कि महारानी ने ज़ख्मी होने के पश्चात् अपने आदमियोंमें आभूषण आदि बाँटे थे। आपके लेख का कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है:—

"This Indian Joan of Arc was dressed in a red Jacket and trousers and white turban. She wore a Scindia's celebrated pearl necklace which she had taken from his treasury. As she lay mortally wounded in her tent, she order·ed those ornaments to be distributed among her troops. The whole rebel army mourned her loss;"

—clyde and Stathnairn.

मि० मार्टिनसाहब लिखते हैं कि महारानी के आहत होनेका समाचार अंग्रेज़ोंको बिल्कुल ही नहीं मिला था और इसी कारण महारानीके सेवक उनकी अन्त्येष्टिक्रिया पूर्ण शांति एवम् नितान्त उत्तमता के साथ कर सके थे। देखिये:—

"No English eye marked her fall. The Hassars, unconicous of the advantage they had gained, and scarcely able to sit on their saddles from heat and fatigue were, for the moment incapable of further exertions, and retired supported by a timely reinforcement. Then, it is said the remnant of the the faithful body Guard (many of whom had perished at Jhansi) gathered around the lifeless forms of the Ranee and her sister who dressed in male attire, and riding

at the head of their squadrons, had fallen togeth-er killed either by part of a shell, or as is more probable by balls from ravolvers with which the Hussars were armed. A funeral pyre was raised and the the remains of the two young and beau-tiful women were burnt, according to the custom of the Hindoos.'

—Brtitish India P. 489.

उक्त लेखमें दो भूलें की गयी हैं। एक तो यह कि महारानीके साथ उनकी बहिन थी यह दर्शाया गया है। किन्तु महारानीको कोई बहिन नहीं थी, इसे हम पहिलेही बतला चुके हैं। दूसरी भूल यह है कि महा-रानी गोलीके लगने से मरीं—यह बात भी सम्भवनीय नहीं हो सकती, कारण यह लेख ईस्वी सन् १८५८ में प्रकट हुई बातोंके आधारपर लिखा गया है। दूसरे इसके सम्बन्धमें अन्य सभी इतिहासज्ञ एवम् जो लोग स्वयम् वहाँ उपस्थित थे बिल्कुलही विपरीत लिखते हैं। ऐसी दशामें केवल मार्टिन साहबके लेखको ही सत्य मान लेना असम्भव है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थकारने स्वयम् इस सम्बन्धमें तत्कालीन युद्धमें उपस्थित हुए एक मनुष्यके लेख का अपने ग्रन्थमें उद्धरण कर यह टिप्पणी लिखी है—

When the Hussars surprised the camp, the ladies, were seated togeather, drinking sherbat. They mounted and led but the Horse of the

Ranee refused to leap a Canal and she received a shot in the side and sabre-cut the head; but she still rode on till she fell dead from her saddle, and was surrounded and burnt."

इसमें गोली लगकर मरना लिखा है अवश्य किन्तु इसमें सन्देह है। अस्तु जो कुछ भी हो, किन्तु इसमें तो सन्देह नहीं है कि उनकी मृत्यु का समाचार बहुत देरतक अंग्रेजों को न मिल सका। स्वयम् उस युद्ध में उपस्थित रहने वाले डा० सिल्वेस्टर इस सम्बन्धमें लिखते हैं:—

"Memorable too for another reason is this affair; the gallnt Queen of Jhansi fell from a earbye wonnd, and was carried to a rear, where she expired and was burnt according to the customs of Hindoos. Thus the brave women cemented with her blood the cause she espoused. It is as well, it was so, and that, she did not servive to share the ignominious fate of Tantia Topee. The fact of her death was not known to us for some days, and she was attired as a cavalary soldier. Even the report was reeieved with doubt until Sir Rabert Hamilton established it irreputably.,,

—The compaign in Central India P. 183.

इन सब प्रमाणोंको देखते हुए यह तो हर हालतमें ही सिद्ध हो जाता है कि महारानीकी मृत्युके पश्चात् उनकी अन्त्येष्टि क्रिया पूर्ण सतर्कता एवम् उत्तमताके साथ उनके निजी अनुचरोंने नितान्त हिन्दू पद्धतिसे की थी। तथा उनका अन्त हो जानेपर भी उनकी पवित्र देहको किसी म्लेच्छका स्पर्श न हो सका था। बस, पाठकगण! उनका जीवन-व्रत समाप्त हो चुका। वह चल बसीं।

* * * *

विद्रोहियों की दशा—उनके स्वर्गवास होनेके पश्चात् विप्लवियोंका वही हाल हुआ जो बिना तेलके दीपकका होता है। उस स्वातन्त्र्य-ज्योतिके अस्त होनेपर उनमें भीषण अन्धकार फैल गया। यों तो पहिलेहीसे उनके पास सुदक्ष-सुयोग्य एवम् कर्तव्य-कुशल मार्ग प्रदर्शक की कमी थी। तिसपर एक महारानी लक्ष्मीबाई थीं, सो भी अपनी जीवन लीला समाप्तकर परब्रह्म-परमात्माके अंशमें जा मिलीं। उनकी इस आकस्मिक मृत्युका समाचार सुनकर उनका रहा-सहा साहस भी जाता रहा। अंग्रेज़ोंकी इस समय खूब बन आयी। वे लोग पहिलेही सिन्धिया नरेशकी विद्रोही सेनाको अपने वशमें कर चुके थे और उसीके कारण महारानीकी मृत्यु भी हुई थी। अतः इस समय महारानीकी मृत्यु के पश्चात् ग्वालियरकी वह विश्वासघाती सेना खुलकर अंग्रेज़ोंसे मिल गयी। उसकी आकस्मिक सहायताके कारण अंग्रेज़ोंको विद्रोहियोंको परास्त करते देर न लगी। उन्होंने सहजहीमें सिन्धियाकी राजधानी लश्करको जीत लिया। विद्रोही जिधर मार्ग मिला उधरही भाग निकले।

* * * *

सिन्धिया नरेश—ईस्वी सन् १८५८ की १६ जुलाईको सर ह्यू रोज़, सर रावर्ट हैमिल्टन एवम् मेजर मैकफर्सन प्रभृति अंग्रेज़ नेताओंने महाराज जयाजीराव सिन्धियाको लेकर लश्करमें प्रवेश किया और उन्हें पुनः उनके पूर्व पदपर आसीन कराया। इस उपलक्षमें ग्वालियरमें बड़ी खुशी मनायी गयी। किले पर 'यूनियन जैक' फहराया गया। लार्ड कैनिगको 'विजय' की सूचना भेजी गयी। हिन्दुस्तान भर के सारे अंग्रेज शासित शहरों में महाराज जयाजीरावके राज्यारोहणकी खुशीमें तोपोंकी सलामी देने का फ़रमान निकाला गया। सारे लश्करमें रोशनी एवम् भाजोंकी धूम रही। रात का दरबार की ओरसे फूलबाग में अंग्रेज अधिकारियों को सहभोज दिया गया। दिनभर खूब गुलछर्रे उड़ते रहे।

*   *   *   *

रावसाहब पेशवा—इस पराजयके बादभी रावसाहब पेशवा बहुत दिनों तक अपने सेनापति तांतिया टोपीके साथ रहकर अंग्रेजोंसे लड़ते रहे। किन्तु उनके भाग्यमें स्वराज्यसुख नहीं था। जगह-जगह लगातार अपनी हार होती देख वह विरक्त हो गये और उन्होंने तात्याटोपीका साथ छोड़कर सन्यास धारण किया। वह सन्यासीके वेश में कितनेही दिनोंतक पञ्जाबके दुर्गम बनोंमें घूमते रहे। किन्तु दैवदुर्विपाकसे वहाँभी अंग्रेज़ोंके सुदीर्घ हाथ पहुँचही गये। वह अंग्रेज़ी गुप्तचरों द्वारा पकड़े गये और इन्हें ईस्वी सन् १८६२ की ३० अगस्तको ब्रह्मावर्तमें फाँसी दे दी गयी। उनके छोटे भ्राता बालाराव-नाना साहब पेशवा (जिन्होंने कानपुरमें अंग्रेज़ोंको नाकों चने चबवाये थे) तथा

उनके स्नेही मजीमुल्लाखाँको कोई पकड़ न सका। कहा जाता है कि वह नेपालकी तराईमें अदृश्य हो गये।

*   *   *   *

बान्देके नवाब—यह विप्लवी नेताभी ग्वालियर विजयके पश्चात् बहुत दिनोंतक तात्याटोपीके साथ-दर-दर भटकता रहा। किन्तु अन्तमें वह भी तक़दीरसे हारकर 'विक्टोरियाकी क्षमा घोषणा' होतेही अंग्रेज़ों का शरणागत होगया। उसे अंग्रेज़ोंकी ओरसे ४००० रुपये वार्षिककी पेंशन मिली। बस, इसीमें वह अपनी आयुके शेष दिन काटता रहा।

*   *   *   *

तात्या टोपी—ग्वालियरकी हारके पश्चात्‌भी यदि कोई विप्लवी वीर अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक अंग्रेज़ोंसे टक्कर लेता रहा—तो वह केवल एक—और वह भी वीर-मराठा सरदार तात्याटोपी था। उस समय अंग्रेज़ोंकी लगातार विजयपर विजय होती रहनेके कारण भारतके सभी प्रान्तोंमें विद्रोहियोंकी शक्ति क्षीण हो रही थी और वह धीरे-धीरे नामशेष हो जा रहे थे। उस समय हमारे उक्त सेनापतिके पास न तो कोई संगठित सेनाही थी और न युद्धोपयोगी सामग्री ही! किन्तु वाहरे वीर! वह ऐसे समय भी निराश नहीं हुआ। उसने सोच लिया कि किसी न किसी तरह नर्मदा नदीके पार होनेपर वह पुनः मराठे रणधीरों को एकत्रित कर लेगा और उन्हींकी सहायतासे एकबार और स्वातंत्र्य युद्धके लिये कमर कसकर रणक्षेत्रमें उतर पड़ेगा। किन्तु सुधूर्त अंग्रेज़! वह भी कम साहसी और कम बुद्धिमान् तो थे नहीं, जो

उसकी चालको न पहिचानते ! उन्होंने तात्याटोपीकी चाल पहिलेही पहिचान ली और वह चोकन्ने होकर इस घातमें लगे रहे कि वह किसी भी तरह नर्म्मदा पार न कर सके ! तात्याटोपीको उनका यह आन्तरिक हेतु ज्ञात हो गया और वह उस निर्धारित मार्गकी ओर न जाकर भरतपुरकी ओर मुड़ा। किन्तु उधर भी एक अंग्रेज़ी सेनाने उसका मार्ग रोक लिया। अब वह जयपुरकी ओर मुड़ा। किन्तु वहाँ भी शिकारी लोग अपने शिकारकी ताकमें दृष्टि गड़ाये बैठे रहे ! अब तो उसका दिमाग़ ठनक गया। उसके विशाल भालपर तिरस्कारकी रेखा अङ्कित हो उठी। वह फिर घूमा। इस बार उसने दक्षिणकी राह ली और 'टोंक' पहुँचा। वहाँके नवाबने उसके आगमनका समाचार सुनकर उसे मार भगानेके हेतु एक सेना भेजी। किन्तु मूर्ख नवाब जानता नहीं था कि तात्याटोपी सैनिकोंका जादूगर था ! उसने बात ही बातमें नवाबकी सेनापर जादू चलाकर उसे अपने पक्षमें मिला लिया। वह बड़ी प्रसन्नतासे उससे मिल गयी। तात्या टोपी उसे लेकर इन्द्रगढ़की ओर बढ़ा।

वह समय वर्षा कालका था। अंग्रेज़ोंकी ओरसे मि० होम्स उसका पीछा कर रहे थे। उनका साथ देने के लिये राजपुतानेसे भी एक अंग्रेज़ी सेना उनके पास पहुँच गयी थी। सामनेही चम्बल नद अपना भयङ्कर ताण्डव नृत्य दिखला रही थी। उसका डरावना विशाल वक्षस्थल-अगाध और गगनचुम्बी उत्तालतरङ्गें भीषण और भयावनी थीं। उसे पार करना मानो जानबूझकर जानपर खेल जानेके सदृश्य था। ऐसी दशामें उसने उसे पार करनेका निश्चय हृदयसे निकाल दिया। किन्तु इस निश्चयसे डिगतेही उसे तीनों दिशायें विघ्न बाधाओंसे भरी दिखलायीं दीं। दो

दिशाओंमें अंग्रेज़ी सेना मार्ग रोके खड़ी थी तथा तीसरी ओर चम्बल नदीका प्रवाह था। वह विवश होकर चौथी ओर झुक गया और 'बूंदी' की राह ली। वहाँ मि० राबर्टसनकी सेनासे उसकी एक गहरी मुठभेड़ होगयी। वहाँ वह दिनभर लड़कर अंग्रेज़ोंको अंगूठा दिखलाते हुए उदयपुरकी ओर बढ़ा। वहाँ भी अंग्रेजी सेना उसका मार्ग रोके डंटी थी। विवश होकर उसने अपनी कुछ विशाल तोपें वहीं छोड़दीं और आगे बढ़ा। इसबार उसने चम्बल नदी पार करनेका निश्चय किया। किन्तु उधर उसके दूसरे तटपर अंग्रेजी सेना पड़ाव डाले पड़ी थी। अतः इसबार भी उसे वह निश्चय छोड़ देना पड़ा और वह घूमकर झालरा-पाटनकी ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचतेही वहांके राजासे उनकी गहरी मुठभेड़ होगयी। किन्तु कुछही अवकाशमें तात्याटोपीका जादू उसकी सेनापर चल गया और वह तात्याटोपीसे मिल गयी। उसकी सहायतासे उसने राजाको जीत लिया। इस युद्धमें उसे पर्याप्त रसद और युद्धोपयोगी सामान मिले। वहांके राजासे उसने १५ लाख रुपये वसूल किये और पाँच दिनतक वहीं रहकर विश्राम लो। पश्चात् वहाँसे चलकर 'नर्मदा' पार करनेका निश्चय किया और इन्दौरकी ओर चल पड़ा।

इस समय विद्रोहियोंमें केवल तात्याटोपीही एक ऐसा वीर था, जो किसीभी तरह अंग्रेज़ोंके चंगुल में न फँस सका और बराबर उनके नाकमें दम किये रहा। वह दिनभरमें बीस तीस, चालीस चालीस मीलकी दौड़ मारता था। जहाँ उसके प्रकट होनेकी कोई सम्भावना नहीं होती थी, वहीं अकस्मात् प्रकट हो जाता था। इसी कारण उसे बड़े बड़े धीर वीर अंग्रेज़ 'शैतानी हवा' कहा करते थे। गत जून मही-

नेले लेकर अबतक उसने सारे मध्य प्रान्तमें हाहाकार मचा रखा था। उसका नाम लेतेही बड़े बड़े वीरों एवम् शक्तिशाली लोगोंकी बोलती मारी जाती थी। लोग अपने हठीले शिशुओंको डराने धमकानेमें उसके नामका प्रयोग करने लगे थे। उसने उन दिनों शहरके शहर लूट लिये। द्रव्य-कोष एवम् युद्ध सामग्रियाँ हस्तगत कर लीं। बड़े बड़े राजे रजवाड़ोंको नक्कू बनाकर छोड़ा। हवाकी तरह वह कभी यहाँ और कभी वहाँ विचरता था। अकस्मात् सरकारी डाकको लूट लेना, गावोंको लूटकर, जलाकर उजाड़कर देना, यह तो उसका मामूली काम था। जनरल नेपियर, राबर्टस, मिचाल, ब्रिगेडियर पार्क, समरसेट, बोम्स होम्स, होनर,मीड,बेचर सदरलैण्ड प्रभृति बड़े बड़े धीर वीर, साहसी एवम् सुदक्ष रणवीर अंग्रेज़ योद्धा उसके पकड़नेका एक साथ उद्योग कर रहे थे। किन्तु, वाहरे शेर! डेढ़ वर्ष तक उसने उन दिग्गज रणपण्डितों को ऐसा छकाया कि बेचारोंकी सारी हेकड़ीही भूल गयी। बेचारे देखते थे कि सामनेही तात्याटोपीकी सेना जा रही है, किन्तु पकड़ न सकते थे। उनकी इस स्फूर्ति, युद्ध कौशल एवम् सतर्कताकी प्रशंसा करते हुए बड़े बड़े विद्वान् अंग्रेजोंने उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसाकी है और कहा है कि उसकी उस परिस्थितिमें जबकि उसके पास समस्त साधनों का अभाव रहा, उसने जो कार्य कर दिखलाया है वह संसारके इतिहासमें सदा अमर रहेगा। निश्चयही वह बड़ा वीर एवम् बेजोड़ सेनापति था।

उसने जब देखा कि अंग्रेज़ लोग उसका उद्देश्य समझ गये हैं और उन्होंने उसके सारे गन्तव्य मार्ग रोक रखे हैं तब उसने एक नवीन युक्तिसे काम लिया। वह अकस्मात दक्षिणकी ओर बढ़ना छोड़कर उत्तर

की ओर बढ़ा। अंग्रेजोंने उसकी यह चाल देखकर समझा कि उसने दक्षिण जानेका विचार छोड़ दिया है, अतः यह उसके अनुसार अपने कार्यक्रमकी रूपरेखा बाँधकर आगे बढ़ा। इसी समय वह पुनः दक्षिण की ओर मुड़ा और बेतवानदी पारकर रायगढ़के मार्गसे दक्षिण जाने वाले मार्गकी ओर अग्रसर हुआ। उसकी यह टेढ़ी-मेढ़ी चाल देखकर अंग्रेजी सेना घबड़ा उठी। उसका सारा किया—कराया खेल चौपट होने लगा। मनकी सोची मनहीमें रहनेके लक्षण दिखलायी देने लगे। कितनेही देर तक तो सारेके सारे अंग्रेज़ सेनापति उसकी इस धूर्ततापर मुग्ध होकर एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। पश्चात् पार्क एवम् मिचालने कुछ उद्योग किया भी किन्तु सफलीभूत न हो सके। तात्याटोपी उस समय तक नर्म्मदाके तटपर पहुँचकर नर्म्मदा पार कर गया।

वहाँसे वह सीधा नागपुर पहुँचा। किन्तु वहाँ उसे कोई सहायता न मिली। तब वह बड़ोदाकी ओर बढ़ा। मार्गमें सदरलैण्डकी सेनासे उसकी गहरी मुठभेड़ हुई। इस समय उसने डटकर लड़नेका विचार स्थगित करते हुए अपनी सेनाकी तोपें वहीं छोड़नेकी आज्ञा दी और कहा—'फौरन नर्म्मदामें कूद पड़ो और पार हो जाओ।'

मुँहसे आज्ञा निकलनेही की देर थी कि सारेके सारे सैनिक धड़ाधड़ नर्म्मदाके भीषण गह्वरमें कूद पड़े और 'हाँ-हाँ' कहते इस पारसे उस पार होगये। उस समयकी तात्याटोपीकी इस चपलता एवम् कौशल का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मेलिसनने लिखा है, 'बेशक! संसारके किसीभी वीर सेनाने इतनी चपलता एवम् साहसके साथ कूच पर कूच नहीं किया। अस्तु,

तात्याटोपी वहाँसे सीधे छोटा उदयपुर जा पहुँचा। वहाँसे बड़ौदा प्रायः ५० मीलकी दूरी पर था । वह उधरही जाना चाहता था किन्तु भूलसे मार्ग भूलकर उदयपुर जा पहुँचा ! अर्थात् यहाँ उसका विचार पुनः बदल गया और वह उत्तरकी ओर बढ़ा। इस समय बान्देके नवाब इस प्रकार दौड़ धूपसे पस्त होकर महारानी विक्टोरियाकी घोषणाके अनुसार अंग्रेजोंके क्षमाप्रार्थी होगये। उन्होंने तात्याटोपीका साथ छोड़ दिया। केवल तात्याटोपी और रावसाहबही आगे बढ़े और उदयपुर (मेवाड़) के निकट पहुँच गये। यहाँ पहुँचने पर उनसे पुनः एकबार अंग्रेजोंका सामना हुआ। तात्याटोपी फिर उन्हें अंगूठा दिखला कर निकटवर्तीय वनमें घुस पड़ा। वहाँसे वह सीधा प्रतापगढ़ की ओर बढ़ा। मार्गमें मेजर रासने अकस्मात् सामने आकर उनकी गति अवरुद्ध करनेका प्रयत्न किया। किन्तु वह वीर ऐसा वैसा था ही नहीं जो इस तरह एकाध मेजरके रोके रुक जाता। वह उनकी सेना को चीरते हुए पार होगया और सीधा ईस्वी सन् १८५८ की २५ वीं दिसम्बरको बाँसवाड़ाके जङ्गलोंमें जा पहुंचा। ठीक इसी समय दिल्ली का शाहजादा फिरोज़शाह अपने दल-बलको लेकर तथा सिन्धिया नरेश का एक सरदार मानसिंह उनके पास जा पहुँचा। इन लोगोंने जीवन पर्यन्त तात्याटोपीका साथ देनेकी शपथ ली और वह उसके गुटके सदस्य बन गये।

१६ जनवरी सन् १८५९ ईस्वीका प्रभातकाल था। अंग्रेजी सेनायें अबतक बराबर इन लोगोंकी खोजमें जंगल-जंगलकी राख छान रही थी। इस समयतक यह लोग पर्य्याप्तरूपसे उनके द्वारा घिर गये थे।

अकस्मात् उस दिन जिस समय तात्याटोपी अपने प्रधान मित्र रावसाहब पेशवा, फिरोज़शाह एवम् मानसिंहके साथ अपने खेमेंमें बैठे थे, एक अंग्रेज अधिकारीका हाथ तात्याटोपीकी कमर पर पड़ा। वह भौंचक्के होकर अभी उस ओर ताकही रहे थे कि इतनेमें कितनेही अंग्रेज सैनिक खेमेमें घुस पड़े। क्षणहीभरमें ऐसा बोध होने लगा मानो तात्याटोपी अपने समस्त साथियोंके साथ अंग्रेजों द्वारा आबद्ध होगये। किन्तु वाहरे धूर्त ! दूसरेही क्षण वह न जाने किस युक्तिसे हवा बनकर अपने स्नेही साथियोंको लिये दिये उन अंग्रेज़ वीरोंकी आँखोंमें धूल झोंकते हुए नौ दो ग्यारह हो गये।

इसके पश्चात् कुछही दिनोंमें अर्थात् तारीख ५ अप्रैल ईस्वी सन् १८५९ को वह पुनः अंग्रेजों द्वारा पकड़ा गया। इसमें सन्देह नहीं कि उसका इस तरह पकड़ा जाना अंग्रेज़ोंकी वीरताका द्योतक नहीं था। किन्तु वह था उनकी कुटिल नीतिका द्योतक! उन्होंने सरदार मानसिंहको जो अबसे कुछही दिन पूर्व तात्याटोपीसे मिल गया था प्रलोभन देकर अपने साथ मिला लिया और उसीकी सहायतासे जब तात्याटोपी भोजनके उपरान्त वामकुक्षी कर रहे थे अकस्मात् चोरोंकी तरह उनके पास पहुँचकर उन्हें आबद्ध कर लिया।

कृष्ण पक्षकी अन्धेरी रात थी। मध्यान्हकाल था। तात्याटोपी खा-पीकर निविड़ अरण्यमें खेमा डाले निद्रादेवीकी आराधना कर रहे थे। उन्हें स्वप्नमें भी कल्पना नहीं थी कि आज वह मानसिंहके विश्वासघात के कारण सदाके शत्रु अंग्रेज़ों द्वारा शृङ्खलाबद्ध होंगे। इसी समय अकस्मात् वह स्वार्थान्ध पशु मानसिंह उनके पाससे उठकर अंग्रेज़ी सेना

को बुला लाया। उनमेंसे कुछ चुने हुए वीर दबे पाँव तात्याटोपी को शैय्याके पास पहुँचे और उसपर अकस्मात् प्रबल आक्रमणकर उसे बुरी तरह आबद्ध कर लिया।

बस पाठक! भारतीय स्वातन्त्र्यका यह अन्तिम पुजारी देशद्रोहीके स्वार्थान्ध पशुके विश्वासघातसे सोते हुए सिंहकी तरह अचेतावस्थामें शिकारियों द्वारा शृङ्खलाबद्ध होगया! ईस्वी सन् १८५९की १८ अप्रेल के दिन सीपरीमें उसे फाँसी देदी गयी! उनकी अमर एवम् स्वतन्त्र आत्मा स्वतन्त्रताके होमकुण्डमें उसको नश्वरदेहकी पूर्णाहुति देकर अमर लोकमें विश्राम करने चली गयी!

* * * *

दामोदरराव—ईस्वी सन् १८५७ के तीन प्रधान विप्लव मार्तण्ड रावसाहब पेशवा सेनापति तात्याटोपी एवम् स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाईका सम्पूर्ण विवरण लिखनेके पश्चात् श्री० दामोदर-रावही एक ऐसा व्यक्ति रह जाता है जिनके सम्बन्धमें बिना कुछ लिखे यह ग्रन्थ पूरा नहीं हो सकता। पाठकोंको अबतकका विवरण पढ़नेसे यह ज्ञातही हो चुका है कि श्री० दामोदरराव स्वातन्त्र्यलक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाईके दत्तक पुत्र थे। महारानीके स्वर्गवास होनेके पश्चात् उनकी क्या दशा हुई, यह बतलाकर हम एक तरहसे इस कार्य भारसे मुक्त होते हैं।

जिस समय महारानी लक्ष्मीबाईका स्वर्गवास हुआ उस समय श्री० दामोदररावकी अवस्था प्रायः ९।१० वर्षकी थी। महारानीकी अन्त्येष्टि क्रिया होनेके पश्चात् महारानीके प्रसिद्ध विश्वासभाजन सेवक रामचन्द्र

राव देशमुख आपको लेकर पेशवाकी सेनामें जा दाखिल हुए। उनके वहाँ पहुँचनेपर ज्योंही रावसाहब पेशवा एवम् तात्याटोपीने महारानी लक्ष्मीबाईके देहान्तका दुःखद समाचार सुना त्योंही वह हताश एवम् हतवीर्य हो गये। उनकी सेना हिम्मत छोड़कर इधर उधर भाग निकली और ग्वालियर अंग्रेज़ोंके हाथ चला गया। रावसाहब पेशवा एवम् तात्याटोपी अपनी जान बचाकर भाग गये। उनके चले जानेपर रामचन्द्ररावने दामोदररावको लेकर जङ्गलकी राह ली और वह प्रायः १॥ वर्ष तक उन्हें अंग्रेज़ोंसे छिपाये जङ्गल जङ्गल भटकते रहे। महारानीकी मृत्युके पश्चात् दामोदररावका लालन पालन श्री रामचन्द्ररावने अपने स्नेही श्री रघुनाथसिंह, श्री बालासाहब गोडबोले एवम् काशीबाईकी सहायतासे बड़ी ही उत्तमताके साथ किया। जिस समय वे लोग ग्वालियरसे चले, उस समय उनके पास नक़द रक़म एवम् अलङ्कार मिलाकर प्रायः ७९ सहस्र रुपयोंकी सम्पत्ति थी। किन्तु दैव दुर्विपाकसे (गुप्तरूपसे रहनेके कारण) यह सब सम्पत्ति दो ढाई वर्षों में ही चुक गयी। यह अज्ञातवासका समय दामोदररावके लिये बड़ाही कष्टमय था। हेमन्तकी कड़ी शीतमें, पार्वतीय उपत्यकाओं, दुर्गम वनों एवम् गिरि कन्दराओंमें निरन्तर निवास होनेके कारण वह भीषणरूपसे जीर्ण शीर्ण एवम् रुग्ण हो गये। पार्वतीय स्थानोंमें धान्य मिलना कठिन हो गया। संग्रहीत सम्पत्ति समाप्त होगयी। विवश होकर तराजूसे अलंकार तोल तोलकर जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री जुटानी पड़ी। यही सब कारण थे, जिनकी उपस्थितिमें वह विशाल सम्पत्ति उक्त थोड़ीसी अवधि मेंही समाप्त हो गयी। अन्तमें श्रीदामोदररावके हाथ में केवल एक

सोने का कड़ा भर रह गया। उन लोगोंको उदर निर्वाहके लिये कष्ट होने लगा।

इस तरह ग्रहदशाके चक्रमें आवद्ध होकर वे लोग उसीके बतलाये मार्गपर कालयापन करते हुए कोटरा, सीप्री, पाटण, बड़ोदा इत्यादि नगरों में होते हुए 'पाटण' नामक नगरके निकटवर्तीय 'आगर' नामके स्थानपर जा पहुँचे। उस समय अंग्रेज़ोंकी इस स्थानपर एक छावनी थी और उसका सारा प्रबन्ध मि० प्लीक नामक पोलिटिकल एजेण्ट द्वारा होता था। कालके सताये, हतभागी उक्त अज्ञातवासीगण परिस्थितिसे विविश होकर उक्त पोलिटिकल एजेण्टके पास जा पहुँचे और उनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

इसमें सन्देह नहीं कि मि० प्लीक बड़े सज्जन शान्तस्वभाववाले एवम् महारानी लक्ष्मीबाईके अनन्य भक्त थे। यदि उस समय उनकी जगह वहाँका कोई दूसरा पोलिटिकल एजेण्ट होता तो न जाने उन आत्मसमर्पणकारियोंसे किस तरह पेश आता! किन्तु श्री दामोदर रावका दैव उस समय उनके अनुकूल था इसीलिये वह ऐसे भले सज्जनके हाथ पड़े। मि० प्लीकने उन्हें महारानीका पुत्र जानकर हृदयसे उनका साथ देनेका अभिवचन दिया। उनके मान सम्मानमें श्री दामोदर रावके हाथका सोनेका कड़ा भी जाता रहा और वह नितान्त निष्काञ्चन बन गये! अस्तु—

उदारमति मि० प्लीकने अपने आश्वासनके अनुसार ईस्वी सन् १८६० की ५ वीं मईको इन्दौरके पोलिटिकल एजेण्टके नाम एक पत्र लिखकर श्री दामोदरराव एवम् उनके अनुचरोंको इन्दौर भेज दिया।

इन्दौरमें उस समय शेक्सपियर नामका पोलिटिकल एजेण्ट था। वह मि० प्लीकको बहुत मानता था। अतः उसने उनके भेजे हुए अतिथियोंका यथायोग्य सत्कार एवम् व्यवस्था की। उसके लिखा पढ़ी करनेपर कलकत्ताके गवर्नर जनरल लार्ड कैनिङ्गने दामोदररावको निर्भयकर उनके लिये १८०० रुपये वार्षिककी पेन्शन नियुक्त कर दी। निरन्तर सहवासके कारण कुछही दिनोंमें मि० शेक्सपियरका श्री० दामोदररावके प्रति पुत्र-वत् प्रेम होगया और यह उनको प्राणकी तरह प्यार करने लगे। उन्होंने मुन्शी धर्म्म नारायणके निरीक्षणमें श्री० दामोदररावको रखकर उन्हें अंग्रेज़ी फारसी उर्दू और मराठी इत्यादि भाषाओं का अभ्यास कराया। उनके बालिग होनेपर मि० शेक्सपियरने दत्तक पुत्रकी सम्पत्तिके रूपमें श्री दामोदररावके नामकी जो सम्पत्ति अंग्रेज़ सरकारके यहाँ जमा थी, उसे उन्हें दिलवानेका आशातीत प्रयत्न किया। किन्तु अधिकारी वर्गने उनकी एक न सुनी। श्री दामोदररावकी ६ लाखकी निजी सम्पतिमेंसे अंग्रेज़ोंने एक फूटी कौड़ी भी उन्हें न दी! क्यों न हो! इसीको कहते हैं सत्ताधारियोंका आसुरी उन्माद!

जो मनुष्य किसी समय २०।२५ लाखकी रुपये वार्षिक आयके राज्य का अधिपति था! जिस मनुष्यके रहनेके लिये कतिपय गगनचुम्बी राज-महल थे, जो पुष्प शैय्याओं एवम् मखमलके गद्दोंपर सोनेका अधिकारी था, जिसका सर्वस्व केवल ज़ोरके बलपर दूसरोंने हड़प कर लिया था, उसे रहने के लिये आज एक स्वतन्त्र कुटिया तक नहीं थी। हाय, दुर्दैव! जिसके पीछे तू पड़ जाता है, उसे इसी तरह 'राजाका रङ्क' बना देता है। शोक!

दामोदररावका विवाह उनकी पूजनीया चाचीने अपने अलङ्कारादि बेचकर किया था। इस कार्यके निमित्त पुनः एकबार हमारी दयालु सरकारके पास माँग पेशकी गयी थी। किन्तु उसका कोई फल न हुआ! श्री० दामोदररावकी प्रथम भार्या इन्दौरके भाटवडेकर नामक घरानेसे थीं। उनका देहान्त ईस्वी सन् १८७२ में हुआ। इसके पश्चात् उनका दूसरा विवाह 'शेवड़े' नामक घरानेकी कन्याके साथ हुआ। इससे उन्हें ईस्वी सन् १८७४ में एक पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई। इस पुत्रका नाम लक्ष्मणराव रखा गया। यही सज्जन इस समय स्वातन्त्र्य लक्ष्मी महारानी लक्ष्मीबाईके वंशमें इन्दौरमें जीवित हैं।

बस, पाठकगण! यही हमारे चरित्रनायक का जीवन चरित समाप्त हो जाता है!! अतः हम आप सज्जनोंसे यह अनुरोध करते हुए अपनी थकी हुई लेखनीको विश्राम देते हैं कि आइये! पुनः एकबार पढ़िये इस वीर रमणीके जीवन चरित्रको और बनिये स्वतन्त्राके कट्टर पुजारी

* समाप्त *

——*——

मुद्रक—बाबू मथुरा प्रसाद गुप्त, जाब प्रेस, कर्णघण्टा काशी